श्रीसच्चिदानन्दाय नमः

अद्वैतानन्द
या
सच्चिदानन्द प्रकाश

(आठवाँ भाग)

मिलने का पता—
श्री अद्वैत आश्रम, कृष्णा नगर,
मथुरा।

* श्रीसच्चिदानन्दाय नमः *

अद्वैतानन्द

या

सच्चिदानन्द प्रकाश

(आठवाँ भाग)

जिसमें

पूज्यपाद श्री सतगुरु दयाल श्री श्री १०८ श्री स्वामी
अद्वैतानन्द जी महाराज परमहंस के
परमोपयोगी उपदेश

१०००] [मूल्य २)

अद्वैतानन्द

अथवा

सच्चिदानन्द प्रकाश

(भाग आठवाँ)

विषय-सूची

संख्या इर्शाद	विषय	पृष्ठ संख्या
८६	वर्णसंकर औलाद	७३
८७	होली का त्यौहार	७५
८८	बारह चुनी बातें या उपदेश	७६
८९	कर्म प्रधान विश्व करि राखा	७६
९०	साम, दाम, दण्ड, भेद का उचित प्रयोग न होने से आपत्ती	७७
९१	पांच प्रकार का पुरुषार्थ राजा को करना चाहिये	७७
९२	हर चीज अपने प्रयत्न की तरफ जाती है	७७
९३	परमात्मा की प्रसन्नता के कुछ चिन्ह	७९
९४	नेक कमाई खाने से भजन ठीक होता है	७९
९५	विनय के बिना विद्वान मूर्ख है	८०
९६	पड़ौसी के साथ कैसा व्यौहार करना चाहिये	८०
९७	आसक्ति पदार्थों से हटनी चाहिये	८०
९८	कंठी के साथ श्रद्धा भी होनी चाहिये	८१
९९	पिता का पता माता बतला सकती है	८१
१००	मालिक और मौत को हर जगह सामने समझे	८१
१०१	सच्चे साधू के पास हँसता जायेगा उदास आवेगा	८१
१०२	लज्जा स्त्री का बड़ा भारी गुण है	८२
१०३	अपने धर्म, देश आदि को सर्व श्रेष्ठ समझना लड़ाई की जड़ है	८२
१०४	अपने-अपने ग्रन्थों को सब ब्रह्मवाणी बतलाते हैं	८३
१०५	नकली साधू की मानता असली के साथ कैसे हो	८५
१०५	(१) साधू आयु बढ़ाता है रन्डी आयु घटाती है	८६
१०६	महात्मा लोगों की कीर्ती बहुत लोकों में फैलती है	८७
१०७	ऋण और रोगों से बचना चाहिये	८७
१०८	गुरू का शीत प्रसाद	८८
१०९	भगवान जो कार्य किसी से कराना चाहें उसकी शक्ति प्रदान करते हैं	८८
११०	दुनियां स्वप्न और संकल्प कैसे है	८९
१११	राज काज कैसे ठीक चलता है—राज धन न खावे	८९
११२	चारों युग राजा युधिष्ठिर से मिलने गये	९२
११३	पांच प्रकार का योग—अति, दीन, मिथ्या, कुयोग, योग	९३
११४	भंडारा	९४
११५	जवान एक है	९५
११६	कर्म की गति समझने में नहीं आती	९५
११७	वर्णसंकर और दूसरे वर्णों में शादी विवाह	९७
११८	जल्दी साधू बनना ठीक नहीं	९८

संख्या इर्शाद	विषय	पृष्ठ संख्या

❁ ॐ तत्सत ❁

॥ श्रीगुरुदेव सहाय ॥

अद्वैतानन्द
अथवा
सच्चिदानन्द प्रकाश

(१) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि संसार में दो तरह के मनुष्य माने जाते हैं, एक मनमुख और दूसरे गुरुमुख । इसका यह आशय है कि जो शिष्य अपने गुरू की न माने और मनमानी करे वह मनमुख है। अतः मनमुखता और गुरुमुखता का दोष, गुण शिष्य में ही घटता है । गुरू महाराज जी इन दोनों से पृथक् हैं । बात यह है कि शिष्य और गुरू दोनों मनमुख और गुरुमुख हो सकते हैं, अर्थात् जो गुरू यह चाहते हैं कि जो कुछ मैं कहूँ वही शिष्य करे, वह गुरू भी मनमुख हैं । क्योंकि गुरु और गोविन्द एक माने गये हैं । इसलिये जो शिष्य गुरु और गोविन्द की आज्ञा पालन करता है वह गुरुमुख है । जो गुरु गोविन्द को मानता है, मनमानी नहीं करता, और न ही कराता है वह ही गुरुमुख है । अब प्रश्न यह उठता है कि गुरु और गोविन्द एक हैं तो गुरु तो प्रत्यक्ष हैं, उनके मुख से जो शब्द निकलें वह उनकी आज्ञा हो गई, गोविन्द की आज्ञा का पता कहाँ से लगावें । शिष्य तो गुरु वाणी को गोविन्द वाणी मान भी ले, किन्तु गुरु को गोविन्द वाणी का कैसे पता चले । अनुभवी महाऋषियों के बनाये हुए शास्त्र सब गोविन्द वाणी ही हैं । सब हिन्दूमात्र वेद को ब्रह्मा की वाणी कहते हैं, तो सब मुसलमान कुरान को खुदा का कलाम मानते हैं । सभी ईसाई बाइबिल को ऐसी ही पवित्र वाणी मानते हैं । परन्तु विचार करने से स्पष्ट है कि जब उस परमात्मा की न सूरत न सूरत न उसके पास कलम न दवात, न उसके कर्मेन्द्रिय और न ज्ञानेन्द्रिय तो फिर यह कलाम हुआ कैसे और हम तक पहुँचा कैसे बहुत से हिन्दू वेदों में यह भेद निकालते हैं, कि कुछ ईश्वर भाग हैं और कुछ ऋषि भाग हैं, अर्थात् वह दोनों को सत्य मानते हैं कुछ केवल ईश्वर भाग को अधिक मानते हैं । यथार्थता यह है कि धार्मिक वाणी दो रूपों

में प्रकट हुई है। एक इलहाम (आकाश वाणी) की दशा में और दूसरी वही की दशा में। आकाशवाणी उसको कहते हैं कि जिसमें उपदेश सुनाई दें। किन्तु बोलने वाला प्रकट न हो। जैसे सड़क पर स्थान-स्थान पर विज्ञापन लगे हों, कि "चोरी मत करो" "चोरी करने वाले को दण्ड मिलेगा" वही में उपदेश और उपदेशक ऐसे दिखलाई देते हैं जैसे अध्यापक काले तख्ते पर खड़िया से विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिये कोई उपदेश लिखता है। इसलिये वही को ईश्वर कृत वाणी व भविष्य वाणी को ऋषि कृत वाणी कहा जा सकता है। परन्तु बातें दोनों मानने योग्य हैं। ऋषि कृत वाणी यदि किसी प्रकार न मानने योग्य हो सकती है तो उसी दशा में हो सकती है जब कि कोई वही के दर्जे पर पहुँचा हुआ महात्मा उससे ऊपर की बात कहे। अब साधारण गुरू और साधारण उपदेशक जो चेले और जनता को दबा-दबा कर और उनकी आत्मा को नवा-नवा कर अपनी कही हुई बात को मानने के लिये लाचार करते हैं यह सब मनमुख हैं, इनमें गुरुमुख कोई नहीं। शिष्य वही गुरुमुख है जो गुरु और गोविन्द की वाणी को एक करके उस पर चलें और गुरू वही है जो गुरू की वाणी सर्वोपरि माने। यदि शिष्य की अन्तरात्मा गोविन्द वाणी के अनुसार हो तो गुरू को चाहिये कि शिष्य की बात को न गिरायें और उसी को स्थापित करे। वही गुरुमुख होगा। ज़रा सी बात गुरू की न मानी उसी पर शिष्य को मनमुख कह दिया यह मनमुखता है। इसी प्रकार से वेद वाणी में ईश्वर और ऋषि कृत का भेद स्थापन करने और कुछ को मानने और कुछ को न मानने का उपदेश भी मनमुखता से अलग नहीं।

(२) एक दिन इर्शाद हुआ कि संसार का कोई काम हो, परमार्थ का कार्य हो यहाँ तक कि विषय भोग भी क्यों न हों प्रत्येक में तृप्ति हो जाने से ही यह समझा जा सकता है कि कर्त्ता आदर्श को पहुँच गया। बहुत से व्यक्ति ऐसा कहते सुने जाते हैं कि मित्र हमने तो हृदय भर कर विषय भोग भोगे, खूब शराब पी, खूब रण्डी बाज़ी करी, खूब जूआ खेला, अब किसी काम को दिल नहीं करता। साधुओं को जो अप्रीति प्राप्त होती है क्या इसमें और उसमें कुछ अन्तर रह गया, ज़रा भी नहीं। परन्तु ऐसी अवस्था में पहुँचना कठिन है। और जो पहुँच जावें उसको सुकृति का फल समझना चाहिये। किसी ने बाणिक, व्यापार, या कारो-

बार या दस्तकारी या खेतीबाड़ी में लाखों करोड़ों कमायें, परन्तु जीवन के अन्त तक उसी कमाने की धुन में लगा हुआ है तो ऐसे व्यक्ति को उसके कर्म का आदर्श प्राप्त नहीं हुआ। जिस व्यक्ति ने निमित्त मात्र कर्म किये चाहे वह अवस्था के कारण कम या अधिक हो अल्प हो या विस्तार वाला हो उसमें भी हानि नहीं। किन्तु उस कर्म से उसकी जीवात्मा को तृप्ति हो जानी चाहिये। उदाहरणार्थ एक बड़े ऊँचे वर्ग के अधिकारी ने बहुत धन पैदा कर लिया। नौकरी से पैंशन प्राप्त करके कोई और धन्धा धन प्राप्ति के लिये कर लिया। ऐसे व्यक्ति को यही कहा जा सकता है कि अभी जीवन का आदर्श प्राप्त नहीं कर सका। और किसी साधारण व्यक्ति ने नियत समय तक नौकरी करके पैंशन ले ली, और थोड़ी आय से शान्ति पूर्वक निर्वाह कर रहा है तो समझ लेना उसने जीवन का आदर्श प्राप्त कर लिया। यही बात संसार और परमार्थ के कुल कामों में भी घट सकती है। इससे यह न समझ लेना कि दस दिन नौकरी करी या कोई और काम किया या भजन पूजन किया और फिर छोड़ बैठे अथवा इस तरह से हर एक काम को करे जिससे शान्ति प्राप्त हो सके फिर भी ठीक यह होगा कि जैसे-जैसे काम चलता जाये वैसे-वैसे साथ-साथ शान्ति चलती चले ताकि जिस स्थान और अवस्था में काम बन्द किया जाये या बन्द हो जाये वहीं से शान्ति प्राप्त हो।

(३) एक दिन इर्शाद हुआ कि परमात्मा ने अपने बनाये हुए स्थावर और जंगम जीवों के लिये नाना प्रकार के सुख और भोग तथा आनन्द के सामान बनाये और एकत्रित किये हैं। चौरासी लाख योनि में सिवा मनुष्य के और सब तो उस परमात्मा की बनाई हुई वस्तुओं का ही भोग करते हैं, परन्तु मानव को तो ऐसी बुद्धि दी है कि वह तो उन वस्तुओं की मिलौनी से और भी नये-नये पदार्थ तैयार कर लेता है। षट-रस से भाँति-भाँति के भोजन बना लेना और रूई रेशम और ऊन से भाँति-भाँति के वस्त्र बुन लेना और पाँच रङ्गों से रङ्ग-बिरंगे बेल बूँटे व चित्र बनाना और फिर इसमें भी कितने उदार चित्त से परमात्मा ने कार्य किया है कि आकाश, वायू, प्रकाश, जल और थल तथा वर्षा जो जीवों के पैदा होने फलने फूलने रहने सहने और आनन्द के लिये आवश्यक हैं, वह तो बिलकुल मुफ्त में बिना मूल्य ही प्रदान किये हैं। परन्तु उस सारी वस्तुओं से लाभ उठाने वाले बहुत ही कम व्यक्ति हैं। अधिकतर व्यक्तियों की प्रकृति ऐसी

है कि जैसे किसी व्यक्ति के सामने छप्पन प्रकार के भोजन परोस दिये जायें परन्तु वह सब को चखे भी नहीं सिर्फ घुइयाँ पूरी ही खाता और माँगता चला जाये। जिसको औरत का चस्का लग गया, बस उसने दुनियाँ को भुला दिया उसकी माँ है तो औरत, बाप है तो औरत, गुरू है तो औरत और खुदा है तो औरत, जिसको दौलत की चाट लग गई, वह तो नमाज़ पढ़ कर भी हाथ उठा कर यही दुआ माँगता है "कि ले ले आओ और धरते जाओ" माला फेरता है तो ऐसे मन्त्र की कि "राम-राम जपना और पराया माल अपना" न खाता है और न खाने देता है "खल खावे, कम्बल ओढ़े, और रुपया जोड़े।" ऐसे जीवन को ही सब से अच्छा समझता है। जिसको शराब की लत लग गई उस मेरे मित्र को तो दीन दुनियाँ का तो पता ही नहीं रहता। सर ज़मीन पर लटका हुआ और पैर चारपाई पर धरे ऐसी बेपरवाही होती है कि किसी बड़े से बड़े साहिब दिल को भी कठिनता से ही प्राप्त होती होगी। उसका नशा बड़े से बड़े शोक की निवृत्ति कर देता है यही नहीं दुनियाँ भर को नशे की दशा में भूल जाता है। इसके नशे वाले ऐसे मदहोश हो जाते हैं कि उन्हें पत्नी बच्चों का भी ध्यान नहीं रहता "छूरी बेच कर चने चबायें पगड़ी पर दिल रखते हैं" "लड़के गये पिदर के चरके हम तो मौजें करते हैं" की कहावत हो जाती है। इतने आनन्द की वस्तुयें सामने होते हुए एक ही वस्तु की ओर लगन क्यों हो जाती है। यह उनके पूर्व संस्कार और प्रकृति का प्रभाव है कि जिसके वेग से वह प्रेरित हो कर एक ही ओर खिंचे चले जाते हैं उनको कोई सैकड़ों प्रकार से समझाये, हज़ार प्रकार से बुझाये, चाहे जैसे रोचक, भयानक उपदेश दे, डराये, धमकाये परन्तु वे अपनी आदत से बाज़ नहीं आते। वह मजनू की भाँति अपनी मनमानी वस्तु के पीछे लगे रहते हैं। चलते, फिरते, सोते, जागते उसी की धुन सवार रहती है।

(४) एक दिन एक मनुष्य ने प्रार्थना की कि अंग्रेजों ने तो भारत पर ऐसा अधिकार किया हुआ है कि उसको छोड़ना ही नहीं चाहते। श्री महाराज ने उनको बोलने से रोकते हुए कहा कि हम आप श्रीमानों से कई बार कह चुके हैं कि हमारे सामने ऐसे प्रश्न न उठाये जायें। यह धार्मिक सभा है, इसमें धर्म सम्बन्धी बातें होनी चाहिये राजनैतिक और राज्य सम्बन्धी बातें करना न्याय के विरुद्ध ही नहीं, परन्तु नियम के भी विरुद्ध है। यह बात मानी हुई है कि अकसर धर्म

ही नहीं, परन्तु नियम के भी विरुद्ध है। यह बात मानी हुई है कि अकसर धर्म सम्बन्धी सभायें कुछ बढ़ कर राजनैतिक बन जाती हैं। लेकिन हम अपने सामने उसका रूप शुद्ध धार्मिक ही रखना चाहते हैं। दूसरी बात यह है कि—"खुद रा फ़ज़ीयत और दीगरां रा नसीयत"

(स्वयं तो झगड़ा करें और दूसरों को शान्ति का उपदेश करें) वाली बात ठीक नहीं मालूम होती। जो लोग अंग्रेजों को बाहर जाने को कहते हैं वे ज़रा अपने अन्दर झाँक कर देखें कि वे कौन हैं। क्या वह प्राचीनिक वास्तविक भारत निवासी हैं। वास्तविक भारत निवासी बनने से उनको अब भी इतनी ही शर्म आती है जैसे कि पठान व अँग्रेज़ इत्यादि को हिन्दू बनने में बुरा मालूम होता है। आर्य लोग भी बाहर से आये थे और यहाँ पर रहने वाली जातियों को अच्छे-अच्छे उपजाऊ स्थानों से हटा-हटा कर जङ्गल और पहाड़ों में भगा दिया लेकिन उनको फिर भी धन्यवाद है कि इन्होंने अपनी स्वतन्त्रता स्थिर रखने के लिये निर्जन स्थानों में रहना पसन्द किया और अभी तक स्वतन्त्रता का काफी आनन्द उठा रहे हैं। गो खाने पीने का उनको ऐसा सुभीता नहीं जैसा कि और भारतीयों को है। इन लोगों ने तो अन्धेर ही कर दिया कि "दो मुट्ठी अन्न और बनावटी पदवियों के लिये अपनी स्वतन्त्रता ही नहीं बल्कि लोक लाज तक को भी तिलाञ्जलि दे दी। आर्यों के बाद गूजर, जाट, गज़नी, गोरी, अफ़गान, पठान, तुग़लक, लोधी, मुग़ल इत्यादि २ जो कोई भी यहाँ आये कौन भारत छोड़ कर गये। नादिर शाह और अहमद शाह जो लूट की इच्छा से आये थे वह अलबत्ता लूट खसोट करके वापिस चले गये बल्कि नादिर शाह का जी तो भारत की विशेषता देख कर फिसल गया था, परन्तु उसके देश में झगड़ा उठने के समाचार उसको मिले, इससे वह जल्दी से लौट गया फिर भला अंग्रेज ही क्यों छोड़ कर चले जायें। तीसरी बात यह है कि अच्छी वायु अच्छा जल अच्छी उपज जहाँ हो वहाँ से पशु पत्नी भी नहीं हिलते तो मनुष्य ऐसे स्थान को कैसे छोड़ दें। भारत वह देश है जहाँ मारवाड़ और सिन्ध के रेतीले मैदान में गरम लू और हिमालय पर सर्द से सर्द बरफ़ानी वायु और मध्य देश में तीनों मौसम छओं ऋतुओं का आनन्द, अनाज और जल की अधिकता और ईश्वर कृपा से हर प्रकार की वस्तु पूरी तरह से जहाँ उपलब्ध हों भला वहाँ से कौन टलता है। रामचन्द्र

जी महाराज त्रेता में थे, उन्होंने लङ्का जीत कर विभीषण को दी। इस तरह की उदारता आप कलयुग में देखना चाहते हैं। फिर वह तो अवतार थे। क्या मनुष्यों से भी आप ऐसे ही बर्ताव की आशा करते हैं—"ईं ख्यालस्तों मुहालस्तों जनू।"

यह विचार केवल वहम है, कठिन है और पागल पन है।

जो कोई जाता है किसी मजबूरी से जाता है और वह भी जाते समय कुण्डा खटखटा कर जाता है।

(५) एक दिन इर्शाद हुआ कि ब्राह्मण विद्या को सब से ऊँचा मानते हैं। वे उसके ऐसे प्रेमी होते हैं कि विद्या लाभ के लिये घर आराम सब कुछ त्याग कर देश प्रदेश रह कर विद्या प्राप्त करते हैं। क्षत्री पृथ्वी के ऐसे प्रेमी होते हैं कि उसके पीछे अपना सर तक कटा देते हैं, और वैश्य को धन अति प्रिय होता है—"चाम जाये पर दाम न जाये।"

वे दौलत के लिये इज्जत आबरू तक की परवाह नहीं करते। शूद्र को स्त्री बड़ी प्यारी होती है उनका परम लाभ इस संसार में स्त्री ही है।

(६) एक रोज़ एक मनुष्य ने कहा कि गौरक्षा पंथियों में यह कहावत है—

'छूलन छालन बूट उपाड़न, थप थपिया और नाई।
इन्हें नाथ जी कभी न मूड़ों, यह तो करें बुराई॥"

और कबीर पंथियों में यह कहावत है कि—

"पहले बोधूं कोली चमारा, फिर बोधूं राज दरबारा।
मगध में जाके बजईयों डंका, राजा प्रजा की छूटे शंका॥"

दो महात्माओं की वाणी में इतना अन्तर क्यों है? श्री महाराज ने फ़रमाया कि हम को तो कोई अन्तर नहीं दीखता। जोगियों का मूंड़ने से विचार है कि इन लोगों को भेष न दिया जाये वरना गुरुवाई के घमण्ड में यह बुराई करने लगेंगे और यह बात गोसाईं तुलसीदास जी ने भी रामायण के उत्तर काण्ड में युगों का वर्णन करते समय कही है। गोया महात्माओं की

वाणी में एकता है अन्तर नहीं। कबीर पंथियों का आशय भेष देने से नहीं है बल्कि उपदेश करने से है और जब तक उपदेश न होगा तब तक उनकी उन्नति कैसे होगी। भजन तो सब के लिये कहा है।

नीच ऊँच देखे नहीं कोय, हर को भजे सो हर का होय।

भजन में जात पात का कुछ विचार नहीं, यह भक्त माल की कथाओं से प्रसिद्ध है जिसमें भंगी, चमार, जाट, नाई, कसाई सब की बड़ाई लिखी है, बुराई किसी की नहीं है। यहाँ भी महात्माओं के मत में अन्तर नहीं और इस विषय में क्या संसार भर के किसी विषय में भी महात्माओं का परस्पर अन्तर नहीं होगा, "सौ सयाने और एक मत" की बात होगी सिर्फ समझने का अन्तर हो सकता है।

(७) एक व्यक्ति ने प्रार्थना की कि रामचन्द्र जी अवतार और मर्यादा-पुरुषोतम थे, धर्म की ख़ातिर कैसे-कैसे कष्ट उठाये। लोक मर्यादा को स्थिर रखने के लिये गृहस्थ अ ा के सुख को आयु भर न भोग सके। दूसरी ओर रावण को देखिये कि कैसे-कैसे सुख भोगे और विलास किये, ज़ुलम और अत्याचार की हद कर दी, टैक्स (कर) देने को जिसके पास रुपया न हुआ उससे खून तक निकलवा लिया। लेकिन दोनों में से कोई भी न रहा। फिर धर्म का पालन करने और कष्ट सहने की क्या आवश्यकता, दिल खोल कर जो जी चाहे वही क्यों न करें?

श्री महाराज ने फ़रमाया कि किसी हद तक आप ठीक कहते हैं विचार करेंगे तो आपको विदित होगा कि हर एक के जो जी में आता है वही वो करता है, परन्तु फल भी उसका भोगता है, भगवान् स्वतन्त्र हैं, और स्वतन्त्रता से आनन्द भोगने को इस संसार और इन जीवों की उत्पत्ति हुई है। और उसमें आनन्द भोगने के लिये तरह-तरह के तरीके कर्म रूप से रच दिये गये हैं और हर एक कर्म का फल या परिणाम भी प्रकट कर दिया है। जिसको जिस काम में सुख मालूम होता है वह उसी को करता है, और उसका फल भोगता है। शराब और शराब के परिणाम में जिसको दुख मालूम होता है वह उससे बचता है और जिसको सुख प्रतीत होता है वह उसका सेवन करता है। भगवान् का

अंश सब जीवों में है इसलिये जिस तरह से ईश्वर कृत सुख और भोग के कर्म बनते हैं उसी तरह से हर जीव ने भी नाना प्रकार के सुख और भोग के कर्म स्वयं लिये हैं और वह भी उसी तरह से प्रचलित हैं जिस प्रकार से ईश्वर रचित कर्म हैं उसी प्रकार जो जिसको भाता है वह उसी को करता है यह भी नियम बना दिया है, कि शरीर अनित्य है इसलिये अनित्य ही रहता है और जब तक इस नियम का दौर है वह अनित्य ही रहेगा, चाहे अवतार का हो या राक्षस का। किसी और समय में इसके विपरीत मर्यादा बन गई तो उसके अनुसार काम होगा।

(८) एक दिन एक व्यक्ति ने प्रार्थना की, कि जो लोग संसार में सब से अधिक सगे सम्बन्धी समझे जाते हैं, वही किस तरह से पशुओं और बाघ इत्यादि की तरह आपस में लड़ रहे हैं। सगे सम्बन्धी हो कर भी कैसा खून सफेद हो गया है, कि किसी समय तो एक च्यूंटी की जान लेना भी पाप समझते हैं, और किसी समय मनुष्य जिसको सब से ऊँच योनि कहा गया है उसको मारने के लिये नये से नये और भयंकर से भयंकर बहुत तीव्र बुद्धि व आधुनिक विज्ञान से रचना करके उनको चलाया जाता है। जिससे क्षणों में धरती खून से तर और लाशों से भर जाती है। यह सब आधुनिक सभ्यता के नाम पर हो रहा है, लेकिन जीवन बिना युद्ध के भी तो नहीं चल सकता ?

श्री महाराज ने फ़रमाया कि विचार करके देखा जाये तो मनुष्य जीवन में संग्राम चिरस्थायी है। हर समय मनुष्य के अन्तर में भी युद्ध होता रहता है। कभी दैवी सम्पद जय पाती है, और कभी आसुरी संघर्षण इस संसार में लोप नहीं हो सकता। इसके भी कई भाग और कारण हैं।

१. युद्ध द्वारा एक व्यक्ति या जाति अपने विचार और आदर्शों को दूसरे व्यक्ति या देश से गृहण कराना चाहती है। २. लालच और अमित धन संचय करने की इच्छा और दूसरे देश वासियों से अपने लाभ के लिये काम लेने की कामना आदि युद्ध के कारण हैं। ३. अपनी राज्य सीमा को बढ़ाना और अपनी जाति की बढ़ी हुई जनसंख्या को दूसरे देशों में ले जाकर बसा कर अपना और अपनी जाति का हित करना। दूसरी जाति का इससे कितना भी अनहित हो

उसकी परवाह नहीं करना । ४. अपना नेतृत्व और प्रभुत्त्व दूसरों से स्वीकार कराना, स्वराज्य और स्वतन्त्रता स्थिर रखने और प्राप्त करने के लिये और भी बहुत से कारण युद्ध के हो सकते हैं जैसे पुरुष को जब स्त्री से लड़ना हो तो यही कह कर लड़ाई आरम्भ कर दे कि तू आटा गूंदने में हिलती क्यों जाती है ? लड़ाई से जो हानि होती है उनको गिनाने और बताने की तो आवश्यकता ही नहीं, उनको तो सभी जानते हैं। किसी ने देखा है, किसी ने सुना है, किसी ने पढ़ा है, परन्तु इसमें भी विचार की आवश्यकता है। जो जातियाँ भोग विलास की ज़िन्दगी में पड़ कर अपने ध्येय,गेह और धन को ही सब कुछ समझ लेती हैं, और स्वार्थ में लिप्त रहती हैं उनको युद्ध में साहसी आत्म त्याग, स्वार्थ त्याग, परमार्थ भक्ति, स्वामि भक्ति, शरीर, धन और परिवार के मोह का त्याग, आज्ञा पालन आदि गुणों द्वारा उन्नति का समय मिलता है और जीत होने पर स्वराज्य और स्वतन्त्रता प्राप्त होती है। अपने अर्थ सिद्धि के लिये मनुष्य झूठा या सच्चा कोई बहाना युद्ध छेड़ने के लिये क्यों न बना ले, परन्तु उसकी आत्मा की माँग युद्ध नहीं, शान्ति ही है, दूसरों को दुख देना नहीं, बल्कि परोपकार है । हर प्राणी का यह अनुभव होगा कि किसी की सहायता या परोपकार करके, किसी से प्रिय वचन कह कर अपने अच्छे विचार लेख या वचन द्वारा औरों पर प्रकट करके जीव को जितना आनन्द मिलता है इन सब से अधिक सुख और किसी बात में नहीं बल्कि समस्त संसार को शान्ति से जो सुख मिलता है, यह उसी वक्त हो सकता है जब कि "मेरा" से पीछा छूटे । मेरा देश, मेरी जाति आदि से दृष्टि हट कर व्यक्तिगत, व देश स्वार्थ का त्याग करके प्राणीमात्र से प्रेम करें, और जीवमात्र को अपना समझे । जाति अभिमान, देश अभिमान, प्रण अभिमान, जो सभ्यता की जड़ मानी जाती है यही सब अशान्ति का कारण है । यह सभ्यता ही संसार का नाश करती है और फिर आप भी लोप हो जाती है। वास्तव में सभ्यता का हर एक काम प्रकृति के विरुद्ध होता है जो वास्तविक सभ्यता को नष्ट कर देता है ।

(९) एक दिन इर्शाद हुआ कि संसार के हर एक धर्म में इन पाँच बातों में से एक या एक से अधिक अवश्य होंगी । जिसमें पाँचों बातें हों उसको प्रधान समझना चाहिये । १. श्रुति तत्व— जिसमें विचार और ब्रह्म विचार, निर्गुण

निराकार की उपासना का वर्णन हो । २. स्मृति-जिसमें देश, राज्य, सामाजिक, धार्मिक नियम हों । ३. भक्ति या उपासना पद्धति । ४. पुराण या प्राचीन ऐतिहासिक कथायें । ५. नीति शास्त्र-या नैतिक नियम, सनातन धर्म में तीन प्रकार से उपासना की गई है ।

१. निर्गुण निराकार ब्रह्म जिसका वर्णन वेद और उपनिषद आदि में है । २. सगुण निराकार की उपासना जिसका वर्णन रामानुज आदि सम्प्रदायों में और उपनिषद में है । ३. सगुण साकार जिसका वर्णन भक्तों की वाणी में पाया जाता है । निर्गुण निराकार चिन्तन मनन के लिये ठीक है । सगुण निराकार भक्त के लिये लाभदायक है । और सगुण साकार सेवा के लिये लाभदायक है । सामाजिक नियम, देश, काल, पात्र के अनुसार अलग-अलग बने हैं । इसलिये एक ही धर्म के मनुष्यों के सामाजिक नियम एक देशीय हैं और किसी दूसरे देश में उससे भिन्न-भिन्न हो सकते हैं । इसी तरह से वह समय के साथ भी बदल जाते हैं ।

(१०) एक दिन इर्शाद हुआ कि लाग पक्षी समुद्र की खाड़ी में होता है । जब कोई तूफ़ान आने वाला होता है तो वह समुद्र में उड़ता है उसके दर्शन से जहाज वालों को आने वाले तूफ़ान का पता चल जाता है और वह रक्षा का उपाय कर लेते हैं । उसके मारने वाले को प्राण दण्ड दिया जाता है । इसी तरह गाय के मारने की मनाही है, वह भी प्राण दाता है ।

(११) एक दिन तपेदिक की बीमारी की बातचीत हो रही थी, कि इसमें एक तरह के क्रिम या कीटाणु अर्थात् कीड़े पाये जाते हैं जिनको अंग्रेजी में टी० बी० जर्मस (T. B. Germs) कहते हैं । फेफड़ों में पैदा हो कर उनको खाने लगते हैं । इसी तरह संग्रहणी में पेट में तपेदिक के कीटाणु (कीड़े) हो जाते हैं । कण्ठ माला और बहुत सी बिमारियों में इसी तरह के कीड़े पाये जाते हैं । एक सत्संगी ने प्रार्थना की कि यह कीटाणु क्यों पैदा हो जाते हैं, और आज कल इन बीमारियों की अधिकता क्यों है ? श्री महाराज ने फरमाया कि डाक्टरों को अच्छी तरह से इनका हाल मालूम होगा । हम तो इतना कह सकते हैं कि जब कोई किसी को बहुत सताता है, या किसी का धन हर लेता है या धोखा, चालाकी करता है, या सन्तान अपने माता पिता को मारती या

दुर्वचन बोलती है। तो जिनको सताया जाता है वे बदला तो ले नहीं सकते। उनकी दुखी आत्मा से यही श्राप निकलता है कि तू कीड़े पड़ कर मरेगा। तेरे मुँह में कीड़े पड़ेंगे। तू खटिया पर पड़ कर खायेगा इत्यादि। आज कल ऐसी बातें बहुत अधिक होती हैं, जिसके फलस्वरूप यह हो सकता है कि ऐसे मनुष्यों को बीमारी भी अधिकता से ऐसी ही हो जिसमें कीड़े उनके शरीर का अन्त कर दें। और ऐसा रोग हो जाये जिसमें खटिया पर पड़ कर ही खाये।

(१२) एक दिन इर्शाद हुआ कि सन्त मत बतलाता है कि प्रकृति भी न्यून चेतन है। जैसे धनात्मक (Positive) और ऋणात्मक (Negative) ध्रुवों (Poles) के मिलने से विद्युत शक्ति आविर्भूत होती है। ऐसे ही विशेष और न्यून चेतन के द्वारा भगवान् की परम शक्ति स्थित है।

(१३) एक रोज़ किसी ब्राह्मण-देवता की चर्चा छिड़ गई कि वे बड़े भजनानन्दी हैं। ब्रह्म महूर्त में ध्यान से निवृत्त होकर पूजा में बैठ जाते हैं। बारह बजे भोजन करते हैं। दो घन्टे बाद फिर विद्यार्थियों को पढ़ाया करते हैं। फिर सायंकाल की सन्ध्या बन्दन का समय हो जाता है। उनका निर्वाह बड़ी कठिनता से होता है। कुछ प्रबन्ध ऐसा हो जाये कि उनका निर्वाह अच्छी तरह से होने लगे।

श्री महाराज ने फरमाया कि सज्जन पुरुषों के लिये तो इतना ही बहुत है कि निर्वाह हो सके। ब्राह्मण सन्तोषी होते हैं। भोजन मिल जाने से ही पैर फैला कर सोते हैं। यदि बहुत सा धन उनके पास हो जाये तो सुबह ९ बजे से पहले सो कर न उठें और जब तक भोजन का समय न हो किसी काम के करने को तत्पर ही न हों। इसलिये कथा, वार्त्ता पूजन आदि जो कुछ काम ब्राह्मण से करवाना हो, वह भोजन खिलाने से पहले ही करा ले। क्षत्री के पास अधिक धन हो जाये तो मदिरा पान, विषय भोग और लड़ाई झगड़ा आरम्भ कर देगा। राजा के कोष में अधिक धन एकत्र हो जाये तो आस पास के राजाओं पर आक्रमण कर देगा। इसीलिये क्षत्री के पास भी अधिक धन होना अच्छा नहीं। राजा को चाहिये कि जब कोष में धन अधिक हो जाये तो प्रजा के लाभहित के कार्यों में व्यय करता रहे। वैश्य के पास ही धन एकत्र होना अच्छा है, ज्यों-

ज्यों धन बढ़ता है त्यों-त्यों खर्च में कमी होती जाती है। दो, चार सौ रुपये जमा हो जायें तो कुरते में बटन का अभाव दीख पड़ेगा। हज़ारों की नौबत पहुँचे तो फटी पगड़ी या दो पैसे की टोपी होगी वह भी मैली या फटी हुई। जब लाख पर दीया जला तो धोती फटी होगी और जूता शायद हो भी नहीं। अलबत्ता मकानों और शादी इत्यादि में रु० अधिक ख़र्च हो जायें और घाटा दिखलाई दे, तब वह ठाट जो विवाह में देख पड़ता है नज़र आवेगा और कीमती तोड़ा गले में दिखलाई देगा और कन्धे पर दोशाला होगा तो समझ लेना कि कि अब दीवाला नज़दीक है। शूद्र के पास एक समय से अधिक खाने को हुआ और वह इतराया। उनको तो केवल पेट भर रोटी और तन भर कपड़ा मिलता रहे तभी ठीक काम कर सकते हैं।

(१४) एक दिन एक मनुष्य ने कहा कि मनुष्य क्यों पैदा होता है और क्यों मरता है और इस मरने का इतना दुःख क्यों होता है? श्री महाराज ने एक सेवक की तरफ इशारा किया कि इनसे पूछिये यह बतलायेंगे। उनसे पूछने पर उन्होंने बतलायाः—

(१) लाई हयात आये, कज़ा ले चली चले।
अपनी खुशी न आये, न अपनी खुशी चले॥

(२) आर्ज़ूये दीदे जाना, बज़ु.म में लाई मुझे।
आर्ज़ूये दीदे जाना मैं, यहाँ से ले चला॥

प्रेमी को देखने की इच्छा मुझे इस संसार में लाई और प्रेमी के देखने की इच्छा में यहाँ से चला।

जा मरने से जग डरे, मेरे मन आनन्द।
मर कर ही तो पाइये, पूर्ण परमानन्द॥

(१५) एक दिन इर्शाद हुआ कि मोम को जिस तरह से चाहो उंगलियों से मलकर सीधा टेढ़ा करलो। जो वस्तु जिस तरह की बनाना चाहो उससे बनालो। लेकिन लोहे को टेढ़ा सीधा करने और तोड़ने मरोड़ने को बड़े ज़ोर और हथोड़े

की चोटों की आवश्यकता होती है। मोम और लोहा दोनों उसी परमात्मा की बनाई हुई वस्तुयें हैं। इसी तरह से उसने कुछ इनसान ऐसे स्वभाव के बनाये हैं कि उनसे काम निकालना और अपनी इच्छानुसार उनसे काम लेना बहुत ही आसान बात होती है। और कुछ मनुष्य ऐसे बनाये हैं जिनका स्वभाव लोहे और फ़ौलाद की तरह कठोर होता है। दूसरे की इच्छानुसार चलना और बनना वह जानते ही नहीं जब तक कि हथौड़े और घन की क़ठोर चोट उनको न लगाई जावे और उनको सख्ती न झेलनी पड़े। ऐसे मनुष्य अपने सांसारिक कार्यों में भी बड़ी-बड़ी कठिनता से विजय प्राप्त करते हैं।

(१६) एक रोज इर्शाद हुआ कि समय अनुसार बहुत सी बातों में उलट फेर हो जाता है। सतयुग में मनुष्य का स्वास्थ्य बहुत अच्छा होता है। और आयु बहुत लम्बी होती है, इसलिये जीवन का आनन्द प्राप्त करते हैं। इसलिये जिसकी आयु अधिक हो वह पुण्यवान समझा जाता है कलियुग में थोड़ी आयु में ही स्वास्थ्य खराब हो जाता है बुढ़ापा आने पर तो सौ बुराईयाँ पैदा हो जाती हैं। इसीलिये कलियुग में आयु थोड़ी हो गई है कि जब तक शरीर काम का रहे जीने का आनन्द प्राप्त करे। और बुढ़ापा आने से पहले ही शरीर शान्त हो जाये। अगर अधिक आयु हो तो फिर स्वास्थ्य खराब होने से जीवन का आनन्द नहीं रहता। बल्कि खटिया पर पड़ कर दिन काटने पड़ते हैं। और उस व्यक्ति का जीवन और लोगों के लिये दुखदाई और बोझा सा बन जाता है।

(१७) एक दिन इर्शाद हुआ कि एक दुकानदार का नवयुवक लड़का शराबी और वेश्याओं के यहाँ जाने का शौक़ीन था। दुकानदारी में दिल नहीं लगाता था। सुबह बहुत देर से दुकान पर जाता और दोपहर को ही लौट आता था। लेकिन अपने पिता का बहुत आदर करता था इसलिये खुल्लम खुल्ला इन कामों को नहीं करता था। जब उसके पिता का अन्त समय आया तो उसने अपने लड़कों को बुलाया और चार शिक्षा दीं १. शराब पहले अपने मित्रों को खूब दिल भर के पिलाना, जब वह पी चुकें तो फिर घण्टे भर बाद आप पीना २. रंडी के पास प्रातःकाल ही जाना, ३. दुकान पर जाना और दिन छिपे शाम को वापिस आना और जम कर बैठना क्योंकि ग्राहक के आने का कोई नियत

समय नहीं है, ४. सब कामों से निपट कर बहुत बढ़िया फ़रशी हुक्का भर कर मकान से बाहर चौपाल वगैरा पर बैठ कर पीना। उसको यह सुन कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि जीवन भर पिता जी जिन कामों से घृणा करते रहे उन सब की इस अन्तिम समय आज्ञा दे दी। पिता के मृतक संस्कारों से निवृत्त हो कर उसने १. बहुत से शराबी मित्रों को बुलाया और रोज़ दौर चलने लगे। परन्तु मित्रों ने बहुत प्रयत्न किया, कि पहले वह स्वयं पिये, किन्तु उसने इन्कार कर दिया। जब दो चार दिन मित्रों को पिलवाई तो देखने में आया कि कोई उल्टी (क़य) करता है, कोई बकता है, कोई झगड़ता है, कोई औंधा गिर गया है, ऐसी बुरी दशा देख कर उसको शराब से घृणा हो गई। २. प्रातःकाल जब रण्डी को जा कर देखा तो शृङ्गार बिगड़ा हुआ गाल पिचके हुए, जिस चम-चमाती हुई पौशाक में शाम के समय वह परी (अप्सरा) दिखाई देती थी, अब वह चुड़ैल जैसी दीखने लगी। ३. दुकान पर सुबह से शाम तक बैठना आरम्भ किया, तो ग्राहकों की भी क्या कमी होती। खासी आमदनी होने लगी । ४. जब सब कामों से निपट कर और फ़रशी लगा कर मकान से बाहर चौपाल पर बैठा तो तम्बाकू के लालच से वहाँ पर बस्ती के बहुत से लोग आ कर बैठने लगे। उनसे बस्ती के सब समाचार मालूम होने लगे और मेल मोहब्बत बढ़ गई और जो यात्री तम्बाकू पीने के बहाने बैठते थे, उनसे उनके गाँव और आस पास के गाँवों के खाने पीने और पहरने की वस्तुओं का भाव मालूम होने लगा । और गाँव से जिस वस्तु की उसको आवश्यकता होती थी, उन्हीं तम्बाकू पीने वालों को कह देता था और वह आसानी से उसके पास आ जाती थी । और बहुत दूर-दूर तक उसका नाम हो गया कि फलाँ आदमी के दरवाज़े पर तम्बाकू का बड़ा आराम है। ग़रज़ उसके बहुत से काम मुफ़्त में होने लगे।

(१८) एक दिन इर्शाद हुआ कि बहू बेटी शर्म की, दुकानदारी नर्म की, हाकिमी गर्म की, कमाई धर्म की और दुनियाँ भ्रम की। जब तक औरत की आँख में शर्म है, तभी तक वह बहू बेटी कहलाई जा सकती है । ग्राहक से नर्मी से बातचीत करे और उसकी दो बातें सहले तभी दुकानदारी खूब चलती है। टर-टर करने और कड़ी बात करने वाले दुकानदार के पास ग्राहक जाना पसन्द नहीं करते। हाकिम (अधिकारी) नर्म हो तो दुनियाँ उसका दबाव (रोब) नहीं

मानती। कार्यालय (दफ़्तर) वाले मनमानी करने लगते हैं। अधिकारी (हाकिम) कड़ेदम हो तो काम ठीक चलता है और रौब रहता है। धर्म की कमाई आड़े आती है और अच्छा फल देती है, वरना चोरी, जुआ, रिश्वत या अन्याय से हज़ारों कमाते हैं किन्तु सब यूँ ही उड़ जाते हैं। यह संसार भ्रम है, पत्नी, पति (पति) बेटा, बेटी, अपना, पराया यह भ्रम से है, भ्रम मिटा और दुनियाँ पूरी हुई।

(१६) एक दिन एक व्यक्ति ने प्रार्थना की कि पुजारी लोग मन्दिरों में अछूतों को क्यों नहीं घुसने देते? यह मना करने वाले कौन होते हैं? और रोकने के क्या कारण हो सकते हैं? पुजारियों का अजीब ढकोसला है, यदि किसी के घर पर सूतक हो तो उसके घर का खाना पानी तक देवता की भेंट नहीं चढ़ सकता, और बहुत से कर्म और पाबन्दियाँ लगा दी जाती हैं। मन्दिर के अन्दर कोई नहीं घुसने पाता। कई मन्दिरों में तो शूद्र को मूर्त्ति के दर्शन तक नहीं करने देते।

श्री महाराज ने फरमाया कि प्रत्येक बात के दोनों ओर का विचार कर के समझने का प्रयत्न करना चाहिये १. जो मन्दिर किसी राजा का बनाया हुआ है उस में उस राजा की सारी प्रजा को नियत नियमों के अनुसार पूजन व दर्शन करने का अधिकार है। क्यों कि राजा ने सारी प्रजा से प्राप्त किये धन से वह स्थान बनवाया है, लेकिन जो मन्दिर प्रजा में से किसी ने अपनी सम्पत्ति से बनवाया है, उसमें जो कुछ भी नियम, पूजा व प्रवेश के लिये जिस जिस वर्ण के लिये जैसा जैसा उसने निश्चित किया है। उसके अनुसार सब को चलना चाहिये। धींगा धींगी करना उचित नहीं यदि ऐसा न किया जाय तो आज जिन के मन्दिर में जबरदस्ती घुसते हैं कल किसी के घर में जबरदस्ती घुसने लग जायेंगे। श्री राम, श्री कृष्ण, श्री बुद्ध यही ठाकुर की तरह अधिकतर मन्दिरों में पूजे जाते हैं। यह तीनों क्षत्रिय थे। जिस तरह से मनुष्यों को चार वर्णों में बाँटा गया है, उसी तरह ठाकुर भी चारों वर्णों के अलग अलग बाँटे हुये समझ लेने चाहिए १. मन्दिरों में जो मूर्तियाँ स्थापित हैं और जिनकी पूजा सेवा का काम ब्राह्मणों के हाथ में है उनके स्नान, भोजन, शयन, पूजन, दर्शन

सब का नियम ब्राह्मणों के रहन सहन के अनुसार है। छूत छात का विचार भी वैसा ही है जैसा कि ब्राह्मण और वर्णों से करते हैं। शूद्र के घर का या जिस किसी के घर सूतक हो तो ब्राह्मण उसके घर का खाना नहीं खाते और पानी नहीं पीते। उसी तरह से मन्दिरों के ठाकुर जी के भी नियम समझने चाहिये। उनको भी शूद्र और सूतक से परहेज़ होना चाहिए। २. यह सब अवतार जो ठाकुर कर के पूजे जाते हैं उनका जन्म क्षत्रिय कुल में हुआ है इसलिए क्षत्रियों के ठाकुर क्षत्रियों के रिश्तेदार और सम्बन्धी हुये। जिस तरह से क्षत्रियों में आपस में खाने पीने का भेद नहीं। उसी तरह से उनके घर के ठाकुर जी को भी उन के घर में होने वाले शूद्र सूतक से परहेज नहीं होना चाहिए। ३. जो खूब चढ़ावा चढ़ाये ऐसे धन देने वाले यात्री को मन्दिर के अन्दर ले जाते हैं और वह ठाकुर जी की चरण सेवा भी कर सकता है, उनको शृङ्गार आदि भी करा सकता है। जहाँ धन से सब नियम रद्द हो जाते हैं उन को वैश्यों का ठाकुर मान लो। ४. जहाँ कोई आचार विचार न हो, पूजने वाला जो कुछ आहार, मांस, मदिरा हो वही उनके देवताओं का चढ़ावा और भोग हो, ऐसे देवता को शूद्रों का ठाकुर समझना चाहिए।

(२०) एक दिन इर्शाद हुआ कि कर्म के तीन भेद हैं। कर्म, विकर्म, अकर्म। १. कर्म उसे कहते हैं कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र चारों वर्ण अपने अपने धर्म पर जैसा उनके लिये वेद व शास्त्र में लिखा है स्थिर रहें। २. विकर्म वह है कि एक वर्ण का धर्म दूसरा वर्ण करे। ३. अकर्म उसे समझना चाहिये कि जब बूझ कर चोरी व कुकर्म आदिक करके संसारी जीवों को दुख देवें।

(२१) एक दिन एक व्यक्ति ने प्रार्थना की कि सिद्धियाँ कैसे प्राप्त होती हैं श्री महाराज ने फ़रमाया कि श्री भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध में इनके वश करने का हाल लिखा है। अग्नि में गर्मी, जल में सर्दी, पृथ्वी में कड़ाई, हवा में स्पर्श और आकाश में शब्द। इन पाँचों तत्व में परमात्मा का ध्यान करने में पहली सिद्धि मिलती है। २. पाँचों भूतात्मा व आकाश आदिक का ध्यान करने से दूसरी सिद्धि पाता है। और जलती आग और बढ़ते पानी को रोक सकता है। ३. विराट रूप के ध्यान से तीसरी सिद्धि मिलती है। ४. चतुर्भुज व छोटे रूप के

ध्यान से चौथी सिद्धि मिलती है। ५. महत्तत्व रूप के ध्यान से पाँचवीं। ६. अहङ्कार रूप के ध्यान से छठी सिद्धि। ७. विष्णु रूप के ध्यान से सातवीं सिद्धि और वासुदेव रूप के ध्यान से आठवीं सिद्धि प्राप्त होती है। ९. निराकार के ध्यान से संसारी चाहना छोड़ कर परमानन्द में रहते हैं। १०. परमेश्वर के श्वेत रूप के ध्यान से कभी बूढ़ा नहीं होता। ११. अपने शरीर में परमात्मा का ध्यान करने से दूर की बात सुन सकता है। १२. सूर्य का ध्यान रखने से हज़ारों कोस की चीज़ दिखलाई देने लगती है। १३. वायु का ध्यान करने से एक क्षण में जहाँ चाहे जा सकता है। १४. योगाभ्यास करके अग्नि में मन लगाने से अपना रूप जैसा चाहे वैसा बना ले। १५. अपने हृदय में आत्मा का ध्यान रखने से दूसरे तन में अपना जीव प्रवेश कर सकता है। १६. सतोगुण का ध्यान करने से जिनके सङ्ग चाहे उसके साथ विहार करता फिरे। १७. जो हर वक्त मन में यह विचार करता रहे कि सब बात परमेश्वर की आज्ञा से होती है उसको सब छोटे बड़े मानते हैं। १८. योगाभ्यास के साथ अपना स्वाँस ब्रह्माण्ड में चढ़ाने से भूत भविष्य व वर्त्तमान काल की बातें मालूम होती हैं। जो अपनी इन्द्रियों को अपने वश में रख कर सच्चे मन से परमात्मा के चरणों का ध्यान करता है है उसके सामने अठारहों सिद्धियाँ हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं। परन्तु इन सिद्धियों में फँसने वाला नष्ट हो कर परमात्मा को नहीं पाता।

(२२) एक दिन इर्शाद हुआ कि धर्म दो प्रकार से माना गया है एक बाह्य दूसरा आन्तरिक जिसके चार दर्जे हैं। शरीयत, तरीकत, हकीकत और मार्फत। इस में शरीयत और तरीकत बाह्य हैं। हकीकत,(वास्तविकता) और मार्फत (द्वारा) आन्तरिक है आन्तरिक वह अवस्था है जो सब देश सब काल और सब बातों के लिए एक सी है और सब ही उनको मानते हैं, जो बाह्य अर्थात् शरीयत और तरीकत ऐसे हैं जो देश काल और पात्र के अधीन हैं। इसलिये प्रत्येक मनुष्य प्रत्येक देश और प्रत्येक समय इनमें परिवर्तन होता रहता है। किसी देश में दाढ़ी रखना, मूँछ मुड़ाना मना है, तो किसी में अच्छा समझा जाता है। किसी समय व्रत रखे जाते हैं, तो किसी समय इनका उदयापन करते हैं। किसी समय जनेऊ चुटिया रखना, सन्ध्या वन्दन धर्म समझे जाते हैं और किसी समय इन सब बातों का त्याग लिखा हुआ है। किसी देश में गाय का माँस

मना है अर्थात् नहीं खाते हैं और किसी में खाते हैं जैसे भारत के बौद्ध गाय का मास नहीं खाते, किन्तु चीन, जापान और तिब्बत वाले बौद्ध और हिन्दू इसे खाते हैं। इसलिए बाहरी रसम रिवाज पर ऐसी हठ नहीं करनी चाहिये, कि प्रत्येक देश और हर समय इनका होना आवश्यक है। जो न करेगा वह उस मत से बाहर हो जायेगा। आन्तरिक अवस्था में ऐसा नियम है कि हर देश और समय एक ही हालत पर रहता है। इसमें ज़रा भी अन्तर नहीं हो सकता, जिस किसी की पहुँच इस आख़िरी दर्ज़े तक हो गई हो उसके लिये सब धर्म बराबर हैं सब मत बराबर हैं। वह सब झगड़ों से अलग हो जाता है। इसलिए हर बुद्धिमान मनुष्य का कर्त्तव्य है, कि पहली दो दशाओं शरीयत और तरीक़त में देश, काल और पात्र के अनुसार परिवर्त्तन करता चला जाय, इस से धर्म की कुछ हानि नहीं होती। देखो सारे ईरानी मुसलमान हो गये, परन्तु त्यौहार, भेष, ज़बान और ख़ुराक उन्होंने वही रखे जो मुसलमान होने से पहले उनके देश में थे। फ़ारसी छोड़ कर अरबी ज़बान को नहीं अपनाया। त्योहारों में नौ रोज़ बड़े ज़ोर शोर से अभी तक मनाया जाता है। लिबास (वेश भूषा) फ़ारिस है और ख़ुराक (खाना) भी अपने देश का है भाषा भी फ़ारसी बोली जाती है। न मालूम भारत के दिन ही क्या बुरे हैं, उसका सितारा क्या गर्दिश (बुरे ग्रहों) में है, कि यहाँ जहाँ किसी ने एक धर्म और मत को छोड़ कर दूसरा ग्रहण किया तो फिर पहले मत और मज़हब (धर्म) की बातों से तो उसको इतनी चिढ़ हो जाती है कि उस का नाम तक लेने में उसकी जिह्वा जलती है और ऐसे कार्य करता है जिससे उस का नया पंथ प्रकट होता रहे। गोया उसने पहली शरीयत और तरीक़त को छोड़ देना ही मुक्ति मान लिया है।

(२३) एक दिन इर्शाद हुआ कि गन्ना किसी से यह नहीं कहता कि मैं मीठा हूँ। अपने अन्दर मिठास का रस लिये पड़ा रहता है, लेकिन मीठे के चाहने वालों ने उसको ढूंढ़ कर प्राप्त कर लिया और उससे भिन्न-भिन्न प्रकार के लाभ उठा रहे हैं। इसी प्रकार गुणवान व्यक्ति कभी भी अपने मुंह से अपने गुणों को प्रकट नहीं करता। बल्कि जहाँ तक हो सके उसको छुपाता है। वह समझता है कि यदि इस गुण का हाल मालूम हो गया तो इसके कारण मुफ्त में मेरी बेल बंधेगी और——

"ऐ रोशनीये तबा तो बरमन बलाशुदी।"

इसका अर्थ यह है कि ऐ मन की रोशनी, तू मेरे लिये बला हो गई, तेरे कारण मेरे सामने झँझट आ जायेंगे। गुणवान मनुष्य की पहिचान यह है कि वह अपने गुण को लिये चुपचाप रहता है। आप या किसी और के द्वारा मुँह से कह कर या लिख कर कभी गुण को प्रकट करने का प्रयत्न नहीं करता है, लेकिन उसकी रहनी, सहनी, बोल चाल उसका व्यवहार ऐसा होता है, कि जिस से गुणवान मनुष्य धीरे धीरे उसका पता लगा लेते हैं और विभाग, अन्वय, समास, विश्लेषण द्वारा इनके गुणों का पता लगा लेते हैं। जैसे जड़ी बूटियों के गुण अवगुण का पता लगा लिया जाता है, उसी तरह गुणवान के गुणों का भी पता लग जाता है।

(२४) एक दिन इर्शाद हुआ कि श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध में संसार की उत्पत्ति इस तरह से बतलाई है कि आत्मा पुरुष निराकार रूप है वहाँ मन,वाणी पहुंचने की सामर्थ्य नहीं रखते। जब उस पुरुष की मौज संसार उत्पत्ति करने की होती है तब वह अपनी माया को जिसको प्रकृत्ति भी कहते है, प्रेरता है। उस माया से सात्विक, राजस, तामस तीन गुण प्रकट होते हैं। जब तक तीनों गुण बराबर रहते हैं तब तक कोई जीव उत्पन्न नहीं होता है। जब उनके घटने बढ़ने से संसार की चाहना होती है, व आत्मा का प्रकाश माया में मिश्रित होने से महतत्त्व प्रकट हो कर उसमें अहङ्कार उत्पन्न होता है। अहङ्कार से वैकारिक, तामस, व तेजस प्रकट होते हैं वैकारिक से पंचभूत व तामस से ग्यारह इन्द्रियाँ, व तेजस से ग्यारह देवता इन्द्रियों के स्वामी उत्पन्न हो कर जब तक यह सब अलग रहते हैं तब तक ब्रह्माण्ड पुरुष प्रकट नहीं होता। जब आत्मा की शक्ति से यह सब वस्तुयें इकट्ठी हो जाती हैं तब ब्रह्माण्ड रूप हो कर विष्णु रूप कहलाता है। उनकी नाभी कमल से ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं और रजो-गुण से सब जीव उत्पन्न कर के तीनों लोक की रचना करते हैं। देवता स्वर्ग लोक व दैत्य दानव आदि पाताल लोक व मनुष्य आदि मृत्यु लोक में रह कर अपने कर्मानुसार स्वर्ग व नर्क का दुख सुख भोगते हैं। व ब्रह्मा के एक दिन में चौदह इन्द्र बदल जाते हैं। जब ब्रह्मा का एक दिन बीत कर संध्या समय सोते हैं तब कोई लोक नहीं रहता। जब ब्रह्मा प्रातःकाल उठ कर रचना करते हैं, तब फिर सब लोक प्रकट हो जाते हैं। व ब्रह्मा की सौ वर्ष की आयु पूर्ण होने

पर सिवाय पानी के कुछ नहीं रहता। पृथ्वी पानी में, पानी अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाश में, आकाश अहङ्कार में, अहङ्कार महतत्त्व में, महतत्व माया में मिलकर माया निराकार रूप में समा जाती है।

(२५) एक रोज़ एक सत्संगी ने प्रार्थना की कि आजकल हरामखोरी बहुत फैल गई है। रिश्वत का बाज़ार ऐसा गर्म है कि अदालत के पेशकार और चपरासी की उंगलियां हिलती ही रहती हैं। क्या हाकिम अन्धे तो नहीं होते? क्या वे हकूमत और न्याय इसी में समझते हैं कि उनके पेशकार और अरदली की मुट्ठी गर्म और जेब तनातन भरी रहे। और वकीलों ने यह हाल कर रखा है कि 'मुफ्त का चन्दन, घिस मेरे लाला'। मुद्दई और मुद्दालय दोनों से हर-पेशी के दिन रुपया पेशकार को दिलाया जाता है। चाहे बाद में मुकद्दमा पेश हो या न हो। मुकद्दमे से पहले पेशकारी आवाज़ लगती हैं।

श्री महाराज ने फरमाया कि जब जाड़ा पड़ता है तो क्या केवल अदालत वालों को ही लगता है और किसी को नहीं लगता। आपका काम कचहरी और अदालत से अधिक पड़ता होगा? इसीलिये वहीं के रंग और ढङ्ग का आपको पता है। अगर छानबीन करोगे तो यह खराबी न्यूनाधिक सभी जगह मिलेगी। इसका कारण प्रबन्ध का ढीलापन और अधिकारियों की लापरवाही होती है। जब यह समझ लिया जाता है कि हमारा क्या बिगड़ता है जो मरता है उसे मरने दो, तभी ऐसा अन्धेर फैलता है। उस सत्संगी ने फिर प्रार्थना की कि आपका विचार इस विषय में क्या है? श्री महाराज जी ने फरमाया कि हमारे विचार से आप क्या करना चाहते हैं? दुनियां हमारे विचार पर चलने के लिये तो नहीं बनाई गई है। वह तो जैसा उस परमात्मा को मंजूर होता है वैसा ही रंग ढङ्ग बन जाता है।

चूंख्वाहद के वीरां कुनद आल्मे निहद मुल्क दरपंजये ज़ालमें।

श्री भगवान् जब संसार को नष्ट करना चाहते हैं तब प्रबन्ध अत्याचारी के हाथ में दे देते हैं। और न हम अपनी मर्ज़ी पर किसी को चलाना चाहते हैं। हमारा कहना तो यह है कि शास्त्र की सीमा को ही अपना अगुआ बनाओ। जिस धर्म की मर्यादा बनाने वाले ने विधि निषेध बनाया है उस पर

चलने में ही कल्याण समझना चाहिये। हराम के अर्थ हैं मना करना, रोकना, धर्म के विरुद्ध होना, इसलिये जितने ऐसे काम हैं वे सब ही हराम हैं। क्या जो पेनशन पाता है और वह प्रातः से शाम तक बैठ कर अपना समय नष्ट करता है। जिसको माँ बाप की कमाई का रुपया हाथ लगा है वह उसको बढ़ाता नहीं बल्कि बैठे २ खाता है और कोई काम दुनियां, संसार का, परमार्थ या परोपकार का नहीं करता क्या वह हराम का खाना नहीं है? खाना सामने आने से पहले यह सोचना चाहिये कि जिस खाने को हम खायेंगे उसके लिये हमने अधिक परिश्रम कर लिया है। अगर नहीं किया है तो खाने के पश्चात् काम करने का पूरा विचार कर लिया है। अगर ऐसा किये बिना खाना और खाकर निकम्मा पड़ कर सो जाना, और कोई काम कहें तो न करना, हराम से किसी प्रकार भी कम नहीं। केवल अपना खाना और सम्बन्धियों का ध्यान न रखना भी हराम है। इसका यह अर्थ नहीं कि मनुष्य सुबह से शाम तक हाड़ मांस पेला ही करे—कदापि नहीं। बल्कि स्वास्थ्य रखने के लिये समय पर दिशानिवृति, स्नान आदि भ्रमण, खेलकूद, सोना आदि सब आवश्यक बातों को युक्ति पूर्ण करते हुए कुछ न कुछ वक्त ऐसा होना चाहिये जिसमें मनुष्य अपनी जीविका, अपनी गृहस्थी, अपना परिवार, अपना समाज, अपना देश, अपनी जाति, और अपनी आत्म उन्नति के कामों को अपने २ फिरके और धर्म के बतलाये हुए नियमों पर चले, यदि ऐसा करे तो वह अपने धन को ही नहीं बल्कि अपने जीवन को भी हराम से बचा कर हलाल में ले आता है।

(२६) एक दिन इर्शाद हुआ कि शब्द दो प्रकार का होता है। एक आहत जो ताड़ना से होता है, जैसे ठोकने, फूकने, रगड़ने से जैसे ढोलक, बीन, सारङ्गी आदि से निकलता है और विश्व, पत्नी और मनुष्य की आवाज़। दूसरा अनाहद, जो ब्रह्मण्ड में भरा हुआ है और ध्वनि की तौर पर सुनाई देता है।

(२७) एक दिन इर्शाद हुआ कि अन्न, मीठा और दूध इन्हीं तीनों वस्तुओं में से एक-एक दो-दो या तीनों के मेल से तरह-तरह की मिठाई, खीर, रबड़ी, दही, मक्खन, घी, बरफ़ी, पेड़ा लड्डू जलेबी बनती है। इनके बनाने की

विधि भी बहुत देर से चली आ रही है। यदि कोई नई दुकान खोलता है और वही पुरानी मिठाइयाँ बनाता है तो अधिक ग्राहक उसके कैसे जायेंगे इसलिये वह कोई न कोई या जितना अधिक उससे बन सके नई मिठाईयाँ बनाता है। खुरमे की जगह बालूशाई या छोटी खुरमी। मगद की जगह मोतीचूर और ग्राहकों की रुचि के अनुसार किसी में मीठा कम करके, किसी में अधिक किसी में मावा अधिक या कम करने से स्वाद में भी अन्तर हो जाता है। इस तरह बड़े ग्राहकों को अपनी ओर खींच लेता है और उनसे लाभ उठाता है। बस यही दशा आज-कल के गुरू महात्माओं की हो रही है। वेद और शास्त्र के शब्दों को उलट पुलट कर और उनके नाम अदल बदल कर नये मत गढ़ लेते हैं और जिज्ञासुओं को धोखा देते हैं। कोई कहता है कि पुराने आचार्य त्रिकुटी तक गये थे, कोई सतलोक तक पहुँचा था। हम रे गुरू और हम इससे भी आगे अगम, अलख, अगोचर, अनामी स्थान तक पहुँचे हैं। कोई कहता है कि ॐ शब्द सुनाई पड़ता है। कोई "अल्ला हू" बतलाता है। लेकिन जिसने थोड़ा सा भी अभ्यास किया है वह समझता है कि यह सब बातें तीतर की बोली और रेल की आवाज़ से ध्यान में जम जाने वाले तरह-तरह के अर्थ के निकालने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। ध्याता, ध्यान, ध्येय तथा त्रिपुटी ही मिट जाती है तो फिर शब्द के भेद कैसे निकलें, और कौन निकाले ? वेद शास्त्र और पुराणों में जो भजनाभ्यास के नियम बतलाये हैं वे बिलकुल ठीक और सच्चे हैं। अनुभवी महात्माओं से निकले हुए हैं उनसे अच्छा नियम कोई निकाल नहीं सकता। श्री कृष्ण भगवान् ने गीता के चौथे अध्याय के पहले तीन श्लोकों में कहा है कि इस अविनाशी योग को भगवान् ने पहले किससे कहा और जब-जब लोप होता है तब-तब उसी पुरातन योग को फिर वर्णन करते हैं। फिर भला इस कलयुग में ऐसा सामर्थ्यवान कौन हो सकता है कि योगादि के नये तरीके निकाल सके या पुराने महात्माओं से आगे जाकर उन लोकों का हाल मालूम करके वर्णन कर सके, मगर बेचारे मोह ग्रस्त बुद्धि से मान बड़ाई के चक्कर में पड़ कर जिज्ञासुओं को फुसलाते हैं।

(२८) एक दिन इर्शाद हुआ कि आज कल बहुत से पंथों के आचार्य ऐसा उपदेश करते हैं कि पहले समय में बन में जा कर तपस्या करते थे तब उनको अनुभव होता था। आजकल हमने ऐसा मार्ग निकाला है कि बन व

जंगलों में जाकर तपस्या करने की कोई आवश्यकता नहीं। घर में रहते हुये उस युक्ति को कमाने से अनुभव हो जाता है। इसके अन्दर उनका यह भाव छुपा हुआ होता है कि प्राचीन काल के आचार्यों को यह युक्ति मालूम न थी, हमने नई निकाली है। यह बात किस सीमा तक ठीक है इसका तो प्रत्येक जिज्ञासु जिसने दो चार प्राचीन शास्त्र देख लिये हों स्वयं पता लग सकता है, लेकिन इतना कहना आवश्यक मालूम होता है कि जिन पुराने ऋषि महाऋषियों और मुनियों के बनाये हुये शास्त्र पड़कर और उनसे कतर बोंत करके वाणी बना २ कर और किताबें छाप कर गुरू बन बैठते हों। अर्थात् उन्हीं के अनुसार साधन करके प्रमाण पत्र मिला है। किसी को पूर्ण योगी कहा है तो किसी को माया, और किसी को दयाल देश और अपने को सब से ऊँचा बताते हैं। प्राचीन शास्त्रों में अधिकार प्रति बातें लिखी हैं। कई ऐसे मनुष्य हैं जिनको घोर तपस्या की आवश्यकता है उसके बिना अनुभव होना कठिन होता है। कई ऐसे अधिकारी हैं जिनको साधारण उपदेश से ही इतना शीघ्र उपदेश लग जाता है जैसे दियासलाई को रगड़ने से अग्नि पैदा हो जाती है। जिसकी इन्द्रियाँ और मन जितने मलीन हों उतनी ही घोर तपस्या की उनको आवश्यकता है। जिनके मन में जितना अधिक विक्षेप है उतना ही योग आदि क्रिया करना और भक्ति उपासना द्वारा मन को एक जगह ठहराने की उनको आवश्यकता है जिनकी इन्द्रियाँ और मन विक्षेप रहित हैं उनका आवरण गुरू के उपदेश से दूर हो जाता है। इसलिये महाऋषियों ने अपने शास्त्रों में तीनों प्रकार के मनुष्यों के कल्याण के लिये कर्म, उपासना, ज्ञान और भक्ति आदि के कुल नियम लिख दिये हैं ताकि उनको पढ़ने से पहले अधिकारी की रुचि किस बात में होती है यह निश्चय कर लिया जाये फिर गुरू उनकी प्रकृति और रुचि दोनों को खूब सोच समझ कर उनके गुण और स्वभाव के अनुसार उनको उपदेश करें। तामसी को घोर तपस्या की, राजसी को साधारण कर्म काण्ड और उपासना की, सात्विक को भक्ति ज्ञान का उपदेश जैसा पात्र हो उसके अनुसार करें। एक लकड़ी से सब को हांकना ठीक नहीं होता। अगर पहले यह नियम नहीं थे तो राजा जनक, वेद व्यास जी आदि को गृहस्थ में रहते ही कैसे ज्ञान प्राप्त हो गया ?

(२९) एक दिन एक व्यक्ति ने प्रार्थना की कि गृहस्थ आश्रम में भी स्वामी जी होते हैं। यह कैसे होते हैं ?

श्री महाराज जी मुस्कराये और फ़रमाया कि जो खूब भङ्ग पिये, चरस और गाँजे की दम लगायें और खूब शराब पीये और काम, दाम भर भी न करे। जोरू बच्चे चाहे भूखे मरें, चाहे भीख माँग कर खायें, आप दूध जलेबी का नाश्ता करें। आजकल ऐसे गृहस्थी स्वामी ही कहलाते हैं।

(३०) एक दिन इर्शाद हुआ कि जब विद्यार्थी पाठशाला से छुट्टी पा कर निकलते हैं तो कैसे उछलते, कूदते, हंसते, खिलखिलाते एक दूसरे से अठखेलियाँ करते और एक दूसरे को रेलते, ठेलते हैं। यह उनकी प्रसन्नता का उदाहरण है। इसी तरह से जब खेल कूद में जो लड़का या पक्ष जीत जाता है वह किस तरह से उछल कूद कर बग़लें बजाते; ताली पीटते और खुश नज़र आते हैं। माता पिता जब छोटे बच्चे को खिलाते हैं तो उसको गोद में बैठा कर उछाल-उछाल कर उसका मुँह चूम कर कैसे प्रसन्न होते हैं। स्त्री और पुरुष जब आपस में प्रेम पूर्वक मिलते हैं तो कैसे प्रसन्न होते हैं। आयु और विचार की एकता वाले मनुष्य भी जब आपस में मिल कर खुशी और प्रसन्नता का आनन्द लूटते हैं, हंसी और मज़ाक में कैसे क़हक़हा लगाते हैं कि हँसते-हँसते लोट पोट हो जाते हैं। ऐसा करने और होने के पश्चात् हँसने वाले की इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि सब में एक आनन्द सा भर जाता है। एक बात और भी देखने में आती है कि गधा, घोड़ा, कुत्ता, बिल्ली, गायें, बैल, तोता, मैना, चिड़ियाँ, बन्दर, गर्ज़ किसी पशु पक्षी को हँसते नहीं देखते। सम्भव है कि वह भी अपने तरीके पर हँसते हैं एक दूसरे से इठलाते तो ज़रूर हैं मगर मनुष्य अभी तक जानवरों में इस हँसी की हालत का पता नहीं लगा सका। सिर्फ़ मनुष्यों में ही हँसना प्रत्यक्ष दीख पड़ता है। इससे मालूम होता है कि हँसना, बोलना और प्रसन्न रहना मनुष्य के स्वास्थ्य स्थिर रखने और बढ़ाने के लिये आवश्यक हैं।

(३१) एक दिन इर्शाद हुआ कि हरिद्वार में गङ्गा जी के या किसी साफ़ पानी से भरे तालाब के किनारे जिसमें मछलियाँ तैरती हों तो वे इतनी पास दिखलाई देती हैं कि उनको हाथ से पकड़ने को जी चाहता है। पर जब हाथ डालो तो हाथ नहीं आती, फिसल कर निकल जाती हैं। उनको पकड़ने के लिये बन्सी या जाल से ही काम लिया जाता है। इसी प्रकार यह मन सामने आ

जाता है और जिज्ञासु को यह मालूम होता है कि अब मैंने उसको पकड़ा मगर वह बहिर्मुख हो ही जाता है। उसको काबू करने के लिये इष्टदेव, गुरू या जिस पर प्रेम हो उसके ध्यान रूपी वंशी या योगाभ्यास रूपी जाल से ही काम लिया जाता है, जिस तरह से जाल नीचे को बैठता जाता है और चारों तरफ से मछलियाँ उसमें घिर जाती हैं, इसी प्रकार से योगाभ्यास से नौ द्वार बंद करके-और भी दूसरे-दूसरे तरीकों से-यह मन चारों ओर से घेरे में आ जाता है।

(३२) एक दिन इर्शाद हुआ कि मनुष्य का मन ऐसी प्रकृति का बना हुआ है कि जिस पर हर चीज़ का चिन्ह बन जाता है जिसको संस्कार कहते हैं, और मन की ऐसी अवस्था है कि वह चाहे जिस चीज़ को निकाल कर इस तरह फैंक दे, जैसे कूड़े करकट को बुहार कर घर से बाहर फैंक देते हैं। चाहे जिस चीज़ को ऐसे संभाल कर रख ले जैसे पोटली और गाँठ में बाँध कर वस्तु को सुरक्षा से रखते हैं। किसी समय किसी की ओर से बुराई का विचार अथवा किसी काम के करने न करने का न्याय ऐसा जबरदस्त कर लिया जाता है कि उससे मनुष्य टलता नहीं, इसे न्याय का विषय कहते हैं कि उसने तो इस बात की अपने मन में गाँठ बाँध ली है। इससे निश्चय होता है कि जिस तरह से लोहे, लकड़ी, मिट्टी इत्यादि में साँचा बना लेते हैं और इसी से फिर इस तरह के पदार्थ जितने चाहें बना लेते हैं, इसी तरह से मन में जिस बात का पक्का संस्कार बन गया फिर साँचा सा बन जाता है और उस तरह के विचार और बातें जितनी चाहें पैदा होती चली आवेंगी। यह विचार बुरे या भले दोनों तरह के पैदा किये जा सकते हैं। जब किसी से मित्रता होती है तो उसकी सब बातें अच्छी ही अच्छी लगती हैं कोई बुराई नहीं मालूम होती। मगर बाद में दुश्मनी हो गई तो हजारों दोष दिखाई देने लगते हैं। भलाई सब काफूर हो जाती है। इसीलिये उपदेश किया जाता है कि मन को बुरे विचारों से साफ रखना चाहिये। वरना वह विचार ही सांचा बन कर फिर इसी तरह के विचार पैदा करने का ज़रिया बन जाते हैं। जिस तरह सांचे में चीज ढालने बनाने में न तो बहुत देर लगती है और न इतना परिश्रम करना पड़ता है खटाखट चीजें ढलती जाती हैं इसी तरह से बुरे या भले विचार के संस्कार बनाने में कुछ अभ्यास की आवश्यकता होती है। लेकिन जब एक बार मन उस पर झुक गया

और संस्कार दन गये फिर उस तरह के विचार स्वयं पैदा होते चले जाते हैं और उसी तरह के कर्म स्वभाविक होते चले जाते हैं। जिन कामों से बचना है उस तरह के विचार मन में पैदा न होने पावें। इतना अभ्यास ही मनुष्य को बुरे से बुरे कर्मों और पापों से बचा देता है। और जो शुभ कर्म करते हैं उनका चिन्तन करते रहने से ही ऐसे संस्कार बन जाते हैं कि वह शुभ कर्म स्वयं स्वभाविक होने लगता है।

(३३) एक दिन एक व्यक्ति अपनी धर्म पत्नी को साथ लेकर आये और अपने बेटे की शिकायत करने लगे कि श्री महाराज जी वह हमको बहुत तंग और परेशान करता है। उसकी हरकतों से कुढ़ते रहते हैं। हमको जला-जला कर खा लेगा।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि हिन्दुओं में तो माता पिता की सबसे बड़ी अभिलाषा यह होती है कि कम से कम एक बेटा तो हो जो अन्तिम दाह-कर्म कर दे। सन्तान उसका यह उल्टा अर्थ निकालती है कि एक दफा जलाने पर माता-पिता की सब सम्पति का मालिक बनेगा तो रोजाना जलाने से न मालूम क्या उत्तम फल होगा। यह तो आखिर में भी आप को जलायेगा ही, जिसकी आप और सब हिन्दू माता पिता अभिलाषा करते हैं। फिर जीवन भर जलाते रहने से आप इतना दुख क्यों मानते हैं। आजकल घर-घर ऐसा ही हाल है, चेला गुरू की नहीं मानता, स्त्री पति को उंगलियों पर नचाती है, सन्तान माँ-बाप को दुखी करती है, दुनियाँ दारी की तो यही हालत है। गोसाईं तुलसी दास जी के समय तक यह प्रथा थी।

मात पिता प्रभु गुरू की बानी। बिना बिचार करिये हित मानी।।

अब यह समय आ गया है कि—

बेटा, बहू जोरू की बानी। कान दबा कीजे, हित मानी।।

(३४) एक दिन इर्शाद हुआ कि भक्तों को कीर्तन करते और भगवद् नाम लेते समय जो आनन्द होता है उसको नाम अमृत कहते हैं और भगवद् मूर्ति और अपने प्रीतम का दर्शन करते समय जो सुख प्राप्त होता है उसको रूप अमृत कहते हैं। रास आदि भगवान की लीला, लीला स्थान गोकुल, वृन्दावन, गोवर्धन आदि की यात्रा और दर्शन से चित्त को जो प्रसन्नता होती है उसको लीला अमृत कहते हैं। इस तरह से नाम अमृत, रूप अमृत और लीला अमृत के

आश्रय से वह अपने मार्ग को सुखमय और दुखदाई बनाये रहते हैं।

(३५) एक दिन इर्शाद हुआ कि संसार में चार प्रकार के मनुष्य होते हैं (१) जो अपनी हानि करके दूसरों की हानि करते हैं यानी दूसरों की बदशकुनी करने को अपनी नाक कटा दें। (२) जो अपना फायदा करने के लिये दूसरों को नुकसान पहुँचाते हैं उनको स्वार्थी कहते हैं (३) जो अपना लाभ करने के लिये दूसरों का लाभ करते हैं उनको स्वार्थी मित्र कहते हैं। (४) जो अपना नुकसान करके भी दूसरों को लाभ पहुँचाते हैं वे सब से उत्तम प्रकृति के पुरुष परमार्थी और परस्वार्थी हैं।

(३६) एक दिन इर्शाद हुआ कि—

काहु न पावक जरि सकै, काहु न समुद्र समाइ।
काहु न करै अबला प्रबल, केहि जग काल न खाइ॥

यश नहीं पावक जर सके, मन न समुद्र समाय।
सुत नहीं अबला जन सके, नाम काल नहीं खाय॥

इसमें मन को इतनी बड़ाई दी है कि समुद्र में भी नहीं समाता है, समुद्र इससे छोटा है, लेकिन बाज़ मन ऐसे तङ्ग और संतोषी होते हैं कि प्रकृति के एक ही दृश्य और रस में ही चिपक जाते हैं। मजनू लैला में ही, फरहाद शीरीं में ही और गोपियां श्रीकृष्ण में ही भरपूर हो गई थीं। बाज़ शराबी शराब के ही हो जाते हैं। बाज कृपण धन ही धन के हो रहते हैं। इससे अधिक न तो उनकी आशा होती है, न ही उनका मन दूसरी वस्तु को चाहता है। लेकिन बाज मन ऐसे होते हैं कि ब्रह्माण्ड भर की धन, सम्पदा, मान,बड़ाई सुन्दरता उनके सामने रखदो फिर भी उनका मन किसी एक वस्तु पर नहीं ठहरता। सब मज़े और रस भी चख लें, और संसार भर के भोगों को भोग लें तब भी उनका मन किसी वस्तु में बँधता नहीं है। वे कमल पत्र की तरह माया के दृश्यों के बीच रहते हुए भी उनसे मन को दूर रखते हैं। मन को चलायमान नहीं होने देते।

(३७) एक दिन एक मनुष्य ने पूछा कि भारतवर्ष और पश्चिमी देशों में धर्म सम्बन्धी कामों और नियमों में क्या अन्तर है ?

श्री महाराज ने फ़रमाया कि हमने तो पश्चिमी सभ्यता सम्बन्धी

ग्रन्थ नहीं देखे फिर हमको उनका पूरा ज्ञान कैसे हो सकता है और बिना पूरे ज्ञान के उस वस्तु के बारे में क्या राय दें। अलबत्ता जो समाचार आप लोग सुनाते हैं उससे हमने यह परिणाम निकाला है कि पश्चिमी देशवासी पदार्थ ज्ञान और सामाजिक जीवन के सुधार में बहुत तत्पर हैं। उनका विचार है कि अपनी जरूरत की कुल चीजें हम प्राप्त करलें और जो न हों उनको बनाना आरम्भ करदें और बना लें। सामाजिक जीवन को इतना ठीक करलें कि हर तरह का सुख हमको उससे प्राप्त हो। भारतवासी तत्व ज्ञान की ओर झुके हुए हैं। उनका विचार है कि पदार्थ ज्ञान चाहे जितना प्राप्त करलें और सामाजिक जीवन चाहे जितना बढ़ा लें और अच्छा बना लें पर पूर्ण सुख प्राप्त हो ही नहीं सकता। पूर्ण सुख अपना स्वरूप पहिचानने, ईश्वर चिन्तन और उसके साक्षात्कार ही में है। इस बात की आवश्यकता है कि मनुष्य जीवन के सम्बन्ध में हम अपना आदर्श केवल अपनी गृहस्थी, परिवार, गाँव, शहर, देश से हटा कर संसार भर के साथ बढ़ायें। सम्पूर्ण संसार की संख्या की अपेक्षा भारतवर्ष की जनसंख्या लगभग छठवाँ भाग होगी। उसका और देशों से क्या सम्बन्ध है। इसका ज्ञान भी प्राप्त करना चाहिये। इस देशवासियों के कुछ काम ऐसे हैं जो और देश वालों से बिलकुल भिन्न हैं, क्योंकि लग-भग सभी पश्चिमी देश केवल उन्हीं बातों को मानते हैं जिनका होना तर्क वितर्क बुद्धि के निर्णय से हो सकता है, और माना जा सकता है, क्योंकि उनके मन में विचार की अपेक्षा वस्तु की महिमा अधिक है वे धर्म को, सामाजिक जीवन ठीक रखने का साधन मानते हैं और उनके विचार में सामाजिक जीवन का ठीक हो जाना ही मुक्ति है। भारतवासी सदा इस पर जोर देते हैं कि वस्तु से विचार का पद ऊँचा है और धर्म का सम्बन्ध अनुभव से है न कि सामाजिक सेवा से। इसी कारण पश्चिमी देशों में नई नई कलें निकलती आ रही हैं, और सामाजिक जीवन में परिवर्तन हो रहा है। भारतवर्ष सामाजिक जीवन को प्राचीन मार्ग पर चलाने का इच्छुक है। इसमें सांसारिक जीवन को अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता। अपने स्वरूप को पहिचानने की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है। भारत वासियों का आदर्श है कि सामाजिक व्यवहार जैसा चलता है वैसा चलने दो। विचार, ध्यान और स्वरूप को साक्षात् करके जन्म कर्म के बन्धन

से छूट जाओ। सामाजिक जीवन में केवल इतना ध्यान दो कि कोई बुराई न होने पाये, वरना स्वयं उसका बुरा फल भोगना पड़ेगा। समाज को उभारने और ऊँचा करने की आवश्यकता नहीं। भारतवासियों का निश्चय है कि भगवान् स्वयं अपने घट में हैं। उनको या उनके राज्य को इस भूमण्डल पर लाने की आवश्यकता नहीं। उनका विचार मुक्ति की ओर इतना लगा हुआ है कि वे विषयों की ओर ध्यान ही नहीं देना चाहते। पश्चिमी महाशय मार्ग की छोटी छोटी बातों के पूरा करने में उनके परिणाम और अभिप्राय समझे बिना भी उनमें बहुत समय लगाते हैं। उनका विचार केवल इस जीवन को ठीक चलाना है। गुरू परम्परा उपदेश के अनुसार भारत वासियों का आदर्श जीवन यह है कि कुछ समय स्वाध्याय में लगें, कुछ समय वेद और ऋषियों के स्थापित किये धर्म प्रतिपालन में लगें, जैसे कि सन्ध्या वन्दन आदि। लेकिन अधिक से अधिक समय ध्यान में लगे। जिसके द्वारा हम भगवान् के स्वरूप को अपने घट में प्रत्यक्ष करलें। इस बात की आवश्यकता मालूम होती है, कि पश्चिमी देश वासी कुछ अधिक समय ध्यान में लगायें और भारत वासी अपने सामाजिक जीवन को सुधारने में लगायें। दोनों के संयोग से कुछ ऐसा रास्ता बन जाये कि जिस से सब संसार का जीवन वर्तमान से अधिक सुखमय हो जाये। छोटी छोटी वस्तुओं की प्राप्ति में समय खर्च करने के अतिरिक्त सब से उत्तम मुक्ति की प्राप्ति में समय लगाने का विचार पश्चिमी देश वासियों के परम हित का कारण होगा। दूसरी बात इस देश की स्त्रियों की है कि वे स्वतंत्रता का उल्टा अर्थ समझ कर जीवन के आवश्यक बन्धनों को भी काटने की चेष्टा करके बिल्कुल स्वेच्छाचारिणी बनना चाहती हैं। वे माता और गृहिणी के कर्त्तव्य को भी छोड़ कर बाहिरी मनोरंजन और भोग विलास में ही अपने को प्रसन्न रखना चाहती हैं। यह वायु पश्चिम से बह कर पूर्वी स्त्रियों पर भी अपना प्रभाव डाल रहा है। भारत में अधिक तो नहीं परन्तु कुछ असर हो रहा है, लेकिन यह निश्चय है कि अपने जीवन में कभी न कभी ईश्वरीय इच्छा के आधीन स्त्री को नारी पारिवारिक बन्धनों के लिये विवश होना ही पड़ेगा बल्कि वह माता बनने के लिये अकुला उठेंगी।

(३८) एक मनुष्य को साधु बनने की बड़ी धुन थी। श्री महाराज से भेष देने की प्रार्थना की। श्री महाराज ने पूछा कि घर में लड़ाई झगड़ा

रहता है या रुपये पैसे की कुछ हानि हो गई है, या काम करने को जी नहीं चाहता या मुफ्त का माल और दूसरों की कमाई पर मौज उड़ाने की इच्छा है या कायरता और दुर्बलता ने दिल और दिमाग़ पर अधिकार कर लिया है, या छोटा घर छोड़कर बड़ा गुरु द्वारा बनाना चाहते हो, या लघुता और अधीनताई छोड़कर घमण्डी बनना चाहते हो। कौन सी आपदा आ पड़ी है जो बनी गृहस्थी उजाड़ कर साधु बनने को विवश कर रही है? वह बोला कि मैं तो योग करने की इच्छा से साधु बनना चाहता हूँ। श्री महाराज मुस्कराये और फरमाया कि राजयोग, हठयोग, ध्यानयोग, सांख्ययोग, लययोग, समाधियोग, मंत्रयोग, औषिधियोग, कर्म योग इत्यादि इन में से एक भी ऐसा नहीं जिसको भीख माँगने वाला साधु गृहस्थी की अपेक्षा अच्छे तरीके पर निभा सके। इनके साधन की सामग्री जितनी गृहस्थी के पास होती है, उतनी साधु को बहुत कठिनाई से प्राप्त होती है। साधु होकर हिमालय की कन्दरा में जाकर तो रह नहीं सकते, क्योंकि न तो तितीक्षा है, और न ही वह पद प्राप्त है जिसके कारण शीतोष्ण सहन कर सके और बिना सामान गुजारा कर सके। यही होगा कि द्वार-द्वार पर भीख माँगते फिरोगे, या किसी बस्ती में या कुए के पास या पेड़ के नीचे कुटिया बनाकर चेला और चेली बनाकर खाने पीने का सामान एकत्र करोगे। संसार को युद्ध का क्षेत्र समझो। गृहस्थी में रह कर योद्धा की तरह डटकर लड़ो। साधू बनकर कायर की तरह मैदान से भागने की कोशिश मत करो। अगर भागोगे भी तो प्रकृति पीछा नहीं छोड़ेगी अगर भागकर कोई कहीं जाता भी है तो गृहस्थी उसके साथ २ लगी रहती है। हमारी इच्छाओं ने हमें गृहस्थी बना रखा है, स्त्री की आवश्यकता, औलाद की आवश्यकता, रूप की आवश्यकता, धन मकान की आवश्यकता, मान बड़ाई की आवश्यकता, मगर आवश्यकता न हो तो फिर गृहस्थ कैसा। जब पशु पक्षी भी भिटे और घोंसले के बिना निर्वाह नहीं कर सकते तो मनुष्य की प्रकृति इन से कुछ निराली हो सकती है। बदन ढकने को लंगोटी की भी ज़रूरत न समझो तो पेट भरने को भोजन तो चाहिये। पत्थर की सिला पर सुन्दर से सुन्दर स्त्री बैठ जाय या लेट जाये, वह उसके संग से कामातुर नहीं होता, न उसमें लोभ, मोह, क्रोध और मत्सर दीख पड़ता है। तो क्या वह मुक्त पुरुष होता है? चेतन मनुष्य जो

कुछ करता है उसका प्रभाव उसके अन्तःकरण में पड़ता है और ऐसे हर एक छोटे से छोटे और बड़े से बड़े कामों में वह अपना अनुभव बढ़ाता है। संग दोष से यदि कोई पाप भी बन पड़े तो उससे भी शिक्षा मिलती है, और यह पता चल जाता है कि किस दर्जे तक उन्नति हो चुकी है। और इन्द्रिय जीत का अभिमान चूर्ण हो जाता है। यह पाँचों कुत्तियां राम ने हमारे साथ किस ज़रूरत से लगाईं। यह बेकार वस्तुएँ नहीं हैं, इनसे मनुष्य को उत्तरोत्तर विषयों का सुख प्राप्त होता है, लेकिन जब इन विषयों से हमारी आत्मा की तृप्ति नहीं होती तो इससे अधिक सुख की खोज होती है। और इसी तरह से धीरे २ आत्म आनन्द तक पहुँचने का मार्ग निकलता है।

हो तू दून्या में मगर दुनिया का तलिबगार न हो।
सिर्फ़ बाज़ार से गुज़रे पर ख़रीदार न हो॥

(३९) एक दिन इर्शाद हुआ कि गृहस्थी की सबसे बड़ी सम्पति सुपात्र सन्तान और सुपात्र स्त्री है। जिस गृहस्थी में यह दो चीजे हों उस घर को स्वर्ग समझना चाहिये। जिस मनुष्य ने नेक सन्तान छोड़ी, उसने कुबेर के कोष से भी अधिक धन छोड़ा।

(४०) एक दिन यह प्रश्न उठा कि सन १९१४ ईसवी की लड़ाई खतम अवश्य हो गई है, परन्तु बहुत से देश वालों के दिल साफ नहीं हुये हैं। अभी नहीं तो कभी न कभी युद्ध फिर आरम्भ होगा क्या यह भी सम्भव है कि फिर लड़ाई कभी न हो?

श्री महाराज ने फरमाया कि प्राचीन इतिहासों से पता चलता है कि शान्ति और युद्ध हमेशा कभी स्थिर नहीं रहे। कुछ समय शान्ति होती है तो फिर लड़ाई भी सामने आ जाती है। यह दोनों बातें तो कुटुम्ब, देश और संसार भर में स्वार्थ, मोह और आत्म समर्पण पर निर्भर हैं। जब मनुष्य अपने लाभ के लिये काम करता है तो परिवार में विग्रह फैल जाती है। जब परिवार ही अपनी भलाई चाहता है तो कौम के और लोग झगड़ा कर उठते हैं। जब अपने ही कौम की भलाई चाही जाती है तो देश वालों को शिकायत हो जाती है। जब अपने ही देश के वास्ते काम करता है तो विदेश वालों से शत्रुता हो जाती है। जब मनुष्य सब विश्व मात्र को अपने परमात्मा की प्यारी जनता

समझ कर लाभ पहुँचता है तब सब लड़ाई झगड़ों का अन्त हो जाता है। दुकानदार सौदा इसलिये बेचता है कि खूब पैसा कमाये। मिल, फैक्ट्री और बड़े कारखाने वाले इन कामों को इसलिये करते हैं कि खूब रुपया लूटें। राजा इस लिये राज्य करता है कि जा और बेजा कर लगा कर छकड़े भर २ कर धन एकत्रित करें। यह सब झगड़े की जड़ हैं। जब दुकानदार इस नीयत से कार्य करेगा कि दूकानदारी की प्रत्येक वस्तु अच्छी से अच्छी और सस्ती से सस्ती जनता को पहुँचाये, और जब व्यापारी यह सोचे कि जो अच्छी वस्तु एक जगह है उसको वहाँ से ले कर दूसरे स्थान पर जहाँ उसका अभाव है इसलिये पहुँचाये कि वे लोग भी इससे आराम उठा सकें। बड़े २ कारखाने वाले इस नीयत से काम करे कि हज़ारों बेरोजगार जो मारे २ फिरते हैं उनको धन्धे से लगावें और जो वस्तु हाथ से आवश्यकता अनुसार अधिक संख्या में नहीं बन सकती उसको मशीनों के द्वारा शीघ्र और सस्ती बनायें। और शासन इस नीयत से किया जाये कि न तो देश के अन्दर कोई जनता को सता सके, न बाहिर दूसरे देश वाला आक्रमण कर सके, और न ही उसकी प्रजा किसी दूसरे देश पर चढ़ाई कर सके। जो कुछ वस्तुयें प्रकृति ने अपने देश में उत्पन्न की हैं उसी पर सन्तोष से अपनी प्रजा को चलने और चलाने का प्रयत्न करता रहे। जब प्रजा अधिक तामसी हो तो अधिक से अधिक दण्ड दे ताकि उनका तामसी गुण दबा रहे जब अधिक राजसी हो तो मामूली सख्ती लोभ और लालच देकर उनको वश में रखे। यदि प्रजा सात्विकी हो तो उनको समझाने और मामूली दण्ड से ही प्रबन्ध ठीक हो सकता है, साम, दाम, दण्ड, भेद को समय अनुसार काम में लाने की युक्ति जानता हो और उनको काम में लावे तब संसार भर के लड़ाई झगड़े का अन्त हो।

(४१) एक दिन एक मुसलमान ने कहा कि नब्बी वली का सहारा नहीं लेना चाहिये। इससे क्या लाभ होता है ?

श्री महाराज ने फरमाया कि गोल पैंदे का घड़ा सीधा नहीं खड़ा हो सकता। लेकिन उसके नीचे कुछ उड़ीकन लगा दो तो उसके सहारे से अपने स्वभाव के विरुद्ध काम करता हुआ दिखलाई पड़ता है और सीधा खड़ा रहता है, अगर सहारा यानी उड़ीकन निकाल दो तो फिर लुढ़कने लगेगा।

(४२) एक सेवक जब श्री महाराज के दर्शनों को आता था तो तीन बार माथा टेकता था उससे किसी ने पूछा कि आप तीन बार क्यों ढोक देते हो। उसने जवाब दिया कि हाकिम एक होता है इसलिये उसको एक बार सलाम करता हूँ, मेरे पिता जी का शरीर नहीं है इसलिये अपनी माता जी के चरण दो बार छूता हूँ श्री गुरू महाराज जी और महात्माओं को तीन दफा इसलिये माथा टेकता हूँ कि मेरी भावना उनमें तीनों देवताओं की है।

(४३) एक दिन जिक्र हो रहा था कि पहले बैल गाड़ी की सवारी थी, कैसे धीरे-धीरे चलती थी, दस बारह मील चल कर ठहरना पड़ता था जब रेल निकली तो सैंकड़ों मील का सफ़र रात दिन में हो जाता है। इसी तरह समुद्र में भाप और बिजली से जहाज रात दिन में सैकड़ों मील का सफ़र पूरा कर देते हैं। हवाई जहाजों ने तो गज़ब ही कर दिया, यह तो हजारों मील का फ़ासला बिना ठहरे तय कर देते हैं।

श्री महाराज जी मुस्कराये और फ़रमाया कि इन सब की रफ़्तार कितनी भी तेज़ हो मगर ठहरते जरूर हैं सूद ऐसी चीज़ है कि रात दिन चलता है फिर भी ठहरने का नाम नहीं लेता और विचित्रता यह है कि चलने से न तो कमजोर होता है और न घटता है बल्कि दिनों दिन बढ़ता जाता है और सबसे बड़ी बात यह है कि दाना चाहिये न चारा न कोयला न तेल न बिजली।

(४४) एक दिन इर्शाद हुआ कि किसी काले कम्बल पर स्याही से भरी दवात उड़ेल दी जाये तो उस कम्बल के रङ्ग रूप में कुछ अन्तर मालूम नहीं होता। स्याही बिलकुल नज़र नहीं आती, लेकिन जब कम्बल धुलेगा उस वक्त स्याही निकलेगी। जो मनुष्य उस कम्बल पर बैठेगा या उसको ओढ़ेगा उसके भी स्याही का धब्बा लग सकता है, लेकिन स्याही में से एक उँगली डुबो कर भी किसी सफेद कपड़े पर लगा दी जाये तो दूर से ही वह बुरा धब्बा दिखाई पड़ता है। इसी तरह से बदकार मनुष्यों का अन्तर बुराई से इस कदर गन्दा हो जाता है कि थोड़ा सा पाप उनको पाप ही नज़र नहीं आता और उनका हृदय बुराई करते २ बुराई का रूप बन जाता है। लेकिन अच्छे मनुष्य तनिक सा भी खोटा काम करें तो उसी से उनके जीवन पर बुरा धब्बा लग जाता है। लेकिन

बुरा मनुष्य बुराई से खाली नहीं होता, समय आने पर इसका फल उसको भी यथा योग्य मिलता है उसकी संगत और संसर्ग से दूसरे मनुष्य बुराई करने लगते हैं, और संग दोष की सजा भोगते हैं।

(४५) एक दिन इर्शाद हुआ कि गुण और घमण्ड आपस में वैरी हैं। जहाँ घमण्ड हुआ गुण वहाँ से भागा, जहाँ गुण का निवास हुआ घमण्ड दूर हुआ जो कोई गुण का घमण्ड करता दिखलाई दे उसको थोथा समझना चाहिये।

(४६) एक दिन किसी मनुष्य ने प्रार्थना की कि किसी तरह यह हिन्दू मुसलमान का भेद भी मिट सकता है ?

श्री महाराज ने फरमाया कि अन्तर मिटाने से अगर आप का अभिप्राय यह है कि मुसलमान बिलकुल रहें ही नहीं तो यह बात तो न्याय के विरुद्ध है, अगर यह चाहते हो कि हिन्दू और मुसलमान दोनों मिल कर रहें तो यह बात सम्भव है। पहले एक मत था। उसी का एक वेद था। उसके बाद दूसरे मत वाले चाहे विजयी बन कर आये हों या भारत में आकर ज़ोरवाले बन गये हों, उनसे पहले मत वालों का स्वभाविक झगड़ा रहा होगा, और मेल इसी तरह से रहा होगा कि उनका धर्म ग्रंथ तो ब्रह्म वाक या आसमानी किताब मान लिया गया हो और उसका नाम दूसरा वेद रखा गया हो। इसी तरह चार बड़े २ मत के मनुष्य जब मिल गये तो उनके चार वेद हो गये। अब मुसलमानों के कुरान को भी आसमानी किताब मान लिया जाये और वेदों का सा सम्मान किया जाये तो कुछ समय में पाँच वेद साबित हो जायेंगे, और मत मतान्तर के झगड़े का अन्त होगा। यह भी सम्भव है कि मुसलमानों को वर्ण भी पृथक मिल जायें। इन दो बातों के हो जाने पर तो अन्तर ही क्या रहेगा "मतलब तो उसी की चाह से है।"

तुम राम कहो वह रहीम कहें, दोनों की गर्ज़ अल्ला से है।
तुम धर्म कहो वे दीन कहें, मनशा तो उसी की राह से है॥
तुम प्रेम कहो वे इश्क कहें, मतलब तो उसी की चाह से है।
तुम योगी हो वे सालक हों, मकसद तो दिले आगाह से है।

क्यों लड़ता है मूरख बन्दे, यह तेरी खाम-ख्याली है।
है पेड़ की जड़ तो एक वही, हर मजहब इक-इक डाली है॥
बनवायो शिवाला या मसजिद, है ईंट वही, चूना है वही।
कारीगर वही, मजदूर वही, मिट्टी है वही गारा है वही॥
तकदीर का जो कुछ मतलब है, ना कूस का भी मनशा है वही।
वह जिनको नमाजें कहते हैं, हिन्दू के लिये पूजा है वही॥
फिर लड़ने से क्या हासिल है, जो फहम हो तुम नादान नहीं।
जो भाई पर दौड़े गुर्राकर, वह हो सकता इन्सान नहीं॥
क्या कत्लो गारत खूंरेजी, तारीफ यही इन्सां की है।
क्या आपस में लड़कर मरता, तालीम यही कुरान की है॥
इन्साफ़ करो तफसीर यही, क्या वेदों के फरमान की है।
क्या सचमुच यह खूंख्वारी है, आला खसलत इन्सा की है॥
तुम और बुरे अहमाल ऐसे, हैं कुछ तो खुदा से शर्म करो।
पत्थर जो बना रखा है सईद, इस दिल को ज़रा तो नर्म करो॥

(४७) एक दिन एक साहब ने आकर मज़हबी फ़िसाद का जिक्र किया कि इतनी निर्दोष जानें वृथा में नष्ट हुईं और इतना माल असबाब लुट गया, परमेश्वर के घर में भी अन्धेर है, किसी के मरने की पूछताछ नहीं।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि यह आपने कैसे मान लिया कि निर्दोष जानें गईं। कर्म का ऐसा विस्तार और चक्र है कि उसकी गति साधारण मनुष्य की समझ के बाहर है और पूछताछ न होने का भी आपको क्या पता ? यहाँ पर भी आज कोई अपराध करता है तो उसके दण्ड का निर्णय होते २ महिने बल्कि कई कारणों से तो बरसों लग जाते हैं, लेकिन न्याय अवश्य होता है जब ऐसे छोटे-छोटे अपराधों का न्याय संसार में भी होता है तो क्या भगवान् के यहाँ ऐसा अन्धेर समझ लिया कि कुछ पूछ ताछ ही नहीं। दूसरी सूरत यह है कि एक मिट्टी से कुम्हार दिया, शकोरा, मटकना, घड़ा नाना प्रकार के बर्त्तन और खिलौने बनाता है इन बर्त्तनों के खरीदने वाले को अधिकार है कि जिस तरह चाहे उनको बरते, चाहे किसी मटके में घी भरे, चाहे मैला पानी सूंते, चाहे बर्तन और खिलौनों को सजा २ कर रखें, चाहे पटक २ कर फोड़ डालें, बनाने वाले को उसका क्या दुख होता है। क्योंकि वास्तविक वस्तु मिट्टी न तो मिटती है न घटती है। इसी तरह से शरीरों का नाश होने से आत्मा का नाश तो नहीं

होता। शरीरों का नाश ऐसा ही समझना चाहिये जैसे दो मनुष्य आपस में लड़ पड़ें, और लड़ते २ एक दूसरे के कपड़े फाड़ कर चिथड़े और बेकार करदें। लड़ाई का अन्त होने पर दूसरे कपड़े बदल लिये जाते हैं।

(४८) एक दिन इर्शाद हुआ कि एक ही मिट्टी से हजारों बर्तन बनते हैं एक बर्तन टूटता है तो दूसरे बर्तनों को उसके टूटने का कोई दुख नहीं होता। इसी प्रकार एक अंश आत्मा से बने हुए जीवों के शरीर नष्ट होने से दूसरों को दुख नहीं होना चाहिये, और वास्तव में होता भी नहीं है। सैकड़ों मनुष्य प्रति दिन मरते हैं, उनके लिये सब संसार नहीं रोता, कोई व्यक्ति बीमार हो तो उसकी बीमारी का दुख उसी को होता है उसके पास चाहे कितने मनुष्य बैठे हों, चाहे जितने सगे सम्बन्धी उपस्थित हों पीड़ा किसी को नहीं होती और न लगती है। हमने अपने मन के मोह से जिस चीज को अपना लिया हो या समझ लिया हो उसी के दुख और मरने का शोक प्रतीत होता है। इससे साफ़ प्रकट है कि यह दुख सुख वास्तविक नहीं मन के भ्रम और मोह से उत्पन्न होते हैं।

(४९) एक दिन एक सत्सङ्गी ने अर्ज किया कि बाहिरी सफ़ाई में नहाने का क्या नियम होना चाहिये दिन में कितनी बार नहाये और आन्तरिक सफ़ाई किस तरह से करनी चाहिये ?

श्री महाराज ने फरमाया कि नहाने का नियम देश, काल और पात्र के अनुसार पृथक २ होना चाहिये। वैदिक रीति से अधिक स्नान करने से खाल और शरीर के रग पुट्ठे ढीले पड़ जाते हैं जवानी में उसकी हानि नहीं दीखती परन्तु युवावस्था ढलने के पश्चात् असर प्रत्यक्ष दीख पड़ता है, हिन्दू अधिक नहाते हैं इसलिये वे जोड़ों, गुर्दों, और वायु की कमजोरी के रोग से अधिकतर ग्रसित पाये जाते हैं। जाड़े के मौसम में और सर्द देश में और कमजोर वृद्ध बीमार को कम नहाना चाहिये। गर्मी के मौसम में गर्म देश में युवावस्था में और स्वास्थ्य ठीक होने पर दिन में अधिक से अधिक दो बार स्नान करना उचित है। कपड़े चाहे कितने ही कम क़ीमत के हों हानि नहीं, मैले कुचैले न हों, साफ़ चाहिये अगर मुँह से या शरीर से और पसीने से इतनी बदबू निकलती हो कि दूसरों के पास बैठने से उनको बुरा मालूम हो तो सुगन्ध लगाने का दोष नहीं है बशर्ते कि ख़रीदने की सामर्थ हो। दातुन, कुल्ला, हाथ धोना, यह सब इस स्थूल

देह को बाहर से साफ़ रखने के नियम हैं। वैदिक रीति से जुलाब, पसीना लाने की दवा, बस्ती के द्वारा अन्तर के मल को साफ रखना इस स्थूल देह की आन्तरिक सफाई है। लेकिन अध्यात्मिक विद्या के विचार से जैसे इस स्थूल देह की बाह्य और आन्तरिक सफाई आवश्यक है, उसी तरह उसके भीतर और जो छः शरीर हैं उनकी सफ़ाई भी होनी चाहिये। वरना इन शरीरों से ठीक काम नहीं हो सकेगा। स्थूल देह के बाद सूक्ष्म देह है। जिसके अन्तरगत यह चार शरीर हैं। (१) लिङ्ग शरीर, (२) प्राण शरीर, (३) काम शरीर, (४) और मानसी शरीर के नीचे का भाग। पूजन पाठ से लिङ्ग शरीर ठीक रहता है। प्राणायाम से प्राण शरीर ठीक रहता है। ठीक विचारों और अच्छी कामनाओं के करने और बुरी कामनाओं के रोकने से काम शरीर की शुद्धि होती है। संकल्प, विकल्प को रोकने और बुरे संकल्पों के त्यागने से मानसी शरीर की शुद्धि होती है। यह सूक्ष्म शरीर की शुद्धि के नियम हैं। इनकी शुद्धि से विक्षेप मिटता है। इसके बाद कारण शरीर है, जिसमें पहले मन का ऊँचा भाग है, जिसको मानसी शरीर कहते हैं। वह शुभ इच्छा करने और वासना के त्याग से साफ होता है। जिसको वासनामय कह सकते हैं। बुद्धि शरीर की शुद्धि आत्म विचार से होती है। जिससे सम्यग् बुद्धि उपजती है। सातवाँ आत्म-शरीर है, जिसको जीव भी कहते हैं, फुरना इसका स्वभाव है। केवल कुम्भक से यह फुरना मिटती है। कारण शरीर की शुद्धि से माया का आवरण जो जीव पर पड़ा है वह दूर हो जाता है और अपने स्वरूप का अनुभव इस तरह से होता है जैसे बादल के हट जाने से सूर्य का दर्शन या दर्पण का मैल दूर हो जाने से मुख का प्रतिबिम्ब साफ दृष्टि आता है या हिलते हुए पानी के ठहर जाने से उसमें चेहरा आदि प्रत्यक्ष दीख पड़ते हैं।

(५०) एक दिन एक सेवक ने प्रार्थना की, कि अद्वैत मत के यह शुद्ध अद्वैत और अशुद्ध अद्वैत और द्वैताद्वैत आदि भाग कैसे हैं ? जिसके इतने भाग हों वह अद्वैत कैसा ?

श्री महाराज ने फरमाया कि अद्वैत को मत नहीं कहना चाहिये। यह तो निष्ठा या पदवी है। जब तक भक्त को अपने और अपने भगवान् में अन्तर दिखाई देता है वह द्वैत भाव से पूजा करता है यही उस समय उसकी निष्ठा

या पदवी है। कईयों का जीवन एक ही निष्ठा में पूरा हो गया, उनके शिष्यों ने उनकी निष्ठा को उनका मत बना दिया। कईयों की निष्ठा भजन में भाव बदलने से बदल भी जाती है। इसलिये ऐसे भी महात्मा हुए हैं, जिनका भाव पहले द्वैत था फिर अद्वैत हो गया जिसकी जहाँ तक पहुँच हुई उसने सचसच वैसा ही कहा। यह नहीं किया कि अन्दर तो द्वैत मुँह से अद्वैत। (१) श्री शङ्कराचार्य वैसे तो द्वैत, अद्वैत मूर्ति पूजन आदि बहुत से नियमों के आचार्य हैं, परन्तु वेदान्त में उनका मत अद्वैत है। "एको ब्रह्म द्वितीय नास्ति" अर्थात् एक ब्रह्म है बाकी जो कुछ दिखाई देता है सब भ्रम है। दूसरे लोग इसको अशुद्ध वेदान्त कहते हैं। भला वेदान्त भी अशुद्ध होता है। उन्होंने तीन कल्पना या सत्ता पारमार्थिक, व्यवहारिक और प्रतिभासिक मानी हैं। इनके वेदान्त के भी बहुत से भेद हो गये हैं। किसी पुस्तक में ४८ भेद देखे थे। भला कुछ ठिकाना है। कहाँ अद्वैत और कहाँ इतने भेद। (२) विष्णु स्वामी का वेदान्त शुद्ध अद्वैत कहलाता है। उनका कहना है कि जगत् भ्रम नहीं भगवान् का ही स्वरूप है। यह यत्न व भक्ति मानते हैं प्रकृति की शुद्धान्श, चिदान्श, आनन्दान्श। वल्लभाचार्य का भी यही सिद्धान्त है। (३) निम्बार्क सम्प्रदाय का वेदान्त द्वैताद्वैत है। इसका दूसरा नाम भेदाभेद है। जैसे बहुत सी गायें जाति में एक हैं और देखने में भिन्न भिन्न हैं। बन्ध अवस्था में भेद है, मुक्त अवस्था में एक हैं। व्यवहार या संसारी कार्यों में द्वैत है और अन्त में एक हो जाता है। जब तक भगवत् कृपा नहीं होती, तब तक द्वैत है। जब भगवत् कृपा होती है तब अद्वैत हो जाता है। (४) महाप्रभु जी का वेदान्त अचिन्त भेदाभेद है, इनका कथन है, कि इस बात का ठीक पता नहीं चलता कि यह भेद है वा अभेद है। यह विषय अचिन्त है इसलिये इसको छोड़ देना चाहिये, उनके सिद्धान्त को कई आचार्य श्रुति विरुद्ध कहते हैं, परन्तु उनकी बात बिलकुल सच्ची है। वास्तव में बुद्धि के द्वारा भेद अभेद का पता न लगा और न लगेगा। (५) रामानुज स्वामी अर्थात् श्री सम्प्रदाय वालों का वेदान्त विशिष्टाद्वैत है। स्त्री पुरुष देखने में पृथक पृथक दो हैं, परन्तु वास्तव में एक हैं। वह माया, ईश्वर और जीव तीनों को नित्य और अनादि मानते हैं। ज्ञान का गुण जीव और ईश्वर में एक है। इस तरह से गुणों में अभेद है लेकिन स्वरूप और शक्ति में भेद है। यह जीव के तीन भेद मानते हैं। (१) नित्य

संज्ञा–भगवान् की त्रिपाद् विभूत्ति में उनका निवास होता है और पार्शद रूप से रहते हैं। यह जीव ईश्वर के समान हैं, परन्तु इनको ईश्वर की तरह से सृष्टि रचने का अधिकार नहीं है। यद्यपि उनको सृष्टि करने की शक्ति है और आवश्यकता हो तो ईश्वर की आज्ञा से यह सृष्टि कर सकते हैं। विभूति में कुछ अन्तर है। (२) मुक्त आत्मा–उपासना द्वारा समस्त पाप पुण्य से छूट कर जो मुक्त हो जाते हैं। (३) बन्ध संज्ञा में वे जीव हैं जिनका विरजा नदी से उस पार लीला विभूत्ति में निवास रहता है। विरजा नदी से पार प्रकृति का कुछ भी ज़ोर नहीं है। वह विशुद्ध धाम है। तीनों गुणों से परे अप्राकृत्तिक है। रामानुज सम्प्रदाय ने ही त्रिपाद विभूत्ति में जाना लिखा है। और आचार्य जीव का वहाँ जाना नहीं मानते। कईयों का निश्चय है कि श्री वृन्दावन में रहना ही मुक्ति है, कई कहते हैं कि जब भ्रम दूर हो गया तो जीव और ब्रह्म में भेद ही क्या रहा, आना जाना कुछ नहीं है। (४) मध्वाचार्य का मत द्वैत है। अर्थात् ब्रह्म और जीव सर्वदा भिन्न हैं यह एक नहीं हो सकते। उनका निश्चय है कि जीव ईश्वर के समीप रहेगा। भगवान् की त्रिपाद विभूति ऐसी है जैसे रु० में १६१ पाई और लीला विभूति रु० में एक पाई से भी कम है। सारे ब्रह्माण्ड में सम्मिलित केवल यह एक ब्रह्माण्ड ही नहीं जिस में यह हमारी पृथ्वी है। दृष्टि सृष्टिवादी इनका सिद्धान्त है। भगवान् की दृष्टि होने से ही सृष्टि उत्पन्न हो जाती है। और आँख बन्द करने से लय हो जाती है। इससे भी अद्वैत मत सिद्ध हो जाता है। इसका वर्णन श्री वाल्मीकि जी की बनाई हुई रामायण में है। भागवत की टीका में भी इसका वर्णन आया है मनुष्य लोक के युगों की हज़ार चौकड़ी ब्रह्मा जी के एक दिन के बराबर है। इस तरह से ब्रह्मा जी की सौ वर्ष की आयु विष्णु भगवान् जी की एक पलक मारने के बराबर है इसलिये इस कुल ब्रह्माण्ड की रचना विष्णु भगवान के एक पलक मारने के समय में पूरी हो गई। गुसाईं तुलसी दास जी ने अपने एक ग्रन्थ में लिखा है। कि—

कोई कहे झूठ, साँच कहे कोई, कोई युगल प्रबल कर माने।
तुलसी दास जब मिटे नैन भ्रम, तब आपन पहचाने॥

मध्वाचार्य संसार को सत्य मानते हैं। रामानुज स्वामी की निष्ठा द्वैत है, वह युगल को मानते हैं। अद्वैत वादी संसार को झूठ मानते हैं। मुनी जो

कहते हैं कि संसार झूठा है और जो मानते हैं संसार सच्चा है और जो मानते हैं कि संसार सच्चा भी है और झूठा भी। तीनों बातें भ्रम हैं जब यह भ्रम मिटेगा तब जीव अपने आप को पहिचानेगा। उनके निश्चय में द्वैत द्वैताद्वैत और अद्वैत सब भ्रम है। इनकी सम्प्रदाय एक अलग ही ठहरती है।

आराध्यो भगवान् व्रजेश तनयस्तद्धाम वृन्दावनं,
रम्या काचिदुपासना व्रज वधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्,
श्री चैतन्य महाप्रभो मतमिदं तत्राग्रहो नापरः॥

(५१) एक दिन इर्शाद हुआ कि तीन के अक्षर को जीव मान लो, छः के अक्षर को ईश्वर और ब्रह्म मान लो तो संसारी जीवन ३६ के अक्षर के समान है जिसमें जीव की पीठ ईश्वर की तरफ़ है और मुख संसार की तरफ़, और भक्ति ६३ के समान है जिसमें जीव ईश्वर के सन्मुख है। ब्रह्म ज्ञान को ६६ का अक्षर समझ लो, जिस में जीव ब्रह्म रूप हो जाता है।

(५२) एक दिन इर्शाद हुआ कि पुत्र और मूत्र दोनों अधम अंश से उत्पन्न होते हैं। जो राम को भजे, माता पिता और गुरु जनों की आज्ञा पालन करे और सेवा करे वही पुत्र है नहीं तो मूत्र हैं।

"राम भजे तो पूत है, नहीं मूत का मूत"

(५३) एक दिन इर्शाद हुआ कि एक राजा शिकार खेलने अकेला गया। दोपहर को भूख प्यास लगने पर किसी गन्ने के खेत पर पहुँचा। जहाँ बुढ़िया बैठी रखवाली कर रही थी। उससे पानी माँगा। वह १०, १२ गन्ने तोड़ लाई और उनको एक तरफ से आप पकड़ा और दूसरी तरफ से राजा को देकर मरोड़ा तो कूण्डा भर रस निकला। राजा ने पिया और कुछ घोड़े को भी पिलाया। बड़ा स्वादिष्ट था। तृप्ति हो गई तो बुढ़िया से पूछा कि कितने बीघे धरती में गन्ना बोया है और उसका क्या लगान है। उसने उत्तर दिया कि ५ पैसे बीघा लगान है और ५० बीघे में ईख खड़ी है। यह सुन कर राजा को लोभ समाया कि इनको इतनी आमदनी होती है और लौट कर पटवारी आदि बुलवा कर उस ज़मीन का लगान एक रु० बीघा कर दिया। दो महीने के बाद

फिर राजा उसी जङ्गल में शिकार को गया और उसी बुढ़िया के खेत पर पहुँच कर पानी माँगा वही ईख अभी तक खड़ी थी । वह बुढ़िया गन्नों की बड़ी सी फान्दी उठवा कर लाई और उनका रस उसी कूण्डे में निचोड़ा गया परन्तु कूण्डा चौथाई भी न भरा । राजा ने पिया तो उसमें न वह स्वाद और न वह पहली सी मिठास। बुढ़िया से इसका कारण पूछा तो बुढ़िया बोली, कि हमारे राजा की नीयत बिगड़ गई है । इसलिये गन्नों का बढ़ना भी बन्द हो गया है और उसके रस में से स्वाद भी घट गया है। अगले वर्ष यही धरती इतना घना गन्ना भी नहीं उपजायेगी और बोली कि जब राजा को लोभ बढ़ता है और प्रजा के वित्त से ऊपर धन बटोरता है तो धरती बीज़ को निगल जाती है और जो कुछ पैदा होता है उस अनाज और चारे तक में रस नहीं होता। पशु उस निरस चारे को खाते हैं, तो दूध, दही में वह रस नहीं होता और चौपाये (जानवर) भी उस गल्ले और चारे को खाते हैं तो उनके मास तक में भी स्वाद नहीं होता है। जिस वस्तु में रस होता है तो थोड़ी सी खाने से भी तृप्ति हो जाती है और रस विहीन वस्तु को अधिक से अधिक मात्रा में खा लो तब भी मन नहीं भरता। ऐसे राजा की प्रजा भी भ्रष्ट हो जाती है और पाप करने लगती है। फिर प्रजा के पाप से राजा अधिक अनर्थ पर उतर पड़ता है। कल्याण का यही मार्ग है कि राजा और प्रजा दोनों लोभ और पाप को छोड़कर धर्म परायण हों और अपना आचरण ठीक करें। यह काम एक ही के करने का नहीं है। समाचार पत्र में लिखा सुना था, कि विदेशों में एक एक गाय तीस और पैंतीस सेर तक दूध एक दिन में देती हैं और एक गाय के दूध से चार सेर तक मक्खन निकलता है। वह कोई बड़ा ही धर्मात्मा राज्य होगा। नन्दगाँव में एक तालाब का नाम क्षीर कुण्ड है। इसमें दूध भरा रहता था। दूसरे का नाम छाछ कुण्ड है। उसमें मट्ठा भरा रहता था। साधु, अतिथि, यात्री जिस का जी जिस वस्तु को चाहे वह उनमें से लेकर पी सकता था।

(५४) एक दिन इर्शाद हुआ कि चार सौ साल के भीतर भारतवर्ष की धार्मिक अवस्था को स्थिर रखने और जागृति फैलाने में इन महात्माओं ने बड़ा काम किया। (१) श्री श्री चैतन्य महाप्रभु जी ने वृन्दावन से लेकर बङ्गाल तक भक्ति फैलाई । श्री वृन्दावन के गुप्त स्थानों को प्रकट किया और श्री

जगन्नाथ जी के मन्दिर में अन्तर्ध्यान हो गये। (२) श्री मीरा बाई जी ने वृन्दावन से लेकर पश्चिम में राजपूताना और मारवाड़ आदि में भक्ति की नदी बहा दी और श्री द्वारिका जी के मन्दिर में अन्तरध्यान हो गईं। (३) गोसांई तुलसीदास जी की रामायण ने भी भक्ति रस फैलाने में पूरा पूरा काम किया। (४) श्री कबीर जी ने ज्ञान मार्ग का खूब प्रचार किया। (५) योग का प्रचार श्री गोरख नाथ जी के पंथाईयों ने किया। (६) और पंजाब में श्री बाबा नानक जी ने भक्ति फैलाई, और अच्छी तरह से चेतावनी दी और सनातन धर्म की रक्षा में उनके बाद गुरुओं ने पूरा पूरा काम किया। और भी बहुत से महात्मा श्री दादू जी और चरणदास जी आदि ने इस समय में प्रकट होकर जनता को चेताया।

(५५) एक दिन एक व्यक्ति ने प्रश्न किया कि "ओ३म्" की इतनी महिमा क्यों है? श्री महाराज ने फरमाया कि संस्कृत, हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी किसी भी भाषा को पढ़ो। पहला अक्षर अलिफ, अ है। "ओ३म्" साड़े तीन अक्षर स्वर और व्यञ्जन से मिल कर बना है। अ उ म् और "अलिफ" अनुस्वर हिन्दी भाषा में तो ३६ व्यञ्जन हैं। इनमें से बिना "अ" कोई नहीं बोला जाता है। सब में अ आता है। अ ईश्वर का स्वरूप माना जाता है, उ को माया का स्वरूप माना है। और म् को जीव मानते हैं, अर्ध मात्रा या अनुस्वर को परमात्मा और ब्रह्म करके मानते हैं। इसलिये वेदोक्त सब मंत्रों के उच्चारण में ॐ शब्द अवश्य होगा। जिस मंत्र के स्वर में ॐ न हो उसको वेदोक्त नहीं माना जाता है। जीव नित्य है, ज्ञान उसका गुण है। जैसे नमक के ढेले को जिस ओर से चाटो नमकीन होगा और मिश्री के कुंजों को जिस तरफ से चखो मीठा लगेगा और ज्ञान उसका सत्य भी है। तीनों काल और तीनों अवस्था में रहता है, उसकी परोक्ष ज्ञान है जीव चेतन भी है क्यों कि इसको सम्यक् ज्ञान है, स्वयं प्रकाश है। जीव ज्ञान का अधिकरण भी है। जीव का चेतन और ज्ञानपन सदा रहेगा। इतनी बातों में यह ईश्वर से मिलता है। प्रकृति ने इसका ज्ञान आच्छादित कर रखा है जैसे सूर्य के आगे बादल हों। ज्ञान अवस्था में यह प्रकृति से ढके हुए अज्ञान को इस तरह से दूर कर देता है, जिस तरह घोड़ा अपने शरीर की धूल फड़फड़ा कर दूर कर देता है, जैसे

वृक्ष अपने सूखे पत्तों को झाड़ देता हैं, साँप अपनी केंचुली को उतार देता है और राहू चन्द्रमा को उगल देता है। जीव अणु हैं और परतंत्र है। ईश्वर विभू और स्वतंत्र है। जीव २४ प्रकृति से भिन्न है आनन्द भी जीव का स्वरूप हैं।

(५६) एक दिन भक्त माल की कथा हो रही थी। रसों के प्रसङ्ग में निकला कि शङ्कराचार्य के सम्प्रदाय में शान्त रस है। रामानुज सम्प्रदाय में दास्य है। मध्वाचार्य सम्प्रदाय में सखा है विष्णु स्वामी और बल्लभाचार्य सम्प्रदाय में वात्सल्य है। निम्बार्क और महाप्रभु का माधुर्य शृङ्गार रस है। इस पर प्रश्न उठा कि यह भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय क्यों हैं, यह एक ही रस को लेकर क्यों उपासना करते हैं?

श्री महाराज जी ने फ़रमाया कि एक बात तो इस तरह समझ लो, कि अपने इष्ट देव में जिसको जैसा भाव है वह उसी तरह से उसकी उपासना करता है। कोई उसको स्वामी मानता है तो कोई दास बन कर पूजता है। कोई उसको सखा मानता है जैसे अर्जुन। कोई उसको ऐसे प्यार और दुलार करता है जैसे पिता पुत्र को। उसका भाव वात्सल्य हुआ। दूसरी अवस्था में यह समझो कि किसी पाठशाला में पाँच दर्जे की पढ़ाई है, जो विद्यार्थी इस पाठशाला की पूरी पढ़ाई पढ़ेगा उसको पाँचों श्रेणी की पढ़ाई पढ़नी होगी। यह भेद भी कभी नहीं करना चाहिये कि जो अध्यापक पहली श्रेणी को पढ़ाता है, वह छोटा है और जो पाँचवीं श्रेणी को पढ़ाता है वह बड़ा है। सब अध्यापक समान हैं। जिस कक्षा की शिक्षा विद्यार्थी को देनी है, वही पढ़ाई उसको पढ़ाई जाती है। परन्तु पहली कक्षा को पढ़ाने के लिये सब से अधिक योग्य अध्यापक होना चाहिये। पहली कक्षा की पढ़ाई ऐसी समझो जैसी मकान की नींव। जितनी पक्की और अच्छी नींव होगी, उतना अच्छा और पक्का मकान बनेगा और स्थिर रहेगा। (१) वैराग्य होने से कोई साधु बन गया, अब उसका मन अगूँर खाने को चलता है पैसा है नहीं। स्त्री को देख कर मन फड़फड़ाता है, कोई बुरी बात कहता है तो क्रोधित भी हो उठता है। तो सब से पहला यह पाठ दिया जाता है कि शान्ति करो। इन्द्रियों को शान्त करो, मन को शान्त करो, चित्त को शान्त करो, शान्त बुद्धि से काम करो। शान्ति से उपासना करो, यह शान्त रस है। (२) जब

इस में स्थिति और परिपक्वता हो गई तो भगवान को स्वामी, मालिक और पिता समझ कर और अपने को दास या पुत्र समझ कर नम्रता और अधीनता से सेवा पूजा, टहल, भजन आदिक करना चाहिये । यह दास्य रस, गोया दूसरी श्रेणी की पढ़ाई हो गई। (३) जिस तरह गाय उसी समय पैदा किये बच्चे के सब दोष चाट लेती है । उसी तरह भगवान्, स्वामी और मालिक और पिता रूप से हमारे सब दोष दूर कर देता है। जब सेवा टहल और निकट निवास से और भजन, योग, भक्ति से यह पता लगा कि जीव और ईश्वर ज्ञान में तो बराबर हैं और भगवान की तरफ से समय समय पर हर तरह से बाहरी और भीतरी सहायता मिलने से ऐसा प्रतीत होने लगता है कि वही हमारे सब काम कर रहा हैं। हमको चिन्ता करने की आवश्यकता क्या है। तो फिर उस पर ज्ञान की एकता से बराबरी की अपेक्षा विश्वास भी ऐसा हो जाता है जैसा कि एक मित्र को दूसरे मित्र पर होता है। यही मित्र और सखा भाव हो गया। (४) जिस तरह से ऋतु के अनुसार मनुष्य अपने बच्चों के खाने पीने और पहनने आदि की वस्तुओं का प्रबन्ध करता है। इसी तरह से पूजा सेवा में भगवान के लिए ऋतु अनुसार भोग और पोशाक का प्रबन्ध करना चाहिये चाहे वह वस्तु रूप में हो या मानसी सेवा हो और जिस प्रकार से अपना बच्चा थोड़ी देर के लिए भी दूर चला जाय या आँख से ओझल हो जाये तो उसके लिये मन व्याकुल हो जाता है। इसी तरह से भगवान का स्मरण और ध्यान जरा देर को रुक जाने से व्याकुलता हो जावे और भगवान् में ऐसा प्यार बना रहे, जैसा बच्चे में हर समय ध्यान लगा रहता है। छोटा निष्कपट बालक किसी से यह नहीं कहता कि मुझे प्यार करो, किन्तु उसकी सरलता, निष्कपटता, और भोलापन देख कर मन स्वयं ही उसको प्यार करने को चाहता है। इसी तरह से भगवान् की ओर भी प्यार पैदा हो यह वात्सल्य भाव है। (५) जैसे पतिव्रता स्त्री किसी दूसरे पुरुष की तरफ शरीर, वाणी और मन से भी नहीं देखती, केवल अपने पति को देख कर हर समय उसकी सज धज से अपना मन प्रसन्न करती रहती है और उस पर मुग्ध रहती है। ऐसी गाढ़ी प्रीति कि मन स्वप्न में भी न हटे और किसी दूसरी तरफ न जाये। इस तरह से भगवान के सुन्दर शृङ्गार और सुन्दर स्वरूप के ध्यान में हर समय लगा रहना माधुर्य और शृङ्गार रस है। इसको नित्य भाव और उत्तम रस भी कहते हैं। इस तरह से किसी भी

सम्प्रदाय को लेकर और मान कर उपासना प्रारम्भ करो। आखिरी मञ्जिल पहुँचने तक सभी रस बरतेंगे।

(५७) एक दिन चैतन्य महाप्रभु का यह श्लोक पढ़ा—

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं,
रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद् भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थोंमहान्,
श्री चैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्राग्रहो नापरः॥

प्राणी मात्र का परम पुरुषार्थ श्री कृष्ण प्रेम की प्राप्ति करना ही है। परम आराध्य वे ही श्री नन्दनन्दन वृन्दावन चन्द्र श्री कृष्ण चन्द्र जी हैं। अपने सभी पुरुषार्थों का आश्रय छोड़ कर अनन्य भाव से व्रजांगनाओं की भाँति संसारी सम्बन्धों से मुख मोड़ कर पति भाव से उनकी आराधना करना यही उपासना की उत्तम से उत्तम प्रणाली है और पाठनीय शास्त्रों में श्रीमद्‌भागवत ही सर्वोपरि शास्त्र है, क्योंकि इसे भगवान व्यासदेव ने सभी पुराणों के अनन्तर जिस प्रकार दही को मथ कर उसमें से सार भूत मक्खन को निकाल लेते हैं, उसी प्रकार सर्व शास्त्रों को मथ कर उनका सार निकाला है। बस, यही कल्याण का मार्ग है। इसे तुम मेरे मत का सार समझो। इससे अधिक कोई किसी बात का आग्रह करे तो उसे तुम अन्यथा समझना।

(१) नंदजी के पुत्र जो श्री कृष्ण हैं उन्हीं की आराधना करें। (२) वह बृन्दावन में रहते हैं (३) कोई बहुत ऊँची श्रेणी की उपासना करनी होगी (४) जैसे बृज गोपियों ने करके दिखाई (५) प्रमाण उसका श्रीमद्‌भागवत में पाया जाता है। जो वेदों का सार और निगम वृत्त का फल है और फरमाया कि इसके तरीके की उपासना में तीन बातों के जानने और समझने की बड़ी आवश्यकता है। देश, काल और स्वरूप अर्थात् पात्र। इन तीनों के दो-दो स्वरूप हैं। अर्थात् प्राकृत्त और अप्राकृत्त इनका भेद गुरु से मालूम होता है। प्राकृत्त पात्र जो सीढ़ी-सीढ़ी ऊपर चढ़े और अप्राकृत्त जो भगवान या किसी महात्मा की कृपा से एक दम ऊपर पहुँच जाये। प्राकृत्त काल का तो यह कलियुग है जिसके आदि में श्री कृष्ण भगवान् अन्तर्ध्यान हुए। अप्राकृत्त काल यह कि श्री कृष्ण भगवान्

गुप्त रूप से ही जगन्नाथ जी में रहते हैं। मनुष्य लोक का हज़ार वर्ष जगन्नाथ जी का एक दिन होगा। गोपा श्री कृष्ण भगवान् को अन्तर्ध्यान हुये अप्राकृत्त काल के हिसाब से अभी दो दिन रात पूरे और एक दिन अब फिर रात चल रही है। जगन्नाथ का नाम दारद ब्रह्म भी है। यह वृन्दावन प्राकृत्त देश है और बृजा नदी आदि अप्राकृत्त देश है।

(५८) एक दिन एक सत्संगी ने प्रार्थना की कि वर्णाश्रम के धर्मों के विषय में कुछ फ़रमाइये। श्री महाराज जी ने फ़रमाया कि यह बातें शास्त्रों में व्याख्या-पूर्वक लिखी हैं। उनसे अधिक हम क्या कह सकते हैं। फिर उन्होंने प्रार्थना की कि श्री मुख से ही सुनना चाहता हूँ तो फ़रमाया कि:—

"जात पात पूछे नहिं कोई, हर को भजै सो हर का होई।"

यह धर्म स्त्री व पुरुष सब जाति वालों के लिए सामान्य है। इनमें से जितना हो सके करें। सत्य बोलना, झूठ न बोलना, दया करना, जिसको दुखी देखे अपनी सामर्थ्य भर उसका दुख घटाने का उपाय करना, अपने वित्त अनुसार दान करना। गृहस्थी को चाहिए कि तीनों आश्रमों को देकर फिर आप भोजन करना। भगवत, भजन और स्मरण में चित्त लगाना और भक्ति का अनुकरण करना। लालच छोड़ कर संतोष रखना। परमेश्वर की लीला व कथा सुनना व पढ़ना, जीव हिंसा न करना, स्त्री पुरुष को बहुत भोग न करना चाहिये, इससे तेज और बल का नाश होता है और आयु न्यून होती है।

धर्म चारों वर्णों का इस तरह पर है (१) ब्राह्मण को नित वेद शास्त्र पढ़ने और पढ़ाने चाहियें। हवन और यज्ञ करना और दूसरों से कराना, दान लेना और दूसरों को दान देना, अपने निर्वाह के लिये या तो शिलाव्रत रखे, अर्थात् खेत को काटते समय जो अनाज नीचे गिरता है उसको जमा करके खाने के काम लाना या भिक्षा करना। भिक्षा तीन प्रकार की होती है। बिना माँगे मिले उसको उत्तम कहते हैं। माँगने से मिले तो मध्यम। हठ करके और अड़ कर देने वाले को विवश करके ली जाये वह कनिष्ट कहलाती है। ब्राह्मण में भक्ति योग हो। (२) क्षत्री यज्ञ और हवन करे और ब्राह्मणों के हाथ से भी करावें। वेद शास्त्र आप पढ़ें और दूसरों को पढ़ायें। दान आप दें परन्तु दूसरों से

न लें। बल्कि राज सेवा से निर्वाह करे। शूरवीर धर्मात्मा हो और मन इन्द्रियों को काबू में रखे। (३) वैश्य वर्ण वाणिज्य व्यापार करे और आधीनताई रखे। (४) शूद्र का सेवा धर्म है। (५) वर्ण शङ्कर अपने कुल में जिस तरह का धर्म और कर्म चला आता है उसी तरह अपना धर्म रखे। स्त्री का धर्म है कि अपने पति की सेवा करे और उसकी आज्ञा में रहे और उससे कपट न करे। बड़े बूढ़ों की सेवा करे। अपने रहने के स्थान को स्वच्छ रखे। जो थोड़ा बहुत भूषण वस्त्र मिल जाये उसमें मग्न रहे, अधिक लोभ न करे। यदि कर्म फल से विधवा हो जाय तो शृङ्गार आदि न करे।

चार आश्रम हैं ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। इनके विषय में यह प्रश्न उठता है कि आया यह चारों वर्णों के लिये सामान्य रूप से हैं या चारों वर्णों का अधिकार चारों आश्रम में बरतने का नहीं है। गृहस्थ आश्रम तो ऐसा है, जिसमें चारों वर्णों का अधिकार है। बाकी तीन आश्रम सब वर्णों के लिये नहीं दीख पड़ते। खैर इस प्रश्न को हम नहीं उठाते। भागवत के सातवें स्कन्ध के १२ वें अध्याय में इसके विषय में लिखा है जब किसी की इच्छा ब्रह्मचर्य लेने के लिये हो और उसके माता पिता आज्ञा दे दें तो वह २० वर्ष की आयु में इस इच्छा से गुरू के घर जा कर रहे और एकाग्र चित्त से उनकी सेवा टहल करे। गुरू की आज्ञानुसार पढ़े। सन्ध्या वन्दन गुरू, नारायण, सूर्य और अग्नि की पूजा विधि पूर्वक किया करे। जटा सिर पर रख कर, सिर, दाढ़ी, मूँछ आदि किसी अङ्ग के बाल न मुड़वाये। जो भिक्षा माँग कर लाये सब गुरू के आगे रखे। गुरू की आज्ञा पा कर भोजन करे। क्रोध करना, दुर्वचन बोलना, गुरू की निन्दा, इत्र फुलेल लगाना, शृङ्गार करना छोड़ दे। मास, मदिरा का सेवन न करे। गुरू की स्त्री से हँस कर न बोले। दूर से दण्डवत् करे, किसी स्त्री से अकेले में बात चीत न करे और न उसके पास बैठे। पाँच वर्ष ब्रह्मचर्य से गुरू के घर रहे यदि वह ब्रह्मचारी न होना चाहे तो २० वर्ष की आयु में शादी करके गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करे। गृहस्थी होने के अतिरिक्त सन्ध्या वन्दन, देव, पित्र, ब्राह्मण, अतथि पूजन अर्थात् पंच यज्ञ करना चाहिये। गृहस्थ के निर्वाह और उसके सम्बन्धी सब कर्मों के लिये धर्म की कमाई से धन उपार्जन करना चाहिये और बाकी के तीन आश्रमों के चलने और स्थिर रहने और

निर्वाह का बोझा गृहस्थी पर ही है। इसके उत्तरदायित्व बहुत अधिक और कठिन हैं। पचास वर्ष की आयु होने पर बानप्रस्थ धारण करे। अकेला या स्त्री सहित एकान्त स्थान में रह कर परमेश्वर का स्मरण, ध्यान व तप करे कन्द, मूल, फल, फूल पर निर्वाह करे। तप के समय वर्षा में खुले मैदान पर रहना। गर्मी में पञ्चअग्नि तापना जाड़े में जल वास करना। इस तरह से एक वर्ष या दो वर्ष या चार वर्ष या आठ वर्ष तक जितना बन पड़े तप करे ब्रह्म विचार करते रहने से ब्रह्मरूप हो जाता है।

सन्यास, ७५ वर्ष की आयु में सन्यास ले कर दण्ड कमण्डल धारण करे। जिस तरह से ब्राह्मणों ने वेद मन्त्र से जनेऊ पहनाया था, उसी तरह से मन्त्र पढ़ कर जनेऊ गले से उतार डाले और इससे पहले आश्रमों का धर्म त्याग दे। किसी नगर या ग्राम में एक रात से अधिक न रहे। भिक्षा का अन्न भोजन करे। शास्त्रानुसार कर्म करता रहे, मठ आदि न बनवाये, न कोई चेला मूँड़े। बस्ती से बाहर अकेला रहे। हरि चरणों का ध्यान करता रहे और ब्रह्म का प्रकाश जड़ और चेतन सब तन में समझे। वेद और शास्त्र पढ़ने का अधिक अभ्यास रखे। संसार को स्वप्नवत् समझे।

(५६) एक दिन इर्शाद हुआ कि तामसी जीव एक साथ मिल कर विषय भोग कर सकते हैं। राजसी एक साथ मिल कर भोजन खा सकते हैं और सात्विकी जीव एक साथ मिल कर भजन कर सकते हैं। मसल मशहूर है कि "तामसी देश और तामसी जीवों का एक पुक्का। राजसी देश और राजसी जीवों का एक हुक्क़ा।

(६०) एक दिन एक मनुष्य ने यह पढ़ा—

> रहिये अब ऐसी जगह चल कर, जहाँ कोई न हो।
> हम सुख़न कोई न हो और हम ज़बां कोई न हो॥
> बे दरो दीवार का एक घर बनाना चाहिये।
> कोई हम साया न हो और पासबां कोई न हो॥
> पड़िये गर बीमार तो कोई न हो तीमार दार।
> और अगर मर जाइये तो नुहे ख़ुआं (रोने वाला) कोई न हो॥

और अर्ज किया कि यह तो बिल्कुल पागल पन है।

श्री महाराज ने फरमाया कि इसमें पागल पन की क्या बात है। मनुष्य जिस का ध्यान करता है उसी का रूप बन जाता है। जो परमात्मा के ध्यान में हर समय लगा रहता है, तो उस के गुण भी ध्यानी की बोली वाणी और रहन-सहन से झलकने लगते हैं। परमात्मा न किसी के साथ रहता है, न कोई उसका हम ज़बां है और न पासवान है। अर्थात् भगवान् का न कोई चौकी दार है और न उस जैसी बोली बोलने वाला। उस को न बीमारी है, न तीमार दारी (सेवा) की आवश्यकता है। सब में मिला हुआ और फिर भी सबसे अलग है। किसी का आधीन नहीं है। अपने आप में मस्त है।

(६१) एक दिन इर्शाद हुआ कि जब वर्षा होती है, तो संसार में आनन्द भासता है। जमीन सब्ज़ हो जाती है, वृक्ष हरे भरे होकर लहलहाते हैं और झूमने लगते हैं। परन्तु दीवार और मकान जो जड़ पदार्थ हैं, जगह २ से फूलने और गिरने और ढहने लगते हैं। संसार के सब आनन्दों में विषयानन्द सब से बड़ा माना गया है। उस से मन बड़ा सुखी होता है और चाहता है कि बस इसी को भोगा करूँ। लेकिन यह जड़ देही उसके झटके और अति वेग को नहीं सह सकती। कमजोर और रोगी होने लगती है। इस से भी बढ़ कर ब्रह्मानन्द है। जब वह प्राप्त होता है तो मन उस के आनन्द में लीन होना चाहता है और यह चाहता है कि उसी आनन्द को हर समय लिया करूँ। लेकिन जड़ देही उस को सहन नहीं कर सकती और बेकार होने लगती है। इसीलिए शनैः शनैः उसका अभ्यास करना चाहिए। ताकि शरीर भी उसका आदी होता जाये। शरीर जितना सहन कर सकता है, उतना ही भजनाभ्यास स्वास्थ्य को स्थिर रख सकता है। शरीर की सहन शक्ति से अधिक भजनाभ्यास करने से काम एक तरफ़ा हो जायेगा।

(६२) एक दिन एक व्यक्ति ने प्रार्थना की, कि आज कल रिश्वत खोर, चोर, बदमाश जुआरी और चालाक बड़े आनन्द से जीवन व्यतीत करते हैं। भगवान् की यह क्या उल्टी रीति है ? श्री महाराज ने फरमाया कि वक्त का उल्टा पन तो बिलकुल नजर नहीं आता। बल्कि बिलकुल सीधा पन और सच्चाई

दीख पड़ती है। भगवान् ने कर्म की रचना के साथ साथ उसके फल को भी निश्चित कर दिया है। अब जो जैसा करेगा सो तैसा फल पायेगा। भेद इतना ही है कि कर्म सिद्धि और कर्म फल दो पृथक पृथक वस्तुयें हैं। कर्म सिद्धि पुरुषार्थ पर निर्भर है। जितना पुरुषार्थ हम किसी भी काम के लिये करें चाहे अच्छा हो या बुरा वह सिद्ध हो जायेगा। चोर पता लगाते हैं और भाँप लेते हैं कि मालिक मकान कब सोता है, कब जागता है, कहाँ धरोहर रखता है और अक्सर देख कर चोरी करने जाते हैं। उनके पुरुषार्थ से उन की चोरी में सफलता होती है। परन्तु उसके यह अर्थ नहीं कि उनको चोरी का फल नहीं मिले। जब कर्म फल का समय आयेगा और वह पकड़ा जायेगा, तब चोरी का दण्ड भी मिलेगा। इसी तरह से हर एक अच्छे और बुरे काम की सिद्धता यत्न और पुरुषार्थ पर निर्भर है और फल उसके पश्चात् मिलता है। इसीलिये भगवान् को कल्प वृक्ष कहते हैं, कि उससे जो मनुष्य जिस वस्तु की याचना करता है और उसकी प्राप्ति के लिये यत्न और पुरुषार्थ करता है वह उसको अवश्य मिल जाती है। जो भुस माँगता है उसको भुस मिल जाता है। जो जवाहरात माँगता है उसको जवाहरात मिल जाते हैं। उसके पश्चात् जब कर्म फल की बारी आती है तब कर्म के अनुसार अच्छा या बुरा फल भी मिलता है। मनुष्य कर्म करने के लिये स्वतन्त्र है परन्तु कर्म फल के लिये परतंत्र है। यह सब काम नियम पूर्वक होते अवश्य हैं।

(६३) एक दिन इर्शाद हुआ कि हर मनुष्य का स्वभाव है कि जिस काम को वह करता है उसको सब से अच्छा समझता है और जिस तरीके और मार्ग से वह काम करता है उसी तरीके से वह चाहता है कि और सब लोग भी उसी को करें। चाहे वह अनुचित ही क्यों न हो पर करने वाले के निकट वह सब से उत्तम होता है। शराबी जब शराब पीता है तो वह सब को प्याला देता है, वह समझता है कि यह सब से अच्छी वस्तु है और सभी इस को क्यों न पियें। जुआरी भी जुये में सब को शामिल करना चाहता है। वह इस कर्म को सबसे उत्तम समझता है। कई मनुष्यों को तो ऐसी लत होती है कि कोई और आदमी न मिले तो अपने बेटे को ही ताश और चौपड़ खेलने में शामिल कर लेते हैं और उन्हीं के साथ खेलने को जुट जाते हैं यही हाल कर्म काण्डी भक्तों, और

ज्ञान मार्गियों का है। जो जिस पर चल रहा है बस वह यही चाहता है कि सब उसी पर चलें और इस मार्ग को सबसे उत्तम समझता है। यही गति सब मत-मतान्तरों और उनके अधिष्ठाताओं की है।

(६४) एक दिन इर्शाद हुआ कि तामसी जीव अगर राजा या बादशाह हो जाये तो लड़ाई और चढ़ाई अधिक करे। यदि प्रजा तामसी हो तो फ़ौजदारी, डाका, सरफटाई, बात-बात पर झगड़ा, कुछ नहीं तो मुक़द्दमा बाज़ी; खेल खेलेंगे तो कुश्ती, गदका, लकड़ी चलाना, मेढ़े तीतर बटेर लड़ाना, शतरंज चौपड़, चौसर इत्यादि जिसमें और कुछ नहीं तो एक दूसरे की गोट को ही मारेगा। मतलब यह है कि मार कुटाई में उनको बड़ा आनन्द आता है।

राजसी जीव, धोखा, झूठ और चालाकी से दूसरे की पृथ्वी, स्त्री और धन को लेने का यत्न करेंगे। शठ बन्दी, जुआ आदि जिसमें हार जीत या भोग विलास हो ऐसे खेल खेलेंगे। नशे वाली वस्तुओं का प्रयोग अधिक, जेब काटना आदि काम करेंगे, मकान, ज़ेवर अधिक सूद पर गिरवीं रख लेगें और उसको छीनने की धुन में हर समय लगे रहेंगे।

सात्विकी लोग ऐसे काम करेंगे जिनसे लड़ाई झगड़ा मार पीट, धोखा चालाकी मिट जाये। सबको सुख हो, बल्कि अपने ऊपर कुछ कष्ट उठा कर भी दूसरों को सुख पहुँचाने वाले काम करेंगे। दूसरों का धन हरने के बजाय उनको अपने पास से धन देकर सहायता करेंगे।

इतनी बातें जिसमें हो उसी को पूर्ण मनुष्य कहा जा सकता है। यदि सब बातें न हो तो कुछ न कुछ तो होनी चाहिए। जिसमें कुछ भी न हो, वह तो इस धरती के लिये बोझा है। रूप उसका मनुष्य का सा होने पर भी वह पशु है।

> येषां न विद्या न तपो न दानं,
> न जपं न शीलं न गुणो न धर्मो।
> ते मृत्यु लोके भुवि भार भूता,
> मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति ॥

(६५) एक दिन इर्शाद हुआ कि मन जब जाप, ज्ञान और धर्म की तरफ़ लगे तो जानो यह मन का सतयुग है। जब मन में लोभ और तृष्णा हो तब

त्रेता। जब अभिमान, कामदेव और मोह हो तब द्वापर। जब झूठ, जीव हिंसा और क्रोध मन में हो तब मन का कलियुग समझो।

(६६) एक दिन इर्शाद हुआ कि कोई भी संसारी या परमार्थी सिद्धि, शक्ति मनुष्य को बिना अभ्यास, ठीक यत्न, और श्रद्धा के प्राप्त नहीं होती। पृथ्वी के अन्दर नाना प्रकार के पदार्थ सोना, चाँदी, हीरा आदि हैं, परन्तु जब यह श्रद्धा रख कर कि यह अवश्य मिलेंगे ठीक तरकीब के साथ उचित स्थान पर खुदाई न की जाये वह प्राप्त नहीं होते। इसी तरह से आत्मा का अनुभव भावना के अभ्यास बिना नहीं होता। बहुत लोगों का कहना है कि अभ्यास भी एक कर्म है, इससे कर्म से रहित आत्मा की प्राप्ति कैसे हो सकती है। जो वृत्ति बाहर मुख फेरती है, सो अविद्या है। क्योंकि वह आत्म तत्त्व को अलग जान कर फिरती है और जो अन्तर्मुख आत्मा की ओर फिरती है सो यह अविद्या को नाश करती है। अविद्या के दो रूप हैं। १. एक प्रधान रूप जो अन्तर्मुखी है और जिससे विद्या उपज कर अविद्या को नाश करती है और फिर आप भी नाश होती है। जैसे बाँस से आग निकल कर बाँस को जला कर आप भी शान्त हो जाती है। २. दूसरा निकृष्ट रूप अविद्या है जो बाहिर मुख फिरती है। आत्मा के दर्शन या अनुभव होने से अविद्या नहीं रहती। जैसे दीपक ले कर देखो तो अन्धेरा नज़र नहीं आता। जैसे गर्मी से घी का दाना पिघल जाता है। इसी प्रकार ज्ञान होने से अविद्या मिट जाती है। जनक आदि ज्ञान-वानों का निश्चय है कि विस्तार रूप जो कुछ जगत् जाल भासता है वह निर्मल ब्रह्म सत्ता ही अपनी महिमा में स्थित है। जैसे समुद्र में लहर उपजती है और उठती है सो जल से अलग नहीं। सोने का भूषण बन गया परन्तु वह सोने से अलग नहीं। लहर के मिटने और भूषण के टूटने से वह नाम भेद भी मिट जाता है। इसी तरह से सर्व ब्रह्म नित्य शुद्ध सत्र में स्थित है। न कोई मरता है न कोई पैदा होता है। जैसे जल में तरङ्ग न उपजते हैं न मिटते हैं। सर्वदा जल ही जल है। रस्सी एक होती है पर नित्य सम्यक ज्ञान वाले ही को रस्सी दीख पड़ती है। जिसको सम्यक् ज्ञान नहीं उसको सर्प दिखलाई पड़ता है। इसी प्रकार जगत् भी दो रूप वाला दिखलाई पड़ता है। अज्ञानी को तरह-तरह का जगत् दिखलाई देता और ज्ञानवान् को सुख रूप ब्रह्म सत्ता अनुभव होती है। कर्त्ता, कर्म, कारण,

सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण यह जो षट कारक बुद्धि है सो सब ब्रह्म ही है, ऐसा जिसको अनुभव हो वह ज्ञानी है। जो बन्धु बहुत दिनों से बिछुड़ा हो और जिसको देखा भी न हो तो वह अबन्धु की तरह से हो जाता है। तैसे ही अपना स्वरूप भी दुर्वासना से आवरण हुआ है, जैसे सफेद कपड़ों पर रङ्ग जल्दी चढ़ जाता है तैसे ही वासना से रहित चित्त में ब्रह्म स्वरूप भासता है। इसी भाव को लेते हुए योग वाशिष्ठ में ऐसा उपदेश है कि सदा काल सब में सब तरह घट-पट आदिक जो जगत् जाल है इस में ब्रह्म आकाश की तरह व्याप रहा है। लहू, मास, हड्डी का शरीर भी मैं ही हूँ। सब में इस रूप में मैं ही हूँ। जिस में यह सब है, जिस से यह सब है, और जो सब है और जिस का सब है ऐसा चिद् आत्मा ब्रह्म मैं ही हूँ। जिस के चेतन, आत्मा, ब्रह्म, सत्, अमृत, ज्ञान, रूप आदिक नाम हैं ऐसा सर्वशील, चिन् मात्र चेत से रहित प्रकाश मात्र निर्मल, सर्वभूत प्रकाशक और मन, बुद्धि, इन्द्रियों का स्वामी मैं ही हूँ। जो कुछ भेद कल्पना है सो सब उसी ने की थी। अब उन कल्पनाओं को त्याग कर मैं अपने प्रकाश में स्थित हूँ। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदिक जो जगत् के कारण हैं, इन सब का चेतन आत्मारूप ब्रह्म अविनाशी, निरन्तर, स्वच्छ आत्मा, प्रकाशरूप, मन के उत्थान से रहित मौन रूप मैं ही हूँ। जिस से स्त्री के स्पर्श और आनन्द का अनुभव होता है, खजूर और नीम आदिक में स्वाद प्रतीत होता है वह सब मैं ही हूँ। जिस प्रकार से माला के दानों में तागा गुप्त होता है और दूध में घी छुपा रहता है, इसी तरह से मैं सब शरीरों में व्याप रहा हूँ। सब संकल्पों का फल देने वाला और सब का प्रकाशक आत्मा मैं ही हूँ। सदा अलेप, साक्षी, सुषुप्ति की तरह और द्वैत कल्पना से रहित, अक्षोभ रूप, अनन्य मैं ही हूँ। जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरिया और तुरियातीत स्वयं तत्त्व हैं वह मैं ही हूँ।

(६७) एक दिन इर्शाद हुआ कि संसार में कई तरह की पाबन्दी हैं। किसी समय यह गुलामी की सीमा तक बढ़ जाती है। जब इस से भी बढ़ जाती है तो इसको नाचना कहते हैं। नाचने में सब से अधिक परिश्रम उठाना पड़ता है। यहाँ तक कि दिन भर के काम करने और चलने-फिरने से मनुष्य को इतनी थकान नहीं होती, जितनी घन्टा, आध घन्टा नाचने से होती है। यह पाबन्दी, गुलामी और नाच आम तौर से विवशता से होता है। प्रथम धन की मजबूरी,

धन से नौकर-चाकर, स्त्री हो या पुरुष दूसरे की इच्छानुसार दूसरे का काम करने पर विवश होते हैं। पैसा दे कर जो चाहे सो कराओ। कम विवशता में कम पाबन्दी होती है। अधिक मजबूरी में यह पाबन्दी गुलामी की सूरत पकड़ लेती है। दूसरी कामातुर जीव की विवशता। इसमें मनुष्य एक दूसरे के पीछे लगे फिरते हैं। स्त्री पुरुष के पीछे, पुरुष स्त्री के पीछे, जिस से जिस की काम वासना की तृप्ति हो वह उस के आधीन होता है। यह अधीनता किसी समय इतनी बढ़ जाती है, कि सेवक की तरह हाथ बाँधे खड़ा रहना पड़ता है। तीसरे सन्मान की मजबूरी, नामवरी, इज़्ज़त-आबरू बढ़ाने और स्थिर रखने के लिये भी नौकर की तरह काम करना पड़ता है। सेवक की तरह 'जी हज़ूर जो हुक्म' कहना पड़ता है। पद प्राप्त करने के लिये सेवक की तरह पीछे-पीछे फिरना पड़ता है। चौथे धर्म और सत् की पाबन्दी, जो उस के पाबन्द होते हैं, वह भी नौकर की तरह से धर्मात्मा और जती-सती की सेवा-टहल में लगे रहते हैं, और उन्हीं की आज्ञा पालन करते हैं। धर्मात्मा राजा, बादशाह और साधु-महात्माओं की सेवा-टहल और आज्ञा पालन इसी भाव के अधीन होती है। जब मनुष्य पाबन्दी और गुलामी से बढ़ कर दिन-रात किसी काम में लगा रहता है, न समय देखे न कुसमय, हर समय जब मनुष्य हाथ बाँधे खड़ा रहे तो यह पाबन्दी और गुलामी से बढ़ कर नाच नाचने के नाम से पुकारी जाती है। अमुक स्त्री तो अपने पति को हर समय नाच नचाती रहती है। यह नाच धन से होता है। वेश्या धन ले कर नाचती है। स्त्री को आभूषण, कपड़ा दे कर खुश रखो तो वह जो कहो करने को तैयार रहती है। कामातुरता के अधीन भी यही दशा रहती है। स्त्रियाँ वीर्यवान पुरुष के कहने पर नाचती हैं। कामी पुरुष स्त्री के इशारे पर नाचते हैं अर्थात् जो कहो सो करने को तैयार रहते हैं। नाम और इज़्ज़त के चक्र में भी मनुष्य इतना लगा रहता है, कि उसके बारे में भी कहने लगते हैं कि वे तो दिन भर यही नाच नाचते हैं। इसी तरह से सत्त् और धर्म की खातिर भी पाबन्दी और गुलामी और नाच नाचने की सीमा तक स्त्री और पुरुष सब काम में लग जाते हैं। श्री कृष्ण भगवान् के धर्म और सत् और सचाई से ही प्रभावित हो कर स्त्रियाँ उन की पाबन्द बन गईं थीं और गुलामों की तरह सेवा टहल करने की उन को लालसा लगी रहती थी और उन की आज्ञा में हर तरह से दिन-रात ऐसी लगी रहती थीं, कि जिसको नाच नचाना कहते हैं।

(६८) एक दिन एक साहिब आते ही कहने लगे कि बड़ा अत्याचार हो रहा है। इतने हिन्दू मारे गये। माल-असबाब, घर-बार सब लुट गया। संबंधियों को पकड़ कर ले गये। इस ज़ोर जबरदस्ती की कोई सीमा है। कोई पूछने वाला नहीं। इस अन्धेर का कोई ठिकाना नहीं। श्री महाराज फरमाइये तो कैसा अन्धेर हो रहा है? इस बातचीत का सिलसिला बन्द करने के लिये श्री महाराज ने फरमाया कि किसी किसान ने अपने खेतों में बाजरा, ज्वार, मोठ, मूँग, उर्द और अरहर बोये। जब वर्षा समाप्त हुई और कार्त्तिक के महीने में फसल पक गई तो उन पर दराँती चलनी आरम्भ हुई। अब बाजरा चिल्लाया, कि लीजो-चलियो, मार डाला, मेरी बाल कहाँ गई, मेरी कड़ब कहाँ गई। इस किसान ने गज़ब ढा दिया। इसी तरह से ज्वार ने गुल मचाया। जब उर्द कटने लगा तो वह भी चिल्लाया। मूँग भी रोई। हाय हमारी यह दशा कर दी। सब संग साथी छूट गये, हम सब का दिल इस बुरी तरह से दुखाया। इस मुये अरहर को किसी ने हाथ भी नहीं लगाया। गौर कीजिए क्या यह शिकायत उचित है और क्या किसान ने अपराध किया और प्रकृति से उस को अब या अन्तिम समय दण्ड मिलेगा। जिन खेतों में अरहर थीं, उन के सिवाय, ऊँट, बैल, घोड़े, गधे का हल चला दिया। किसी में चने बो दिये, औरों में गाहन फेर कर ढेले तोड़ दिये। खेतों को बिलकुल बराबर कर दिया। जौ, गेहूँ, सरसों, सौंआन, लाहा बो दिया। अढ़ाई माह बाद खेतों में सरसों के फ़ूल आये। बसन्त की बहार नज़र आई चारों तरफ खेत लहलहा रहे हैं। जब चैत का आखीर हुआ, खेत पक गये। अब फिर हँसिया चला और वही लावनी (खेत काटना) शुरू हुई। अब जौ, गेहूँ, चनों ने हाय दुहाई मचाई। अरे परमात्मा यह क्या आफ़त आई। अरे मुझ को बैलों के पैरों से खुंदवा डाला। अरे मेरे भूसे और गड्ढे को मुझ से अलग कर दिया। बैसाख में अरहर की भी शयामत आई और उसने भी वही सज़ा पाई। क्या वास्तव में किसान ने यह अत्याचार किया? क्या उस को दण्ड मिलेगा?

जहाँ दार दानद, जहाँ दाशतन।
यकेरा बुरीदन दिगर काशतन॥

अर्थ यह है कि संसारी जीव संसार को रखना जानते हैं। ज्ञानी एक

का काटना दूसरे का लगाना जानते हैं। परमात्मा जानता है संसार का रखना। एक को काटना और दूसरे को उसकी जगह बोना।

परमात्मा की जैसी इच्छा होती है। वैसे ही होता है। यदि आपको इस बात की शिकायत करनी ही है तो सरकारी अधिकारियों से कहियेगा। जिनके हाथ में देश का प्रबन्ध है वे उचित कार्यवाही करेंगे। हम लोगों का यह काम नहीं है। न ही हमारा उनके प्रबन्ध में हस्तक्षेप करने का है। हर मनुष्य को अपने काम का ध्यान रखना चाहिये।

रमूज़े मुमिलिकते ख़ेश, ख़ुसरवाँ दानदँ।
गदाये गोशा नशीनी तो, हाफ़िज़ा मख़रोश ॥

हाफ़िज़ कवि कहते हैं कि अपनी हकूमत की बातें और भेद बादशाह जानते हैं। तू तो एक कौने में बैठा फकीर है। क्यों चिल्लाता है।

(६६) एक सेवक को छावनी कमेटी के अधिकारियों ने कमेटी का मैम्बर बनाने के लिये चुना। किन्तु उसने मैम्बर बनने से इन्कार कर दिया और सत्सङ्गियों ने भी श्री महाराज से अर्ज़ किया कि छावनी की कमैटी की मैम्बरी बड़ी इज़्ज़त की जगह है। जिले का कलेक्टर भी उसका मैम्बर होता है। आप उनको समझाइये कि वह मैम्बरी पर चले जायें।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि यह सब काम राजनीति से सम्बन्ध रखते हैं और उनमें जिस तरह शाम, दाम, दण्ड, भेद से काम निकले उसी तरह से निकाला जाता है। धर्म, अधर्म का विचार नहीं किया जाता, जिस मनुष्य की रुचि धर्म की ओर हो उसे ऐसी मैम्बरी आदि से पृथक् रहना ही ठीक समझा जाता है, क्योंकि स्वराज्य और परराज के नियमों में कुछ न कुछ अन्तर होता है, जभी तो सब लोग स्वराज्य चाहते हैं। ताकि राजनीति नियम, देश के नियम, जाति के नियम, बिरादरी (समाज) के नियम (कानून), कुटुम्ब के नियम, गृहस्थ के नियम इत्यादि, जो नियम भी बनाया जाय या चालू किया जाय वह इस तरह का होना चाहिये कि इन नियमों में से किसी भी ओर प्रकृति के नियमों से उसका अन्तर न हो, क्योंकि जिस से अन्तर हुआ, उसी नियम में बाधा पड़ेगी और उसका उत्तरदायित्व नियम बनाने वाले और मजूरी न देने

वाले सब पर होगा। इसलिये धर्मात्मा लोग इस उत्तरदायित्व को अपने ऊपर लेना पसन्द नहीं करते और केवल मान और नाम की बड़ाई के लिये किसी ऐसे पाप कर्म में हाथ नहीं डालते जिसके फल के भागी वे भी गिने जायें। जहाँ स्वराज्य होता है वहाँ प्रत्येक नियम इन सब बातों से मिलता जुलता बनाया जाता है। पर राज्य वाले अधिकारी अपनी जाति, अपने देश के धर्म का अधिक ध्यान रखते हैं और—

अन्धा बाँटे रेवड़ी फिर-फिर अपने को दे वाला नियम चलता है। इस लये हम उनके फैसले में दखल देना नहीं चाहते। वे अपने काम को खूब समझ कर करते हैं।

(७०) एक दिन इर्शाद हुआ कि जिस किसी को भी सफलता प्राप्त हुई है अपने विश्वास, श्रद्धा और ठीक क्रिया से हुई है। यह नियम जैसा एक मनुष्य पर लागू है वैसा ही एक परिवार और जाति के लिये ठीक है जिस धर्म या जाति का विश्वास अपने गुरू आचार्य पथ प्रदर्शक अवतारों और रसूल, पैग़म्बर पर अटल है उसको अपने कामों में अवश्य सफलता प्राप्त होती है। हिन्दू धर्म में हज़ारों तो क्या लाखों मनुष्य ऐसे हैं जो श्री कृष्ण भगवान् श्री रामचन्द्र जी के विषय में औंधी बातें करते हैं और दोष निकालते हैं। मुसलमानों में ऐसे दस भी कठिनाई से मिलेंगे जो मौहम्मद साहब के दोष निकालें। नमाज, रोज़ा आदि में जैसी पाबन्दी उनकी हैं, वैसे ही सन्ध्या वन्दन में हिन्दुओं की दिखाई नहीं देती। उसका परिणाम भी साफ प्रकट है जैसी सफलता उनको अपने अर्थ में होती है वैसी हिन्दुओं को नहीं होती। हिन्दू अपने अवतारों और पथ प्रदर्शकों के कामों में हज़ार तर्क वितर्क करते हैं। यह बात दूसरी है कि वह अर्थ कैसा है और उसका फल क्या होगा। यदि अर्थ अच्छा है तो फल अच्छा होगा और बुरा है तो बुरा होगा। लेकिन अच्छा हो या बुरा विश्वास और ठीक क्रिया से वह सिद्ध अवश्य हो जायेगा। विश्वास और क्रिया केवल सिद्धि प्राप्त करते हैं। वह कर्म फल के उत्तरदायी नहीं। जैसे चोर धन का ठीक पता लगा कर और ठीक तरकीब से ऐंडा लगाता है तो माल उसके हाथ अवश्य आता है। किन्तु चोरी का परिणाम क्या होता है, उसका फल दूसरी वस्तु है।

(७१) एक दिन इर्शाद हुआ कि पंजाब की तरफ मसल मशहूर है कि "माँ से ज्यादा हित करे, सो फ़ाफ़ा कुट्टन" जो स्त्री बहुत अधिक प्रेम दिखलावे और ऐसा लाड़ प्यार करे जैसा माँ भी नहीं करती, तो ऐसी स्त्री की तरफ से प्रत्येक स्त्री को होशियार और ख़बरदार रहना चाहिये। उसका इतना प्रेम बिना स्वार्थ के नहीं। वह किसी अर्थ और चालाकी से ऐसा करती है और कुछ ऐंठना चाहती या किसी की तरफ से कुटनी है। इसी तरह जो आदमी किसी स्त्री को उसके पति से अधिक प्रेम करे तो समझ लो कि वह आबरू लूटना चाहता है यदि कोई पुरुष किसी से घर में आना जाना बहुत रखता है और बिना कुछ लिये दिये सुबह से शाम तक बल्कि रात तक उनका प्रत्येक काम करता है और यदि कोई बीमार पड़ जाय तो दवा दारू ला कर रात भर सेवा करता है और घर के अन्दर जाने की इच्छा रखता है तो समझ लेना कि यह किसी स्त्री का ग्राहक है और समय मिलने पर कभी नहीं चूकेगा। ऐसे पुरुष को घर से दूर ही रखना चाहिये और स्त्री रनवास में तो हरगिज वह न जाये। आज कल ऐसा समय है कि नौकर तनख्वाह लेने पर भी परिश्रम से काम नहीं करते। मज़दूर मज़दूरी ले कर भी काम में सुस्ती करते हैं। सम्बन्धी काम से जी चुराते हैं, मित्र भी जी चुराते हैं। फिर भला बिना कौड़ी पैसे के ऐसा कौन धर्मात्मा हो सकता है जो दूसरों का काम तन मन से करे। जब बदमाश आदमी औरतों का ज़ेवर रुपया ख़तम कर चुकते हैं तो उनका प्रेम काफ़ूर हो जाता है। जो स्त्री अपना घर बार बाल बच्चे कुटुम्ब परिवार सब कुछ छोड़कर झूठे प्रेम में फँस कर ऐसे आदमियों का विश्वास कर लेती है, वह पीछे बहुत पछताती है। यहाँ तक कि जो मनुष्य कुछ समय पूर्व अपनी जान न्योछावर करता था, वही मनुष्य गाली गलोच, लात लीतरे और डन्डे से बात-बात पर ख़बर लेता है।

साधु के लिये विशेष कर स्त्री और धन का त्याग आवश्यक है। मामला बिल्कुल उल्टा हो गया है। विधवा औरतें या पैसे वाली स्त्रियाँ तीर्थ स्थानों पर जाती हैं और साधु महात्माओं के दर्शन का लाभ उठाने और सत्सङ्ग की इच्छा से उनके पास जाती हैं जब उनका माल साधु के अधिकार में आ गया तो वह स्त्री उनके दिल से उतर गई। तब वह अपनी तरह के पंछी फाँस कर वहाँ

लाने का काम करती है। जहाँ दो चार स्त्रियाँ देखीं उपदेश शुरू हुआ। बस इस संसार में जो कुछ हैं हमारे गुरू ही हैं। हमने हज़ारों साधु देखे, संसार ढूंढ़ मारा, परन्तु ऐसे पूर्ण महात्मा कहीं नहीं मिले । हर रोज़ कई घण्टों की समाधि लगाते हैं । हठयोग की हर एक क्रिया जानते हैं और राज-योग के पूर्ण आचार्य हैं और ऐसे जाल बिछाती हैं कि कोई न कोई पक्षी फंस ही जाता है। जब इसका धन, यौवन लूट लिया जाता है तो फिर या तो धक्के मार कर आश्रम से बाहर निकाल दिया जाता है या वह ही रोज़ की कल-कल, टायें-टायें सुनने से तङ्ग आ कर अपना मुँह काला कर लेती है। यह ज़माना बहुत होशियारी से चलने का है। अन्ध विश्वास से काम बिगड़ जाता है।

(७२) एक व्यक्ति बहुत समय से श्री महाराज के दर्शन को आते थे बड़ी श्रद्धा और प्रेम दिखलाते थे। सुबह, शाम, दोपहर, तीसरा पहर, रात आधीरात तक भी आना जारी रहता था। ऐसे जब बहुत समय व्यतीत हो गया तो अकेले में श्री महाराज के सामने आँखों में आँसू लाकर बोले कि यदि सच्ची श्रद्धा और भक्ति से मैं आपके दरबार में हाज़िर होता तो न मालूम क्या बन गया होता। किन्तु मैं भेद लेने के लिये आता जाता था। फिर भी आपका प्रभाव ऐसा पड़ा कि मुझे इस प्रकार की हरकतों से शर्मिन्दगी हो गई है। कोई ऐसा समय नहीं हुआ होगा कि मैं उपस्थित न हुआ हूँगा, और भी महात्माओं के पास में आता रहा हूँ और बहुत तरह के अण्ड भण्ड काम उनके यहाँ देखे जिससे घृणा सी हो गई है। यह समझ में नहीं आता कि महात्मा होकर ऐसी गति क्यों है? आपके यहाँ कोई भी ऐसी बुरी बात मेरे देखने में नहीं आई, केवल एक बात है जिस पर मुझे एतराज़ है । आपका स्वभाव और प्रकृति इतनी सात्विकी और उत्तम है उसका बुरा असर आपमें नज़र नहीं आता। अर्थात् जिसको संसारी बुरा समझते हैं वह बात आपके दरबार में असर नहीं कर सकती। कृपा कर मेरा सन्देह दूर कीजिये कि दूसरे महात्माओं के यहाँ यह बुराइयाँ क्यों हैं? जिनको गृहस्थी भी बुरा समझते हैं।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि राजा के जितने राज-कार्य करने वाले और अधिकारी होते हैं उनको उसी राजा के चलाये हुए कानून और नियमानुसार बर्तना पड़ता है और उसी क़ायदे क़ानून के अनुसार काम काज करना

पड़ता है । यह कलियुग भगवान् का समय है महात्मा और अवतार भी इसी युग के अनुसार स्वयं चलते हैं और औरों को भी चलाते हैं। जिस प्रकार पहले राजा के नियमों को वर्त्तमान राजा तोड़ देता है, उसी तरह समय-समय के अवतार और महात्मा भी पुराने नियमों का तिरस्कार करते हैं । रामायण के उत्तरकाण्ड में पढ़ लीजिये । जिस महात्मा को लीजिये वह अपनी ही बातें दिखलाता है। कोई कहता है शास्त्र पुराण गपोड़े हैं, तर्पण श्राद्ध में फ़ज़ूल पानी उछालना है, मील दो मील के फ़ासला पर यदि खेती हो तो घर पर बैठ कर पानी उछालने से क्या बनता है। फिर तर्पण के करने से पितृ और देवता कैसे तृप्त किये जा सकते हैं, हवन अच्छी वस्तु है । कोई कहता है कि घी और शक्कर मनुष्य के खाने के लिये है, न कि अग्नि में झोंकने के लिये । कोई राम जी, कोई श्रीकृष्ण जी, कोई हज़रत मूसा, कोई हजरत ईसा, कोई हज़रत मौहम्मद की शान में अनकहनी बातें कहता है। कोई उनको अपने से भी नीचे दर्जे का बतलाता है। गर्ज़ तामसी और राजसी अहंकार से भरपूर हैं । कलियुग की बात ही कहता, और उपदेश करता है । बल्कि अपने चलन और व्यवहार में उसको प्रकट करता है । "सन्त महिमा कोई न जाने" ऐसी बातें कह कर अपनी रहनी सहनी की पुष्टि करता है, परन्तु सच्ची बात यह है कि शास्त्र मर्यादा के विरुद्ध जो बात हैं, वह सब के लिये ही बुरी है। जो अहङ्कार या हठ से कर्म करता है उसको अवश्य ही उसका भोग भोगना पड़ता है। बस यही सबूत शास्त्र की सच्चाई का है।

(७३) एक दिन ईर्शाद हुआ कि प्रकृति के ६ भाग माने गये हैं। १. स्वभाव सेः जैसे मिर्च में कड़वाहट है और बूरे में मिठास। २. ईश्वर-वादी पर्वत, पृथ्वी, स्वर्ग, नर्क, सब का कारण ईश्वर को मानते हैं और कहते हैं कि जीव अल्प-ज्ञानी है और दुख-सुख में असमर्थ है । ईश्वर की प्रेरणा से स्वर्ग, नर्क में जाता है। ३. काल-वादीः सम्पूर्ण जगत की सृष्टि, स्थिति और प्रलय का कारण "काल" ही को कहता है। परम-तत्त्व के जानने वाले योगी भी उसके आदि, अन्त और मध्य को नहीं जानते। वह संसार उत्पत्ति, प्रलय और स्थिति, सूर्य आदि से अनुमान किये जाने के क़ायल हैं । ४. जो जिसमें होता है वही उसका निमित्त है । जैसे तिनका और अरणी अग्नि के निमित्त हैं यह इच्छा-वादियों

का मत है। ५. पूर्व जन्म रचित, धर्म और अधर्म को नित्य कहते हैं ? यह सब का कारण है यह नित्य वादियों का कारण है। ६. परिणाम वादी, अहङ्कार आदि रोग के कारण से परिणाम पर ही प्रधान है और सब का वही कारण है।

(७४) एक दिन इर्शाद हुआ कि शरीर के लिहाज से राजा और प्रजा समान हैं। चार बातों से राजा बड़ा माना जाता है। आज्ञा, त्याग, क्षमा और धैर्य।

(७५) एक दिन इर्शाद हुआ कि जिस मनुष्य को घर बैठे बिना परिश्रम के पेट भर रोटी और तन ढाँपने को कपड़ा मिल जाये और राजसी कामना पूरी होती चली जाये तो वह फिर क्यों परिश्रम करेगा। इसलिये प्रबन्ध में इस बात की आवश्यकता है कि प्रत्येक मनुष्य को रोटी कपड़ा तब मिलना चाहिये, जब वह काफी परिश्रम करे और इस प्रबन्ध में उसके काम से सहायता मिले, कोई विशेष जाति आवश्यकता से अधिक धनवान् हो तो वह दूसरों को हानि पहुँचाएगी । किसान यदि सब से अधिक खुशहाल हो गया हो तो अनाज घर में रखकर बैठ जायेगा और दूसरे मनुष्य भूखे मरेंगे या बहुत दाम उसको मिलेंगे। इसी प्रकार धोबी के पास यदि धन अधिक हो गया हो तो वह कपड़े या तो धोयेगा ही नहीं या निरख बढ़ायेगा। यही दशा पैसे वाले दुकानदार और रोज़गार वालों की समझ लेना चाहिये। देश के प्रबन्ध करने वालों का धर्म है, कि वे ऐसा नियम बनाएँ जिससे सब की इच्छा समानता के साथ पूरी होती रहे। जिस फिरके या जाति में अधिक खुशहाली हो जाती है या तो वे स्वयं किसी ऐशोइशरत के फंदे में फँस जाते हैं कि उसकी विवशता से फिर वह परिश्रम करने को विवश हों, वरना उसके पास से रुपया खींचने का कोई प्रबन्ध देश के प्रबन्ध कर्त्ता करते हैं। उदाहरणार्थ जिन देशों में धन बहुत बढ़ गया है वहाँ शराब, अय्याशी, नाच, तमाशा, सिनेमा और जूआ इत्यादि कामों की प्रथा हो गयी है। उन कामनाओं की पूर्ति के लिए धन कमाने के लिए नये-नये धन्धे निकालता है। जिनमें ऐसे राजसी या तामसी ठाट नहीं हैं वहाँ राजा का धर्म है कि धन को फैलाये और एक हाथ से दूसरे हाथ में जाने का प्रबन्ध करे वरना बुराई फैल जायेगी और निर्धन अति दुखी हो जायेंगे।

(७६) एक दिन इर्शाद हुआ कि यदि किसी मनुष्य का दिमाग खराब हो जाय तो उसकी बात और कर्म का भरोसा नहीं होता, जो चाहे कर डाले। किसी को पुचकार दे और किसी को मार दे। धर्म अधर्म का ध्यान उसको नहीं रहता, भला या बुरा जो चाहे कर डाले। जिस मनुष्य के हाथ न हों, या कट गये हों, या टूट गये हों वह पुरुषार्थ हीन हो जाता है कोई उसका भय नहीं करता, बच्चा तक उस पर धूल डाल दे या चाहे जैसा निरादर करें वह सिवाय इसके कि मुँह से बकबक करे या गाली दे दे और कुछ नहीं कर सकता। बल्कि गाली में भी अधिक मार खाने का भय रहता है। मनुष्य के पेट में कोई रोग या खराबी हो तो भोजन का ठीक रस नहीं बनता न समान भाव से शरीर के सब अङ्गों को पहुँचता है, खराब और कम रस पहुँचने से सब अङ्ग कमज़ोर हो जाते हैं और शरीर नष्ट हो जाता है।

चाहे सब अङ्ग ठीक और बलवान हों यदि जाँघों में शक्ति नहीं तो मनुष्य का शरीर खड़ा ही नहीं रह सकता। मनुष्य के अङ्गों में जंघा ऐसी होती है जैसे मकान के खम्भ। सारे मकान का बोझ खम्भों पर होता है। "खम्भों पर जरब आये तो कुल इमारत गिर पड़े।"

चारों वर्णों को विभाजित करने से ब्राह्मणों को संस्था का सिर माना है। क्षत्रियों को हाथ, वैश्यों को पेट और शूद्रों को पैर। जिस वर्ण में खराबी पैदा हो जाती है उसके चिन्ह ऊपर कही हुई बात से प्रकट हो जाते हैं। ब्राह्मणों में खराबी हो जाने से धर्म का नाश होता है और कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का विचार नहीं रहता। क्षत्रियों में खराबी हो जाने से जनता पुरुषार्थ हीन हो जाती है देश में गड़बड़ फैल जाती है, डाके दिन दहाड़े पड़ने लगते हैं लूट मार होने लगती है ऐसी जाति को अधर्मी माना गया है। व्यवहार बिगड़ जाने से कुछ समय में देश अधोगति को प्राप्त हो जाता है। वैश्य वर्ण में खराबी पैदा होने से बनिज व्यवहार नष्ट हो जाता है और शूद्र वर्ण में खराबी होने से उद्योग आदि में बिगाड़ पैदा हो जाता है, जैसे खम्भ गिरने से मकान एक दम गिर जाता है। इस लिये जिस वर्ण में खराबी हो उसको गम्भीर विचार से ठीक करना चाहिये। बिना ठीक किए खराबी बढ़ कर देश का नाश कर देती है।

(७७) एक दिन ईर्शाद हुआ कि जो पुरुष अपनी स्त्रियों को स्वतन्त्रता दे देते हैं और सिर पर चढ़ा लेते हैं और उन्हें मनमानी करने से नहीं रोकते वे दुख उठाते हैं। जैसे राजा दशरथ और पाण्डवों ने उठाया। जो मनुष्य अपनी सन्तान को बुरे काम से नहीं रोकते और अधर्म से नहीं हटाते, तो वे ऐसे कष्ट पाते हैं, जैसे राजा धृतराष्ट्र इत्यादि ने पाया। जो लोग शारीरिक बल, धन बल या कुटुम्ब बल आदि में मस्त होकर निर्बलों और सम्बन्धियों पर अनीति करते हैं वे नष्ट हो जाते हैं और मारे जाते हैं, उनका कुटुम्ब और धन नाश होता है, जैसे रावण और दुर्योधन का हुआ। पूर्वजों की आज्ञा चाहे कैसी ही कष्ट साधक हो उसका परिणाम अच्छा होता है। जैसे श्री रामचन्द्र जी और पाण्डवों को मिला। माता, पिता और बड़े भाई की आज्ञा पालन करना, उनकी सेवा करना, हर बात को सहन करना वह कीर्ति बढ़ाता है, जैसे विभीषण, भरतजी, लच्मण जी तथा पाण्डव। शराब आदि मादक वस्तुओं के सेवन करने से श्री कृष्ण भगवान् की आँखों के सामने उनके कुल, कुटुम्ब, राज और ५६ करोड़ यादवों का घड़ी भर में नाश हो गया तो और कौन बच सकता है। हनुमान जैसे बंदर योनि में जन्म लेने वाले जीव निष्कपट स्वामी भक्ति से देव संज्ञा में आ गये और देवताओं की प्रशंसा के पात्र बन गये तो मनुष्य योनि में जन्म लेने वाले, ऐसा करने से क्या कुछ नहीं हो सकते। भगवान् की भक्ति से नीच से नीच योनि में जन्म लेने वाले मनुष्य और पशु, पक्षी आदि परम गति को प्राप्त हुए। तो इसमें क्या संशय रह गया कि जो कोई और भक्ति करेगा वह उस पद को क्यों न प्राप्त होगा। स्त्री को बिना चूँ चराँ के पति की उचित बात मान लेनी चाहिये और जो स्त्री ज़िद से पति की बात को न मान कर अपनी ही बात जताती है वह कष्ट पायेगी।

(७८) एक दिन ईर्शाद हुआ कि क्या मनुष्य, क्या पशु, क्या पक्षी और क्या कीड़े मकोड़े सब में अपने मत के अनुसार रहने और विचरने की इच्छा पाई जाती है। बन्धन किसी को पसन्द नहीं। मनुष्य को चाहे कितने सुख हों, किन्तु पाबन्दी की दशा उसको भी पसन्द नहीं। पशुओं को बाँध कर अच्छे से अच्छा दाना और चारा दिया जाये तो भी वह खुश नहीं रहता जितना स्वतन्त्रता के साथ खुले रह कर विचरने में रहता है।

पक्षियों को चाहे सोने के पिंजरे में बन्द कर अच्छे से अच्छा दाना उनकी रुचि के अनुसार दिया जाये तब भी वो इतने सुखी नहीं हो सकते जितने खुले रह कर। यदि विचार किया जाय तो पता चलता है कि परमेश्वर जिसने यह सर्व ब्रह्माण्ड रचा है वह सब से ऊपर है, उससे कोई ऊपर नहीं। जो उसकी इच्छा और मौज़ में दख़िल दे सके। क्योंकि यह सारा संसार उसीसे प्रकट हुआ है और सब में उसका अंश विद्यमान है। इसलिये उसकी इच्छा और प्रसन्नता का प्रभाव सब में पाया जाता है। जब इस संसार को उसकी इच्छा और मौज़ से प्रकट हुआ मान लिया तो यह भी मानना पड़ेगा, कि उसका संचालन भी उसकी इच्छा के अनुसार होना चाहिये। उनके विरुद्ध होने से काम में बाधा पड़ेगी। और उसकी इच्छा को ही दैव इच्छा कहते हैं। इसलिये इस संसार को चलाने के लिये राजा का न्याय, देश का न्याय भी उसी ईश्वरीय इच्छा के अनुसार होना आवश्यक है। इसके नीचे शहर का, गाँव का, कुटुम्ब का और गृहस्थ के सब नियम उसी नियम पर निर्भर हैं। जो नियम उस नियम के विरुद्ध होगा, तो उसका परिणाम जल्दी या देर में समय पा कर अच्छा न होगा। कोई नियम ऐसा हो कि लड़कियों को पैदा होते ही मार दिया जाय या आदमी मर जाये तो उसकी स्त्री को बल पूर्वक उसके साथ जलाया जाय या कबर में दफ़न कर दिया जाय, या परमात्मा के न मानने वालों को क़त्ल कर दिया जाय, तो यह सब बातें ईश्वरीय नियम के विरुद्ध होंगी। यदि ईश्वर लड़कियों को न रखना चाहे तो उनको पैदा ही न करे या पैदा होने के साथ वह मर जायें। आदमी के मरने के साथ उसकी स्त्री भी मर जाये या उसके न मानने वाले स्वयं मर जायें, परन्तु ऐसा नहीं होता। इससे प्रकट है कि यह बातें ईश्वरीय नियम के विरुद्ध हैं उनका परिणाम सदा के लिये अच्छा नहीं। राजा और उसके मन्त्रियों का धर्म है कि नियम बनाते समय सब बातों पर विचार करके बनायें। इस तरह से सरपञ्च, मुखिया, नम्बरदार, कुटुम्ब के बड़े-बूढ़े और गृहस्थी में माता, पिता की बात मानना धर्म है। इसी नियम पर ध्यान रखते हुए वह भी अपने अधीन मनुष्यों के लिये मर्यादा स्थापित करें।

(७९) एक दिन ज़िक्र हुआ कि अमुक महात्मा अपनी बात का बड़ा समर्थन करते हैं और उसको मनवाने के लिये तरह-तरह के दबाव डालते हैं श्री महाराज ने फ़रमाया कि—

पक्षा पक्षी के कारणे, सब जग रहा भुलान।
निपक्ष होकर जो भजे, सोई सन्त सुजान ॥

सबसे पहली बात महात्मा के लिये यह आवश्यक है कि वह किसी तरह का दबाब या ज़ोर डाल कर किसी से कोई काम न कराये और न ही किसी को किसी काम को करने पर विवश करे। भगवान् ने सब जीवों को कर्म करने में पूरी स्वतन्त्रता दी है इस के साथ ही कर्म फल निश्चय कर दिया है। जो जैसा करता है वैसा फल भोगता है और उसका फल ही एक दूसरे के लिए शिक्षा बन जाती है। वास्तविक धर्म ईश्वरीय नियम के अनुसार बर्तना है और उसी मार्ग पर चलने का दूसरों को उपदेश देना, सच्चा मार्ग दिखलाना है। मार्ग दिखलाने वाला किसी को बलपूर्वक किसी मार्ग पर नहीं चलता वह तो केवल पूछने पर मार्ग बतला देता है। फिर चलने वाले की खुशी है कि वह उस मार्ग पर चले या न चले। जब संसार का ईश्वर एक है, तो उसके नियम भी सब संसार के लिए समान हैं। मत मतान्तर के लिए पृथक-पृथक नियम नहीं हो सकते। इस लिहाज से तो सब का धर्म एक ही हो सकता है, परन्तु जो प्रथकता दृष्टि आती है, वह सब पोलीटिक्स Political (राजनीतिक) बात है धर्म की आड़ में बढ़ते-बढ़ते यह बड़ा भयंकर रूप धारण कर लेती हैं और तरह तरह की सभा, संस्था, संगठन, कांग्रेस इत्यादि नामों से विख्यात हो जाती है। जिन महात्माओं में रजोगुण की प्रधानता होती है उनका कार्य क्रम उसी ओर झुक जाता है। वे धर्म के सात्विक अंश का पालन नहीं कर सकते। इसी तरह से जिनके अन्दर तामसी वृत्ति उभर आती है वे भारती काम और मार काट तक आरम्भ कर देते हैं। या उसके करने का उपदेश आरम्भ कर देते हैं। या ऐसे कहो कि जो ईश्वर को स्वीकार होता है वैसी ही बुद्धि महात्माओं की हो जाती है। यदि कोई महात्मा अपनी मन मानी और कर्म से ईश्वरीय इच्छा के विरुद्ध चलता है या चलने का प्रयत्न करता है, या तो उसको उस पद से गिरा दिया जाता है। या शरीर रहित कर दिया जाता है अर्थात् किसी न किसी तरह से मार कर या देश निकाला देकर उसका कंटक काटा जाता है। इसलिये ब्रह्मनिष्ट महात्मा हर समय ईश्वरीय इच्छा पर ही नज़र रख कर काम करते हैं। यदि वह संसार को नष्ट करना चाहें तो ईश्वर का संसार नष्ट कर

दें अर्थात् जैसा उस भगवान् को स्वीकार होता है, उसी मार्ग पर महात्मा जन स्वयं चलते हैं और सबको भी उसी का उपदेश देते हैं और प्रकृति का निश्चय किया हुआ मार्ग जनता के लिये ठीक है।

(८०) एक दिन इर्शाद हुआ कि बलवान् निर्बल को, बड़ा छोटे को, अमीर ग़रीब को, अधिकारी निराधिकारी को धमकाने, तङ्ग करने और दूसरे का अधिकार लेने के लिये आये हैं। देश, काल और पात्र के अनुसार यह बातें अधिक और न्यून अवश्य होती हैं। किन्तु ऐसा नहीं हो सकता कि बिल्कुल न हों। हर सज्जन पुरुष, अधिकारी और विशेष कर राजा का धर्म है कि इन बातों की रोक-थाम करता रहे। जिस राज्य में ये बातें जितनी कमी के साथ होंगी, उतना ही वह राज्य अच्छा समझा जायेगा। शाम, दाम, दण्ड, भेद से प्रबन्ध करने में राजा की कुशलता होती है। धींगा, धींगी ठीक नहीं समझी जाती। इनका प्रबन्ध करने में सबसे बड़ी वस्तु बल है। वह कई तरह का है। जिस तरह सांप और बिच्छू के काटने पर मंत्र से बहुत लाभ हो जाता है। इसी तरह से राज्य में भी मंत्री की आवश्यकता है। अच्छे मंत्री बिगड़ी हुई दशा को अच्छ कर देते हैं अर्थात् जन बल, धन का बल, सैना का बल, किला आदि जो इकट्ठे किये जाते हैं। इन में से किसी एक बल, या एक से अधिक बल मिला जुला कर लाभ उठाया जाये अर्थात् दूसरे का धन और देश जीत लिया जाये, या दूसरे देश के धन, माल, सामान आदि को बल पूर्वक लाया जाय। सात्विक भाव में यह क्रिया वर्जित है। राजस और तामस में प्रचलित है। दूसरा रक्षा के लिये सब प्रकार के यह बल इकट्ठे किये जाँय, ताकि कोई दूसरा हमारे राज्य को हानि न पहुँचा सके और उनका प्रयोग भी आवश्यकता के समय उसी काम के लिए किया जाये तो ऐसे बल को काम में लाना और संग्रह करना अनुचित नहीं समझा जाता। लेकिन कोई भी सूरत हो, अर्थ हो या रक्षा हो यह चीजें इकट्ठी करनी चाहिये। क्योंकि इनकी उपस्थिति के कारण से रक्षा अवश्य होती है। अन्य देशवासी या अपने देश के स्वार्थी या गुन्डे इन बलों को देखकर भयभीत रहते और उपद्रवों का साहस नहीं कर सकते। निर्बलता देखकर सबका साहस बढ़ जाता है। निर्बल को हर कोई आँखें दिखलाता है। राज काज को हाथ में लेकर जो बल का संग्रह नहीं

करते और कोरी बातों से काम निकालते हैं वे अन्त में धोखा खाते हैं और पछताते हैं। जो लोग बल के संग्रह करने में रुकावट करें या ऐसे कर्म करें जिससे राज्य बलहीन हो, तो समझ लेना चाहिये कि किसी स्वार्थ या मूर्खता से यह राज्य के शुभ चिन्तक नहीं। राज्य में और सब बातें अच्छी हों परन्तु बलहीन होने पर वह बातें उसकी रक्षा नहीं कर सकतीं और राज्य नष्ट भ्रष्ट हो जाता है।

(८१) एक मनुष्य के विषय में बात-चीत चली कि वह पढ़े लिखे आदमी हैं, कई भाषायें लिख पढ़ सकते हैं, परन्तु न तो वह कुछ लिखते हैं न पढ़ते हैं और न ही समाचार पत्रों में लेख छपवाते हैं। लेकिन जब कभी सत्सङ्ग में बोलने का अवसर पड़ता है तो ऐसा सुन्दर उपदेश करते हैं जिनसे पता चलता है कि इनको कितना अनुभव और शास्त्रों का ज्ञान है, परन्तु बिना पूछे बोलना पसन्द नहीं करते। यदि वह समाचार पत्रों में अपने विचार प्रकट करें, तो जनता को बड़ा लाभ होगा। उनको सामाजिक, धार्मिक और देशीय विचारों में बड़ा अनुभव है और हर धर्म के विषय में काफी जानते हैं और विचार भी बड़े अच्छे हैं।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि जिस प्रकार बिना तार के खबर पहुँचाने वाले यन्त्रों से खबरें भेजी जाती हैं और रेडियो के द्वारा सब स्थानों से सुनाई देती हैं। उसी प्रकार अपनी विचार धारा और मन की शक्ति और शुभ भावना वायु मण्डल में फैलाते रहते हैं। बहुत से मनुष्यों का ऐसा स्वभाव होता है कि जानते तो कम हैं; परन्तु प्रकट बहुत करते हैं। उन जैसे लोग बोलते कम हैं, कहते कम हैं, करते अधिक हैं,सुनाते कम हैं। उनका निश्चय है कि परमात्मा ने विशेष कार्य विशेष व्यक्तियों को सौंप दिये हैं और वह उन ही के हाथों से होने चाहियें। इसलिये शुभ विचार करने चाहिये। ऐसे विचार दूसरों के दिल और दिमाग़ तक पहुँच कर उनके सहायक होंगे। वे अगुआ बन कर काम करना और नेता बन कर आगे चलना अच्छा नहीं समझते।

(८२) एक सत्सङ्गी ने प्रार्थना की कि मेरी उन्नति के लिये अमुक व्यक्ति से सिफ़ारिश करवा दीजिये। श्री महाराज ने फ़रमाया कि संसार से जिस

क़दर ख़राबी फैली हुई है वह सब आपा धापी के कारण से है। जब मनुष्य अपने कुटुम्ब का और अपनी जाति का ही भला चाहता है और दूसरों की जड़ काटता है तो ख़राबी पैदा होती है। हर सरकारी कर्मचारी चाहे वह भारतीय ही क्यों न हो यही चाहता है कि उसका वेतन बढ़ जाय। अँग्रेजों को यह कहा जा सकता है कि दूसरी जाति के होने के कारण वे यही चाहते हैं कि जितना अधिक धन उनके हाथ लगे उतना ही ऐंठ लें। आवश्यकता से अधिक मिले तो अपव्यय पर लगायें और खूब मौज़ उड़ावें। परन्तु भारतीय उन्नति चाहते समय इतना नहीं सोचते कि वेतन आता कहाँ से है। यह जनता से कर रूप से प्राप्त की जाती है। जनता का लाखों का तो वर्णन ही क्या, करोड़ों की संख्या ऐसी है जिनको बिना दाल, साग के केवल नमक रोटी ही मिलती है और वह भी बजाय दोनों समय के केवल एक समय और बहुत सी संख्या ऐसी भी है कि जिनको एक समय भी पेट भर कर नहीं मिलता। कपड़ों की यह अवस्था है कि कुर्ता यदि साबित है तो धोती पाजामा फटा हुआ। नीचे का वस्त्र ठीक है तो ऊपर का फटा हुआ होगा। कितने दुख की बात है कि कई स्त्रियों की धोती लहंगा और पाजामा इतना जीर्ण होता है कि उनका शरीर दिखलाई देता है और राज्य कर्मचारी रु० को ऐश और अपव्यय में उड़ाते हैं जिस गाढ़े को पहन कर जनता गुज़ारा करती है उससे राज्य कर्मचारी का शरीर छिलता है। उनके लिये और उनकी स्त्री बच्चों के लिये बनारसी, दरयाई, पशमीना, कीमख़ाब, कनावेज़, अतलस और रेशम होना चाहिये और सवारी के लिये टम-टम, फिटन और मोटर के बिना जमीन पर पाँओं नहीं धरा जाता। बहुत से बादशाह और राजा के विषय में लिखा है कि वह राज धन को अपने काम में नहीं लाते थे। सुलेमान बादशाह झोली बना कर उससे खाने का काम चलाते थे। मुगल बादशाह कुरान लिख कर और टोपी बना कर उससे निर्वाह करते थे। राजा विक्रमाजीत के विषय में भी ऐसा सुना है कि वह भी राजकोष से धन नहीं लेते थे। भौंकते कुत्ते का मुँह रोटी डाल कर बन्द किया जा सकता है। इसी तरह अँग्रेज भी भारतीय कर्मचारियों का वेतन बढ़ा कर अपना घर और अर्थ पूर्ण करते हैं। भारतीय अधिकारी जो सब भेदों से परिचित हैं चुप बैठे रहते हैं। जिस काम को पहले एक अधिकारी अच्छी तरह करता था, अब उसी काम के लिये कई-कई आसामिआँ बढ़ा दी गई हैं। काम का यह हाल है कि और भी

खराब हो रहा है। जब एक अफ़सर था, तो अपने उत्तरदायित्व के विचार से काम अच्छी तरह से करता था। अब अधिक हो जाने से उत्तरदायित्व का निश्चय करना कठिन हो जाता है। ऐसी अवस्था में उन्नति के लिये कहना कोई न्याय नहीं। दूसरे का अधिक वेतन देख कर उन्नति की इच्छा की जाती है। परन्तु अधिकतर मनुष्यों की अवस्था अपने से अधिक गिरी हुई देख कर किसी का मन नहीं चाहता, कि कुछ इनको भी मिल जाये, या टैक्स कम कर दिये जायें। यदि टैक्स की एक भी रक़म वसूल न हो तो ग़रीब की टूटी चारपाई और टूटे तवे तक के नीलामी की सीमा आ पहुँचती है और उसको पृथ्वी पर सोना और फूटे ठीकरे पर रोटी पका कर खानी पड़ती है। जो कुछ वेतन आपको मिल रहा है आपकी आवश्यकता को पूरा करने के लिये पर्याप्त है। बल्कि हर महीने कुछ न कुछ बच सकता है। इसलिये सन्तोष और शुक्र के साथ निर्वाह करो। सत्सङ्गियों को धैर्य्य और सन्तोष के साथ अपनी आवश्यकताओं को कम करना है। यदि आवश्यकताओं को बढ़ाता जायेगा तो तृष्णा मरते दम तक बढ़ती जायेगी। चोरी, झूठ, फ़रेब, ग़बन और रिश्वत यह सब ही अधिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये होते हैं। यह अपव्यय में सम्मिलित है। लाटरियाँ इसलिये लगाई जाती हैं कि बहुत सा धन एक साथ आये ताकि खूब मौज़ मेला करें। सट्टे का भी यही हाल है। स्त्रियों को गहने कपड़ों की फ़रमाईश की तो कोई सीमा नहीं। सेर भर से कम बोझ की बेड़ी और हाथ-कड़ी से कैदी तङ्ग आ जाते हैं, परन्तु स्त्रियाँ सेर भर के कड़े, सेर भर की पायजेब और भी कई ज़ेवर इतने-इतने वज़न के पहन कर बोझों से नहीं मरतीं, बल्कि खुशी से इस वज़न को उठाती हैं।

(८३) एक दिन इर्शाद हुआ कि इस शरीर को ठीक तरह से चलाने के लिये जिस क़दर विचार की आवश्यकता है वह दिमाग़ करता है। जिस प्रकार पुरुषार्थ की आवश्यकता है वह हाथ करते हैं और जहाँ तक धारण करने की आवश्यकता है वह कमर करती है। जहाँ तक घुमाने-फिराने की आवश्यकता है वह पैर करते हैं। जो अन्न खाया जाता है और उससे जो रस बनता है उसमें नाना प्रकार की पालन शक्ति विद्यमान रहती है। उस शक्ति से जिस भाग की मस्तिष्क को आवश्यकता है, वह भिन्न होती है। इसी प्रकार हाथ, कमर,

पैर और शरीर दूसरे भागों को ले लेते हैं, परन्तु उतना ही जितनी उनको आवश्यकता होती है। यदि किसी अङ्ग को अधिक भाग पहुँच जाये तो वह उसे लौटा देता है या बाहर निकाल देता है। यदि बाहर न निकाल सके तो वह उस अङ्ग में ख़राबी या रोग पैदा कर देता है और वह ख़राबी दूसरे अङ्गों में भी फैल जाती है। इसी तरह देश प्रबन्ध और राज-काज में व देश के संचालन में सब मनुष्यों को वर्तना चाहिये। जो बुद्धिमान दिमाग़ वाले हैं, वह सोच विचार कर काम करें। जो पुरुषार्थी और बाहूबल वाले हैं, वे देश की रक्षा करें। जो खेती-बाड़ी, पशु रक्षा और सेवा आदि की योग्यता रखते हैं अपने धर्म को ऐसे ही मिल कर करें जैसे शरीर के अङ्ग करते हैं और देश की सम्पति से अपनी-अपनी आवश्यकतानुसार समानता से लाभ उठायें। जिसको रेशम और मख़मल की आवश्यकता है, उसको वह भोगे। जिसे सवारी शिकारी की आवश्यकता है उसको वही दी जाये। जिसको धन की आवश्यकता है, उसे धन दे दिया जाये। जिनको अन्य वस्तुओं की आवश्यकता है, उनको वे मिलें, परन्तु केवल आवश्यकतानुसार ताकि काम चलता रहे। यदि अधिक संग्रह हुआ तो देश के प्रबन्ध में बाधा डालेगा। जैसे अधिक अन्न शरीर को हानि पहुँचाता है।

(८४) एक सत्सङ्गी ने प्रार्थना की, कि सरकार ने प्रजा को ऐसा बाँध दिया है कि मामूली से मामूली हगने-मूतने तक की बातों का अधिकार भी नहीं रखा। सब बातें राज्य के आधीन हैं। इसी कारण से स्वराज्य प्राप्ति का आन्दोलन हो रहा है। श्री महाराज ने फ़रमाया कि स्वराज्य बड़ा गम्भीर शब्द है। मनुस्मृति के अध्याय १२ श्लोक ९१ में स्वराज्य शब्द आया है।

सर्वभूतेषु चात्मनं सर्व भूतानि चात्मनि।
समं पश्यन्नात्मयाजी स्वराज्य मधिगच्छति॥

जिसका अर्थ यह है ब्रह्मत्व, अर्थात् ब्रह्म स्वरूप से सब में व्यापक हूँ। स्थावर जंगम सब जीवों में मैं ही आत्मरूप हूँ और परमात्मा के परिणाम से सब जीव परमात्मा में ही समानता से हैं यह जानता हुआ आत्म का यजन करने वाला स्वराज्य अर्थात् ब्रह्मत्व (मोक्ष) को प्राप्त होता है।

अपनी इन्द्रिय और अन्तःकरण को वश में करना ही निवृत्ति मार्ग में सच्चा स्वराज्य है। प्रवृत्ति में अपनी गृहस्थी, कुटुम्ब, धर्म और देश आदि के

सब काम अपने अधिकार में होने का नाम स्वराज्य है। जहाँ अपना राज्य होता है वहाँ अधिक से अधिक देश सम्बन्धी काम प्रजा के ऊपर छोड़े जाते हैं, कि जैसा तुम्हारा मन चाहे और जिसमें तुम्हारी सभ्यता और हित हो वैसा करो। केवल थोड़े काम ऐसे होते हैं जिन के व्यक्तिगत करने में बहुत कष्ट समझा जाता है जैसे देश की रक्षा आदि। यह राजा अपने हाथ में रखता है। पर राज्य में राजा को यहाँ तक भय होता है, कि कहीं हमें राज्य से हटा न दिया जाये। इसलिए प्रजा को निःशस्त्र कर देता है और सब काम पढ़ाई, लिखाई, मुक़दमा-मुआमला तक अपने हाथ में ले लेता है और अपने कर्मचारी रख कर इन भाड़े के टट्टुओं से जैसा चाहता है वैसा कराता है। जिस को मरवाना चाहे उसके मारे जाने की आज्ञा अधिकारी देते हैं। जिस को बन्दी गृह भिजवाना हो उसको झूठमूठ मुक़दमा बनाकर कारागृह में डलवा देते हैं, यहाँ तक कि शादी-विवाह के काम भी राज्य की आज्ञा और सम्मति के अनुसार होते हैं। माता-पिता को अपने बेटे-बेटी के विवाहने तक का अधिकारी नहीं रहता। पहले राज्य में सूचना दो, जब निश्चित समय व्यतीत हो जाये तब प्रमाण-पत्र मिलते हैं। "मियाँ बीबी की राज़ी, तो क्या करेगा काज़ी।" का उदाहरण व्यर्थ सिद्ध होता है। वास्तव में राजा तो एक संरक्षक है। संरक्षक को जो-जो काम जिस-जिस तरह करने के लिये अधिकार दिया जाता है. भले संरक्षक उसे उस तरह से ही करते हैं मनमानी नहीं करते। इसी से राजा भी संरक्षक है उसको भी जो काम प्रजा सुपुर्द करे वही प्रजा की इच्छानुसार और हित के लिए करने चाहिये। प्रजा को पैरों तले रौंद कर राजा को अपनी मनमानी नहीं करनी चाहिये। यदि इस देश में संगठन और सत् को नष्ट करने के लिये इतने सामान खड़े कर दिये हैं कि मिल कर कुटुम्ब तक भी नहीं रह सकते। जो मनुष्य पृथक-पृथक रहते हैं तो आमदनी का कर अपनी आमदनी पर लगता है। सम्मिलित परिवार चाहे कितने ही आदमी काम करें सब आमदनी एक ही मनुष्य की समझी जा कर उस पर कर लगा दिया जाता है इस कारण बहुत से गृहस्थी जो सम्मिलित रहते हैं, और एक चूल्हे पर खाना पकता है, वह भी कर से बचने के लिये अस्थाई रूप से पृथक-पृथक होना प्रकट करते हैं। कई घरानों में स्त्री-पुरुष, बेटा, बहू, तक इस अनुचित कर से बचने के लिये पृथकता दिखाते हैं। प्रजा में हिन्दू, मुसलमान और फिर हिन्दुओं में छूआछूत। मुसलमानों में शिया,

सुन्नी और उनमें भी सिख, पंजाबी, सरहदी, मुसलमान, बँगाली, बिहारी, मदरासी आदि का बखेड़ा ऐसा खड़ा हो गया है कि राज्य में तो एकता की चर्चा करना ही व्यर्थ है, पास बैठने तक में एक दूसरे से घृणा करते हैं। जिस प्रकार कुत्ते को सुसकारने से वह झट झपट पड़ता है, उसी प्रकार हिन्दू मुसलमान पर, मुसलमान हिन्दू पर, शिया सुन्नी पर, और सुन्नी शिया पर टूट पड़ते हैं। जरा भी किसी को विचार नहीं होता कि हम करते क्या हैं ? टुकड़ा रोटी के लिये कुत्ता अपने स्वामी के पैरों में लोटता है और पीठ पर थपकी मिल जाने से उछलता कूदता है। इसी तरह भारतवासियों की दशा है, कि राय साहिब और खान साहिब की उपाधि मिल जाने से, पेट भर रोटी के लिये नौकरी मिलने से, जो चाहो उन से करवा लो। कई, कई तो इतने गिर गये हैं कि बहिन, बहू, बेटियों तक को अधिकारियों से बचा नहीं सकते और न उनके मिलाने में लज्जा करते हैं। इसलिये स्वराज्य तब होता है जब हम सब देश वासियों को अपना समझें बल्कि सारी पृथ्वी भर के मनुष्यों और जीवों को अपना स्वरूप विचार कर के सब के हित में अपना हित समझें। यह नहीं कि—अन्धा बाँटे रेवड़ी, फिर-फिर अपनो को दें।

(८५) एक व्यक्ति दर्शनों को आये बीमार से थे। श्री महाराज ने कुशल पूछी तो बोले कि कब्ज तो सदा रहता है और कभी-कभी पेशाब के रुक जाने से पेट फूल जाता है, दिल भी घबराता है दवा खाते-खाते तंग आ गया हूँ, कोई नुसखा या इलाज बतलाईए। श्री महाराज ने फरमाया कि दवा आदि तो डाक्टर और हकीम ही अच्छी तरह से जानते हैं हम तो इतना कह सकते हैं कि मनुष्य शरीर में दो मुख्य नाड़ियाँ हैं, एक खाने की जो गले से लेकर गुदा तक पहुँचाती है उस के खुलने और बंद होने का सम्बन्ध नाक के दाहिने नथुने से है। जिसको सूर्य सुर या पिंगला नाड़ी कहते हैं। जब कभी पेट में खराबी हो, बदहजमी हो दर्द हो या भूख बन्द हो जाये या सर्दी से कोई तकलीफ हो जाये तो बाँये नथुने को बन्द करके दाँये नथुने से ही कुछ देर स्वास लें। पखाना जाते समय भी इसी तरह सुर के चलाने से दस्त साफ हो सकता है। इस सुर के चलने से भोजन भी ठीक पचता है। इसी तरह से दूसरी मुख नाड़ी गले से ले कर पेशाब की जगह तक चली गई है। उस के खुलने और बन्द होने का

सम्बन्ध नाक के बायें नथुने से है जिसको चन्द्र सुर या ईड़ा नाड़ी कहते हैं। जब कभी पेशाब में रुकावट हो या गुर्दे की कोई शिकायत हो, या गर्मी से कोई बाधा हो तो दायें नथुने को बन्द कर के थोड़े समय बायें सुर से स्वांस लेता रहे तो पेशाब खुल कर आ जाता है। इसी सुर के चलते समय पानी पीने से पानी ठीक पचता है और पूरा लाभ शरीर को पहुँचाता है, जब दोनों नथुनों से बराबर स्वाँस चलता है उसको सुखमना कहते हैं। उस समय इन दोनों नाड़ियों के कर्म बन्द होते हैं। इसलिये सुखमना चलते समय भोजन करने, या पानी पीने, टट्टी या पेशाब करने से हानि होती है, काम ठीक नहीं होता। कुछ दिन इन बातों का ध्यान रख कर आजमाइये सम्भव है कि वर्त्तमान पीड़ा कम हो जाये और अधिक समय अभ्यास करने से दूर भी हो जाने की सम्भावना है।

(८६) एक साहब ने अर्ज़ किया कि जवानी दीवानी होती है। इस पागलपन में मैंने दूसरे वर्ण की स्त्री से सम्बन्ध कर लिया। सन्तान ऐसी अयोग्य निकली है कि कुछ कह नहीं सकता। बड़ा परेशान हूँ कोई बुराई ऐसी नहीं जो लड़के लड़कियों में न पाई जाये। हैरान हूँ क्या करूँ ?

श्री महाराज ने फ़रमाया तुम्हारा किया तुम्हारे आगे आ रहा है और अपने किये का कोई उपाय नहीं। आज कल ऐसी वायु चल रही है कि शास्त्र की मर्यादा को जड़ से उखाड़ने और उसके विपरीत काम करने को ही परम धर्म समझते हैं। उन के मत में शास्त्र का वचन तारने वाला नहीं बल्कि डुबोने वाला है इसलिए उस के विपरीत करते हैं। भगवद्गीता में वर्णसंकर सन्तान की बुराइयों का विचार कर के अर्जुन जैसे महारथी के शरीर में पसीना निकल आया और थर-थर काँपने लगा था। मनुस्मृति के आ० ८ श्लोक ३५३ में लिखा है—

तत्समुत्थों हि लोकस्य जायते वर्णसंकरः।
येन मूल हरोऽधर्मं सर्वनाशाय कल्पते॥

भावार्थः—क्योंकि पर-स्त्री गमन से संसार में वर्णों का मेल हो जाता है, जिस से मूल का नाशक अधर्म सर्वस्व नाश के लिये होता है। इस में यह प्रमाण है—

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यक् आदित्यमुपतिष्ठते।
आदित्यात जायते वृष्टिः वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः॥

अर्थात् वर्णसंकर यजमान को यज्ञ का फल नहीं होता और सूर्य को आहुति नहीं पहुँचती। आहुति के न पहुँचने पर वर्षा नहीं होती, वर्षा के न होने से संसार का सर्वनाश होता है।

अनार्यता निष्ठुरता क्रूरता निष्क्रियात्मता।
पुरुषं व्यञ्जयन्तीह लोके कलुषयोनिजम्॥ अ० १० श्लोक ५८

इस जगत में शङ्कर जाति में पैदा हुये मनुष्य को दुर्बलता निष्ठुर स्वभाव, क्रूरपन और विहति कर्म को न करना यह ही सब प्रकट कर देते हैं। यह वर्णसंकरों की पहिचान है। यस्मात्—

पित्र्यं वा भजते शीलं मातुर्वोभयमेव वा।
न कथंचन दुर्योनिः प्रकृत्तिं स्वां नियच्छति॥ अ० १० श्लोक ५९

पूर्वोक्त दुष्ट योनि मनुष्य अपने पिता के व माता के अथवा दोनों के स्वभाव को प्राप्त होता है। किसी प्रकार अपनी प्रकृति को नहीं छिपा सकता। वेद शास्त्र और अपने धर्म से विरोध करता, माता, पिता, श्राद्ध, अवतार में प्रेम नहीं करता।

कुले मुख्येऽपि जातस्य यस्य स्याद्योनि संकरः।
संश्रयत्येवतच्छीलं नरोऽल्पमपि वाहु॥ अ० १० श्लोक ६०

मुख्य कुल में भी उत्पन्न हुये जिस मनुष्य का संकरवर्ण हो जाय वह मनुष्य अल्प या अधिक अपने पैदा करने वालों के स्वभाव को प्राप्त होता है।

यत्र त्वेते परिध्वंसा जायन्ते वर्ण दूषकाः।
राष्ट्रिकैः सह तद्राष्ट्रं क्षिप्रमेव विनश्यति॥ अ० १० श्लोक ६१

जिस देश में वर्णसंकर से वर्णों को दूषित करने वाले उत्पन्न होते हैं वह राज्य राजनिवासियों के साथ शीघ्र ही नष्ट हो जाता है, तिस से राजा अपने अपने वर्ण धर्म से भ्रष्ट की मरने के बाद क्या गति होती है। वह सब मनुस्मृति में लिखा है और जो जीते जीते दुख होता है। वह संक्षेप में अ० १२ के श्लोक ७९ में है।

(८७) एक सतसङ्गी ने पूछा कि होली का त्यौहार तो सरहद की तरफ मनाया नहीं जाता देहली, आगरा और पूर्व देश में बड़े उत्साह से मनाया जाता है, यह किस तरह से प्रचलित हुआ इसका कारण क्या है ? श्री महाराज ने फ़रमाया कि इस त्यौहार में ज्ञान और भक्ति का रस भरा हुआ है। हिरण्यकश्यप कहता था कि जब हम ब्रह्म हैं तो अपने को ब्रह्म क्यों न मानें, ईश्वर को मानने की क्या आवश्यकता है। उसका पुत्र प्रह्लाद कहता था जो काम उत्तरोत्तर होता है वह ठीक है। पहले भक्ति ही मुख्य है इससे अन्तःकरण शुद्ध हो कर तद्‌रूप हो जाता है और जो अवस्था उसके इष्टदेव की होती है उसको प्राप्त होता है। जिस तरह से आग, पानी, हवा और शस्त्र उसके इष्टदेव के शरीर को न जला सकते हैं, न सुखा सकते हैं और न काट सकते हैं इसी तरह से तद्‌रूप अवस्था में उसके भक्त पर भी कोई असर नहीं कर सकते। इसका निर्णय करने के लिये बाप ने बेटे की तरह-तरह की परिक्षायें लीं। इस सिलसिले में प्रह्लाद को एक बार लकड़ियों के बीच बैठा कर आग लगाई तो प्रह्लाद की बूआ होली को अपने भतीजे पर तरस आया कि व्यर्थ जल कर मर जायेगा। भला आग से भी कोई बचा है। उसके पास किसी कीमयाबी तरकीब यानी विज्ञान (साइन्स) से बनाई हुई एक ऐसी (Fire proof) चादर थी, जिस पर आग कोई असर नहीं कर सकती थी, उसको ओढ़ कर और प्रह्लाद को गोद में ले कर वह लकड़ियों के ढेर में बैठ गई। लकड़ी के ढेर में आग लगादी गई, दैवयोग से बूआ और उसकी चादर तो जल गई; परन्तु प्रह्लाद पर किंचित भी आँच न आई। इस महिमा को देख कर कि आग ने प्रह्लाद को नहीं जलाया। सब ने उसकी भस्मी को मस्तिष्क से लगाया। असुर और प्रतिपक्षियों के सर पर वह धूल डाली और उनकी खिल्ली उड़ाई गई कि देखो विज्ञान से बनी हुई चादर और उसके भरोसे पर आग में बैठने वाली बूआ होलिका स्वाहा हो गई और भक्त प्रह्लाद जीवित निकल आया। इस अत्यन्त खुशी के कारण यह त्यौहार मनाया जाता है। जहाँ होली का समय आया माघ की पूर्णमाशी को अरिण्ड का पेड़ या और कोई पेड़ पृथ्वी में गाड़ कर उसके चारों तरफ लकड़ी कण्डे जमा करते रहते हैं। फाल्गुन की पूर्णमाशी को होली जलाते समय इस बीच में गड़े हुए वृक्ष को जो प्रह्लाद जी का चिह्न है निकाल कर फिर आग जलाते हैं। गोया प्रह्लाद जी बच गये और होली जल कर ख़ाक हो गई।

(८८) एक दिन इर्शाद हुआ। १. उचित समय पर ठीक काम करना बड़ी कला है। २. धन का मूल उसके ठीक प्रयोग में है, न कि उसकी प्राप्ति और रक्षा में। ३. मानसिक बढ़ाई बहुत विद्या से नहीं होती, परन्तु अच्छी विद्या से होती है। ४. काँट-छाँट से जवाहरात का जौहर (सौन्दर्य) प्रकट होता है, और विपत्ति सहने से मनुष्य पूर्ण होता है। ५. हर मनुष्य बुद्धिमान पैदा नहीं होता, परन्तु बुद्धिमानों के चरित्र और लेख पढ़ कर बुद्धिमान बन सकता है। ६. समय सब से बड़ा दाता है जो इसको नहीं भूलता और न उसका त्याग करता है न उसको व्यर्थ गँवाता है उसे यह निहाल कर देता है। ७. बुरी संगति अच्छे चाल-चलन को बिगाड़ देती है। ८. जब कितने ही काम करने हों, तो प्रत्येक काम करने के लिये पूरा समय और पूरा परिश्रम करना चाहिये। ९. गुणवान अपने गुण से सुखी रहता है मूर्ख दूसरों की प्रशंसा से सुखी रहता है। १०. कुछ न कुछ पढ़ने का प्रयत्न करो, यह पहला पग है तुम्हें ऊँचे से ऊँचे पद तक ले जायेगा। ११. अपने पड़ोसी पर विजय पाने का सच्चा मार्ग मेल-मिलाप, और कृपा है न कि बल और अत्याचार। १२. मनुष्य अनन्त से प्रकट हुआ है, इसलिये इसकी इच्छा भी अनन्त हैं। बहुत थोड़े ऐसे बुद्धिमान होते हैं जिनको युक्ति-पूर्वक मार्ग मिल जाता है।

(८९) एक दिन सरहद के गाँव में डाका पड़ा, कई हिन्दुओं को लूटा और पकड़ कर ले गये, परन्तु जो सत्संगी वहाँ बसते थे उनकी कुछ हानि नहीं हुई। दैवइच्छा से बच गये, तो वह लोग श्री महाराज की सेवा में उपस्थित हुए और प्रार्थना की, कि आपके आर्शीवाद से हम लोग बच गये। धन्यवाद कहने और दर्शनों के लिये उपस्थित हुए हैं। श्री महाराज ने फ़रमाया—

"कर्म प्रधान विश्व कर राखा, जो जस करे सो तस फल चाखा।"

दुख-सुख सब कर्म से प्राप्त होता है। मनुस्मृति के अ० १२ श्लोक ७९ में लिखा है—

बन्धु प्रिय वियोगांश्च संवासं चैव दुर्जनैः।
द्रव्यार्जनं च नाशं च मित्रामित्रस्य चार्जनम्॥

बन्धु और प्यारे मित्रों के वियोगों को, दुर्जनों के साथ सहवास को, द्रव्य के संचय में परिश्रम और द्रव्य के नाश होने से दुख को और बड़ी कठिनता से

मित्र की प्राप्ति और शत्रु की प्रकटता को, विषयासक्त मनुष्य प्राप्त होते हैं।

(६०) एक दिन किसी साहब ने अर्ज़ की, कि आज कल बड़ा अँधेर मचा हुआ है, जिस ओर देखो कुकर्म हो रहे हैं कोई रोकने या पूँछ ताछ करने वाला नहीं इस का कारण बतलाइये ? श्री महाराज ने फ़रमाया कि राज्य के चार धर्म कहे हैं। साम, दाम, दण्ड, भेद। इन में से दण्ड के न करने से अथवा अनुचित करने से इतनी बातों की सम्भावना हो सकती है। (१) दूसरे वर्ण की स्त्री संग से वर्णसंकर की पैदाइश (जन्म) (२) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष हीन फल जिससे सब शास्त्रों के नियम का नष्ट हो जाना। (३) चोरी तथा साहस आदि से दूसरे का अपकार करने से सब लोगों में उपद्रव उत्पन्न होना। (४) बलवान दुर्बल के धन दारा को ले लेते हैं। (५) हरे भरे वृक्षों को जो केवल छाया के लिये लगाये गये हैं जहाँ-तहाँ काट डालना। (६) नीचों का मुखिया बन जाना।

(६१) एक दिन इर्शाद हुआ कि पाँच प्रकार का पुरुषार्थ राजा को चाहिए। (१) न जीती हुई भूमि को जीतने की इच्छा करे। (२) जीती हुई की यत्न से रक्षा करे। (३) रक्षा की हुई को बढ़ाये। (४) बढ़े हुये पात्रों में दान करे। (५) दुष्टों को दण्ड दे कर देश की रक्षा करे।

(६२) एक दिन इर्शाद हुआ कि प्रत्येक वस्तु अपनी वास्तविकता की ओर जाती है। जैसे बीज से पौदा, पेड़, पत्ते, डाल, फूल और फल से फिर बीज रूप हो जाता है तो पेड़ की उत्पत्ति का एक दौर पूरा हो जाता है। यह दौर एक दम से नहीं हो जाता बल्कि धीरे-धीरे एक के बाद एक दूसरी अवस्था में परिवर्तित हो जाता है। पहले डाल पत्ते दिखाई देते हैं, बीज का पता भी नहीं चलता परन्तु जब फल पक जाता है तो वही स्वांगी बीज, जिस ने पेड़ के अन्दर नाना प्रकार के स्वांग भरे थे, बीज रूप धारण कर के प्रकट हो जाता है। बीज क्यों फूटता है ? अपने गुप्त गुणों को प्रकट करने के लिये। यदि बीज न फूटता तो कठोर रहता, कोमलता, सुगन्धी, रस, मिठास आदि गुण कैसे प्रकट होते। यह अवकाश स्वभाव से होता है। आनन्द का स्वभाव फैलने का है। रूप के लिहाज से बीज पेड़ से

छोटा है, परन्तु गुणों में पेड़ से किसी प्रकार कम नहीं। वैसे ही नाना पेड़ बना सकता है। इसी तरह से आत्मा नाना प्रकार की सृष्टि धारण करने के पश्चात् जब अपने आत्म स्वरूप में लीन हो जाता है तो सृष्टि की उत्पत्ति की इच्छा पूरी हो जाती है। पेड़ की उत्पत्ति, स्थिति के मध्य में कभी वह फूलता है, कभी कलम होती है, कभी डालियाँ काटी जाती हैं। इसी प्रकार मनुष्य जीवन में भी सुख-दुख होते रहते हैं। कलम होने से जैसे अधिक फल लगता है। इसी तरह पाप कर्मों के फल से मनुष्य को दुख उठाने पड़ते हैं तो पाप का प्रायश्चित हो जाता है और उसकी बुद्धि निर्मल हो कर आत्म स्वरूप और भगवान् के चरणों में अधिक लगती है।

संसार भी एक जीवन वृक्ष है जिस की डालें लोक लोकान्तर में फैल रही हैं इसका अन्तिम फल मनुष्य शरीर है। इसलिए इसकी बड़ी महिमा है इसको सब से उत्तम माना गया है। जब तक यह आत्मा की ओर झुकता नहीं तब तक जीव रूप है जब आत्म-ज्ञान हो जाता है तो सारा ब्रह्मांड उसके सामने कोई नाम रूप नहीं रखता, उसके अन्दर अनन्त आत्मा का प्रकाश है। इसके कारण से वह अपनी जीव अवस्था को अधूरा समझता है और अपने आप को महा दुखी मानता है। यदि उसको अपने अनन्तपने का पता न होता तो अपने छोटेपने को जान ही नहीं सकता, इसे दीनता, मूढ़ता और पापी होने की समझ ही नहीं हो सकती थी। आत्म जागृति होने पर अपनी आत्मशक्ति को जानने लगता है और पशुओं की तरह वर्त्तमान में नहीं फँसता बल्कि भूत भविष्य का विचार उसको हो जाता है। भय, मैथुन, अहार, निद्रा, सब जीवों में पाये जाते हैं। विचार भी सम्भव है कि और जीवों में किसी सीमा तक हो, परन्तु मनुष्य के मस्तिष्क से निकली हुई चीजों में जितना वह प्रकट होता है इस विषय में प्रकट होता है। मनुष्य बुद्धि के सामने सम्पूर्ण प्रकृत्ति का सिर झुका हुआ है। दूसरे जीव अपनी अपनी अवस्था में प्रसन्न रहते हैं, अपने से न्यून अधिक का विचार उनको नहीं रहता केवल मनुष्य ही है जो अपनी वर्त्तमान स्थिति से अधिक की चाहना करने वाला दीख पड़ता है। संसार भर के सब से बड़े दुखों में मृत्यु का दुख सब से अधिक है। समय से पहले ही उसको लगता है, कि मृत्यु के पश्चात् जो गति होगी उसकी चिन्ता बहुधा जीवन में ही करने

लग जाते हैं, और जीवों को तो खाने-पीने का सामान यदि उपलब्ध हो जाये तो अत्यन्त प्रसन्न दीख पड़ते हैं—परन्तु मनुष्य का सन्तोष इतने से नहीं होता। उठते हुये पौदे के रग-रेशों में यही इच्छा होती है कि मैं किसी प्रकार बीज तक पहुँच जाऊँ और वास्तिवकता से मिल कर फिर वही हो जाऊँ। वह डाल-पात के भेदों से दौरा कर, अपने स्वरूप को फिर प्राप्त करता है।

(९३) एक दिन एक साहब ने पूछा कि परमात्मा की प्रसन्नता जिस मनुष्य के ऊपर हो उसके क्या चिन्ह हैं? श्री महाराज ने फ़रमाया कि उसकी कृपा के चिन्हों की क्या सीमा है। जिस पर परमात्मा प्रसन्न हो उसकी बढ़ाई और महिमा का क्या पार है। साधारण बातें यह होती हैं। (१) मीठा स्वभाव (२) पड़ोसी का प्यारा (३) वाणी वश में होती है, कम बोलता है। (४) मीठे वचन बोलता है। (५) दूसरों के दोषों पर परदा डालता है। (६) अपनी आवश्यकता की वस्तुओं में काफ़ी सीमा तक कमी करता है। (७) अधिक धन संचय नहीं करता। (८) कम सोता है। (९) क्रोध कम आता है, आये भी तो शीघ्र उतर जाता है। (१०) दूसरों को अच्छी सम्मति देता है। (११) बीमारी, दुख, तकलीफ, कठिनाइयां उस पर बहुत आती हैं, परन्तु वह सहनशील हो कर सन्तोष से उनको झेलता है। (१२) निन्दा होने से न डरता है, न बुरा मानता है। (१३) आलसी नहीं होता और न बेकार रहता है, यदि काम न हो तो भजन ध्यान करता है। (९४) एकान्त पसन्द करता है। (१५) समानता से बर्तता है किसी बात की अति उस को पसन्द नहीं। (१६) धर्म और परिश्रम की कमाई खाता है। (१७) परमात्मा से पूर्ण प्रेम करता है। (१८) बहुत सी विद्या बिना सीखे उसको आ जाती है। (१९) भोजन, वस्त्र की चिन्ता नहीं करता भगवान पर पूरा विश्वास होता है। (२०) अपने दोषों पर सदा दृष्टि रखता है और उनको त्यागने का यत्न और पुरुषार्थ करता है। (२१) दीन, दुखी, मोहताज, धर्मात्मा और भले मनुष्यों से दया और मित्रता का बर्ताव करता है। (२२) अपनी शक्ति अनुसार दान देता है। (२३) उससे मनुष्यों की बहुत सी आवश्यकताएं पूरी होती रहती हैं। (२४) वह अपने तन और धन को ईश्वर की निधि समझता है।

(९४) एक दिन इर्शाद हुआ कि भजन का पूरा प्रभाव तब होगा, जब

नेक कमाई खायेगा नेक कमाई ही और कामों में लायेगा। बड़ों की, माता पिता, और गुरु की आज्ञा मानेगा। बल्कि और सब से माता का दुगना सन्मान करेगा। परोपकार में समय लगायेगा, चाहे वह पूरा हो या न हो।

(९५) एक दिन इर्शाद हुआ कि जिस के पास विद्या हो, परन्तु विनय न हो वह मूर्ख है। विद्या वह कहलाती है जिससे मनुष्य ईश्वर परायण हो जाये। जिसने विद्या को धन जोड़ने और वाद-विवाद में लगा दिया उसने सौना त्याग कर मिट्टी बटोर ली।

(९६) एक दिन किसी ने अर्ज़ किया कि पड़ोसी से व्यवहार करने में किस-किस बात का ध्यान रखना चाहिये। श्री महाराज ने फरमाया। (१) यदि उस की आवश्यकता सच्ची हो और वह ऋण माँगे तो दे देना चाहिए। (२) यदि सहायता चाहे तो पड़ोसी की सहायता करनी चाहिए। (३) पड़ोसी का सम्मान करना चाहिये। (४) बीमार हो तो सेवा करना चाहिए। (५) यदि उस की मृत्यु हो जाय तो उसकी अर्थी के साथ जाना चाहिए। (६) यदि धर्म व्यवहार से कष्ट में फँस जाँय तो उस का साथ देना चाहिए। (७) उस के घर में खुशी हो तो बधाई देनी चाहिए। (८) उसकी आज्ञा के बिना अपना मकान इतना ऊँचा नहीं बनना चाहिए जिससे उस के घर की हवा, रोशनी और धूप बिल्कुल रुकजाए। (९) यदि कोई अच्छा भोजन और फल प्राप्त हो,तो उसमें से पड़ोसी को बाँट देना चाहिए या ऐसे छुपा कर खाना चाहिए कि उस के बच्चे देखकर न मचलें। (१०) पड़ोसी के दोष क्षमा करना चाहिए।

(९७) एक आदमी ने अर्ज किया कि मैं बहुत समय से प्रति दिन प्राणायाम व नाम का जाप करता हूँ, किन्तु चित्त दुनियाँ-दारी में ही लगा रहता है।

श्री महाराज ने फरमाया कि कोई (धनवान) रात के समय अपनी नाव पर नदी यात्रा करना चाहते थे, उन्होंने अपने सेवकों को सिखा दिया, कि हम तो नाव में सोते हैं तुम आधी रात को लँगर खोलकर चप्पुओं से चलाना। पानी झकोले लेगा नाव हिलेगी नदी यात्रा में डूबने का डर होता है इसलिए तुम राम राम, सीताराम बोलते जाना और चप्पू चलाते जाना। रईस तो पड़ कर

सो गये और सेवकों ने आधी रात से चप्पू चलाना शुरु कर दिया। नाव हिलने लगी, पानी झकोले लेने लगा और वे राम राम, सीताराम करने लगे। इसी तरह करते करते सुबह हो गई। रईस ने बाहर की ओर झांका तो देखा कि नाव तो जहाँ की तहाँ मौजूद है। सेवकों ने लंगर नहीं खोला और वैसे ही चप्पू चलाते रहे और हरिनाम जपते गये। जब तक नाव बंधी थी चलती कैसे इसी तरह जब तक संसारी वस्तुओं में आसक्ति मौजूद है तब तक चाहे कुछ करो उन्नति नहीं हो सकती।

(९८) एक वैष्णव-सत्संग में बैठे थे। किसी ने पूछा गले में इस कंठी का बांधना क्यों आवश्यक है? उन्होंने उत्तर दिया, कि बहुत जगह जिन कुत्तों के गले में पट्टा नहीं होता उनको लावारिस और जंगली समझ कर पकड़ लेते हैं, और मार डालते हैं। यह कंठी जंगली और लावारिस न होने का चिह्न है। श्री महाराज मुस्कराये और फ़रमाया कि बहुत सी जगह कुत्ता पालने वाले को टैक्स देना पड़ता है और उसके बदले में सरकार से चिह्न (बिल्ला) मिलता है। पहिचान के लिये कुत्ते के गले के पट्टे में बिल्ला लटका देते हैं, बिल्ला न हो तो कुत्ता पकड़ा जाता है। इसलिये इस कंठी के साथ जब तक श्रद्धा रूपी बिल्ला न हो तब तक काम नहीं चल सकता।

(९९) एक दिन इर्शाद हुआ कि किसी मनुष्य को अपने पिता का ठीक पता नहीं होता तो माता बतलाती है। इसी तरह वेद की श्रुति सारे संसार की माता है वही परमेश्वर, परमपिता, परमात्मा का पता बतलाती है और वही जतलाती है, उसके स्वरूप का वर्णन करती है और पूरा ज्ञान कराती है।

(१००) एक दिन इर्शाद हुआ कि जो मनुष्य मालिक और मौत को हर समय और हर स्थान सामने उपस्थित समझेगा उसका दीन-दुनियाँ और लोक-परलोक अर्थात् प्रवृत्ति और निवृत्ति सब सुधर जायेंगी इससे पाप नहीं होंगे। इन को हर समय ध्यान में रखना चाहिए। मौत की पदवी भी बड़ी माननीय है इसी को काल भगवान कहते हैं।

(१०१) एक दिन इर्शाद हुआ कि मनुष्य सच्चे साधु के पास हंसता हुआ जायेगा तो उदास होकर लौटेगा, जिसके पास उदास चित्त जाये और

हँसता हुआ लौटे उसको मसख़रा या ढोंगिया समझना। क्योंकि साधु तो मोह से रहित होते हैं, संसार को स्वप्नवत् समझने और धन-दौलत को स्वप्न की माया जानने का उपदेश करेंगे। मसखरे और भाण्ड का यह प्रबन्ध होगा कि वह ढोंग रचे और जो मनुष्य उदास चित्त और वैराग्य धारण के लिये आया हो तो खुश होकर जाये। नहीं तो हंड़िया नहीं चढ़ेगी। इसी तरह से धन खाने, उड़ाने और जमा करने का नियम हो रहा है।

(१०२) एक दिन इर्शाद हुआ कि स्त्री में लज्जा होना बहुत बड़ा गुण है। जिस तरह से बेआब का मोती निकम्मा होता है इसी तरह निर्लज्ज स्त्री बेकार समझी जाती हैं। कामी और तामसी मनुष्य ऐसी स्त्रियों को कुछ समय के लिये चाहते हैं, परन्तु कुछ समय बीत जाने के बाद, निर्लज्ज व्यवहार उनके दिल से भी ऐसी स्त्रियों को उतार देता है। वेश्या भी बनावटी लज्जा दिखा कर पुरुषों को मोह लेती हैं, फिर गृहस्थी स्त्री में तो लज्जा की बड़ी भारी आवश्यकता है। धर्मात्मा और सात्विकी मनुष्य को निर्लज्ज स्त्री को देख कर इतनी घृणा हो जाती है कि वह उसकी तरफ देखना भी नहीं चाहते। पर्दा और बेपर्दा और चीज़ है, लज्जा और चीज़ है। बहुत सी पर्दा से बाहर रहने वाली और मुँह खोल कर चलने वाली स्त्रियाँ भी लज्जा सम्पन्न होती हैं। लज्जा स्त्रियों में ही नहीं बल्कि पुरुषों में भी होती है। कई पुरुष बहुत निर्लज्ज होते हैं। स्वभाव से सात्विकी मनुष्य को लज्जा सुहाती है। राजसी चंचलता, चपलता पसन्द करते हैं। तामसी लोग बिल्कुल नङ्गापन और खुला व्यवहार चाहते हैं। जो आग राख के अन्दर छुपी रहती है वह बहुत समय तक रहती है। जो खुली रहती है वह शीघ्र बुझ जाती है।

(१०३) एक दिन एक व्यक्ति ने अर्ज़ किया कि आपका बतलाया हुआ मार्ग कितना सादा और ठीक है। आप उपदेशक भेज कर स्थान-स्थान पर इसका प्रचार कराइये और अखबारों में लेख भेजिये। श्री महाराज ने फ़रमाया कि अपनी बुद्धि, अपना ज्ञान, अपना मन्त्र, अपना देश, अपना गृहस्थ, अपना कुटुम्ब, अपनी सभ्यता आदि बातों को सर्वश्रेष्ठ समझ लेना और नाराज़गी से और दबा, धमका, कर इन बातों को दूसरों पर चलाना भारी भूल ही नहीं, बल्कि दङ्गा, फ़िसाद, मुक़दमा बाजी, युद्ध और महायुद्ध की सामग्री समझना

चाहिये । विचार से पता चलेगा कि अपनी सभ्यता, अपना धर्म और अपनी बुद्धि दूसरों पर फैलाने वाले और बल पूर्वक मनवाने से कैसे-कैसे महाअनर्थ पहले होते चले आये हैं और अब भी हैं, भविष्य में भी होंगे । किसी मनुष्य को यह अधिकार नहीं कि दूसरों के शरीर, मन, और बुद्धि पर किसी तरह का दबाव डाल कर उसको किसी बात के मानने और करने पर विवश किया जाये। जो बुद्धि परमात्मा ने हमको दी है वही सब को दी है, केवल उसके विकास का अन्तर है, जो कुसङ्ग और सत्सङ्ग का फल होता है । सभ्यता की बात तो यह है कि जब कोई जिज्ञासा करे तब ही उस पर अपने विचारों को प्रकट करे और फिर जिज्ञासु को सोचने विचारने और अपना रास्ता आप स्थिर करने का समय दे । परमात्मा एक है उस तक पहुँचने के मार्ग पृथक्-पृथक् हैं । यदि कोई मनुष्य किसी दूसरे रास्ते से पहुँचने की चेष्टा करे और पहुँच जाय तो उसमें खेद की क्या बात है । किसी दूसरे व्यक्ति से बलपूर्वक किसी बात को मनवाना या मानने के लिये विवश करना, सभ्य मनुष्य का धर्म नहीं ।

(१०४) एक दिन चर्चा छिड़ रही थी कि जो पुराने मत हैं वे सब अपने-अपने धार्मिक ग्रन्थों को "कलामें इलाही" या ब्रह्मवाणी कहते हैं । क्या खुदा और ब्रह्म ने इन पुस्तकों और ग्रन्थों का विषय किसी से कहा था? श्री महाराज ने फ़रमाया कि कोई भी धार्मिक पुस्तक ले लो, वेदों को भी ब्रह्म-वाणी माना जाता है, परन्तु प्रकट रूप से बात यह है कि व्यासजी ने उनको संग्रह किया । क़ुरान को पढ़ने से पता चलता है कि इसको भी मोहम्मद साहिब ने नहीं लिखा उनके जीवन की दिशायें और वाणियाँ जो समय-समय पर उन्होंने उच्चारण कीं या उपदेश के लिये या भविष्यवाणी के तौर पर कहीं उनको दूसरों से सुन कर या पूछ कर संग्रह किया गया है । ग्रन्थ साहब तो अभी दो-चार सौ वर्ष की बात है कि बाबा नानक जी की पाँच पीढ़ी पश्चात् संग्रह किया गया था । बात यह है कि जिस तरह से ईश्वर ने सकल ब्रह्माण्ड को रचा है और वह इस रचना का कल्याण चाहता है उसी तरह जो महात्मा और महापुरुष इस संसार का कल्याण चाहते हैं उनका मानसी सम्बन्ध ईश्वर से हो जाता है । इसलिये जो कुछ ईश्वर की इच्छा होती है वही महात्माओं और महापुरुषों की वाणी से प्रकट होती है और बहुत सी बातें बल्कि आत्मोन्नति सम्बन्धी सब बातें

एक महात्मा की वाणी दूसरे से मिलती है और सच्चे महात्मा इस प्रकार की वाणियों का आदर करते हैं। ग्रन्थ साहब में, कबीर जी, दादू जी आदि सब की वाणी को माना है। "सौ स्याने एक मत" वाली बात हो गई और जो कुछ भी अन्तर दिखलाई देता है वह देश, काल, पात्र और क्रिया में है नियमों में नहीं। जल का स्वभाव शीतल और रूप निर्मल है, परन्तु किसी देश में चूना, किसी देश में खार, किसी में नमक, किसी में गन्धक होने से उसके स्वाद और गुण में अन्तर प्रत्यक्ष दिखाई देता है। वर्षा में जल गदला हो जाता है। वर्षाऋतु के बन्द होने से उसकी गर्द बैठ जाती है। धरती के नरम और कड़ा होने से कहीं जल सीधा बहता है कहीं उसकी धारा टेढ़ी प्रतीत होती है। यह सब परिवर्त्तन देश, काल और पात्र के अनुसार प्रतीत होते हैं। जल का गुण नहीं है। इसी तरह महात्माओं की वाणी, रहन-सहन, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, विधि-निषेध में भी देश, काल और पात्र के भेद से भेद हो जाता है। पर उसको भेद नहीं मानना चाहिये, यह समय अनुसार सत व्यवहार है। भेद के अर्थ अन्तर के भी हैं और गुप्त रहस्य के भी, यह गुप्त रहस्य हैं। उस देश और उस काल और वहाँ की जनता की जो आवश्यकता होती है उसको विचार कर, वहाँ नियम ज़ारी किये जाते हैं। जिस देश में अन्न नहीं होता या कम होता है, वहाँ मास खाने की आज्ञा दी जाती है। बौद्ध मत में अहिंसा का कितना कठिन प्रचार है, परन्तु चीन, तिब्बत, आसाम आदि देशों के बौद्ध, जिनकी रहन-सहन और धार्मिक नियम सनातन धर्म से मिलते हैं, गाय का माँस खाते हैं, बल्कि कीड़े, मकोड़े, चूहे, बिल्ली तक भक्षण कर जाते हैं और धार्मिक उन्नति में यह लोग माननीय हैं। भारत कृषि कर्म देश है, हल चलाने, गाड़ी जोतने को बैलों की आवश्यकता होती है और वह गायों से पैदा होते हैं और गाय का दूध माता के समान गुण वाला होता है, इसलिये गाय की रक्षा के लिये जो नियम बनाया है उस पर धर्म की मोहर लगा दी है ताकि उसकी मानता बढ़ जाये और वह सदा ही मानी जाय। इसलिये यह सब पुस्तकें मनुष्य कृत और मनुष्य लिखित हैं और विचार से भी प्रकट होता है कि उनमें से कितनी बातें देश, काल और पात्र के अनुसार हैं और उनको देश, काल और पात्र के अनुसार करने में ही भलाई है अन्यथा करने में न तो शोभा है और न लाभ, बल्कि उल्टी हानि और विरोध बढ़ता है। जैसे कोई अरब देश में सूअर का और भारत में गाय का माँस खाये। जहाँ जल की

धारा बहती है वहाँ रेत से हाथ पोंछने की या आवदस्त से बचे पानी को पीने या कुल्ली करने के काम में लाने की क्या आवश्यकता है ? जहाँ बहुत सी जवान लड़कियाँ कुमारी बैठी हों वहाँ विधवा विवाह क्यों किया जाय ? थोड़ा, थोड़ा इन्द्रियों का भोग सबको ही मिलना चाहिये। जहाँ सर्दी से हाथ ठिठर जाते हों, वहाँ त्रिकाल स्नान से सिवाय कष्ट के क्या लाभ हो सकता है। जहाँ चित्त ठहराने और मन स्थिर करने को सुन्दर मनुष्य, सुन्दर भूषण, चित्र और मूर्ति प्राप्त हो वहाँ जङ्गल और रेगिस्तान का ध्यान करके सीस झुकाने की क्या आवश्यकता है। इसी तरह सकल ब्रह्माण्ड, सर्व देश और सर्व काल में जो सुखदाई बातें हैं उनको सदा माने और करे और जो एक देशीय या विशेष समय करने वाली हों, उनको उसी देश और काल में करना उचित है।

(१०५) एक दिन चर्चा हुई कि कलियुग में साधु महात्मा और ब्राह्मण की मानता नहीं हो रही है। श्री महाराज ने फरमाया कि अब भी सोना और चाँदी को वैसा ही मानते हैं, जैसा पहले मानते थे तो साधु महात्मा और ब्राह्मण को वैसा क्यों नहीं मानेंगे। भाँति-भाँति के नकली सोने, जर्मन सिल्वर, नकली हीरे चल गये हैं तो क्या उनको असली कर के मान लें और पूरी कीमत लगा दें। हमारे विचार में ज़रा भी अन्तर देखने में नहीं आता बल्कि पहले से क़द्र बढ़ गई है। क्योंकि जिस-जिस वस्तु की कमी होती जाती है, उसकी क़द्र बढ़ती जाती है। पंडितों को देखो तो कोरे तिलकधारी हैं। बल्कि तिलक लगाना भी दूभर हो गया है। सूने माथे ही घर से निकल पड़ते हैं। न पढ़े न लिखे और दिमाग देखो तो इतना कि सामने कोई बड़ा आदमी हो या अधिकारी हो उनको प्रणाम तो करना ही नहीं जानते, इसी धुन में रहते हैं कि जो मिले वह पहले हमसे यही कहे पंडित जी "पाँलागन"। किसी ऐसे धनाढ्य को जिससे अच्छी प्राप्ति होती हो उससे पहले से ही कह देंगे "यजमान सुखी रहो।" "भक्त जी का बोल बाला रहे।" "भक्त जी को भगवान् प्रसन्न रखें।" साधुओं का भी यही हाल है। सबको माई, बाबा करके पुकारना और अपने को छोटा समझना साधु के लिये उचित था। अब साधु अपने को बाबा और दूसरों को बच्चा कहते हैं। शायद करोड़ों में एक साधु ऐसा निकलेगा जो अपनी ओर से किसी को पहले जयराम जी की भी कहता

हो। ठीक प्रणाम तो शायद ही कोई साधु किसी बड़े से बड़े और योग्य से योग्य गृहस्थी को करता हो। उपदेश का यह हाल है कि स्त्रियों को जोर देकर यह कहा जाता है कि "तन, धन, मन सब गुरु के अर्पण करो।" जिससे शादी हुई है वह तो पति केवल व्यवहार में है। सच्चा पति तो गुरु ही है, जो भव-सागर से पार उतारता है। भला ऐसे उपदेश को सुन कर मनुष्य क्या मानता साधु की करेंगे। बाकी रहन-सहन और क्रिया जो कुछ आज कल साधु की है उसका हाल तो सब जानते हैं। परमात्मा का धन्यवाद है कि गृहस्थी फिर भी अपने कुटुम्ब के मान-सम्मान का ध्यान करके साधुओं की आवभगत करते हैं। वरना अधिकतर आचार तो साधुओं के ऐसे होते हैं कि चरण-पादुका से उनका पूजन किया जाना चाहिए। थोड़ा सा गुण भी और शुद्ध आचार साधुओं का हो तो इस समय में वह हर तरह से पूज्य हो जाता है। बड़ी मानता हो जाती है। लाखों मनुष्य उसको सराहते हैं। वास्तविक वस्तु का किसी जमाने और किसी देश में अनादर नहीं होता। वह सर्वदा, सर्व काल और देश में समान भाव से अच्छा माना जाता है।

एक साधु का वर्णन एक सत्संगी करने लगे, कि उनकी अवस्था सौ वर्ष की है। कोई बोला कि उनके शिष्य तो कहते हैं कि दो सौ वर्ष की है। बूढ़े आदमी कहते हैं कि हमने तो उनको हमेशा ऐसे ही देखा है। श्री महाराज से पूछने लगे कि उनकी आयु आप के विचार से क्या होगी। श्री महाराज ने फरमाया कि वेश्या सदा अपनी आयु को घटा कर बताती है और बहाना बताती है कि अमुक बीमारी से मेरा रूप ऐसा हो गया है नहीं तो आयु तो बहुत कम है। उसके भडुये भी ऐसा ही राग अलापते हैं। यदि ऐसा न कहें तो उस स्त्री को कौन पूछे। इसी तरह साधु अपनी आयु बढ़ा कर कहते हैं और उनके शिष्य नाना प्रकार की बातें बना कर उनकी दीर्घायु को सिद्ध करते हैं। यदि ऐसा न करें तो मानता कैसे हो। दुकानदारी कैसे चले और जमे। इस शरीर का यह नियम कैसे हो सकता है कि ज्यों का त्यों बना रहे। यह तो माया के गुण हैं। इनमें परिवर्त्तन होता ही रहता है। देश, काल के वशीभूत पात्र अर्थात् यह शरीर जर्जर होता ही जाता है। यह सम्भव है कि कई मनुष्यों का शरीर अधिक अवस्था तक भी काम-काज के योग्य बना रहता

है और जब तक वह जीते हैं किसी की सेवा के अधीन नहीं रहते, पर शरीर का ज्यों का त्यों बना रहना असम्भव है। शरीर कभी अजर, अमर नहीं रह सकता। यह स्वभाव आत्मा का है। वह सदा अजर, अमर और एक रस रहता है।

(१०६) एक दिन इर्शाद हुआ कि जब कोई इतर लगाता है तो उसकी सुगन्धी पास बैठने वालों को पहुँचती है। खुशबूदार वाटिका की सुगन्धी दूर दूर तक जाती है परन्तु सज्जन और महात्मा पुरुषों के सुन्दर आचरण और कीर्ति उनके आचरणों की बड़ाई के लिहाज से लोक भर में फैल जाती है। बल्कि और लोकों में भी, अर्थात् गन्धर्व लोक, देव लोक, ब्रह्मलोक और विष्णु-लोक में उनके यश का वर्णन होता है। श्री रामचन्द्र जी महाराज, श्री कृष्णजी महाराज, हजरत मुहम्मद जी, हजरत ईसा साहब व हजरत मूसा साहब, श्री बुद्ध भगवान जी ऐसे-ऐसे बड़े अवतार और पीर पैंगम्बर हुए हैं कि उनका यश अब तक लोक लोकान्तरों में फैल रहा है। धार्मिक कर्म के अतिरिक्त देश और प्रजा के लिये यदि कोई राजनैतिक काम भी निःस्वार्थता से करता है तो उसका भी यश फैलता है। जैसे श्रीमान् तिलक जी, श्रीमान गोखलेजी, वर्तमान समय में दौलत और धन प्रजा के हित के लिये श्रीमान् गांधी जी का यश फैल रहा है। इसी तरह के जितने भी बड़े मनुष्य हुए हैं, उनका जीवन बाहरी दृष्टि से दुख भरा दिखाई देता है। इनमें एक भी ऐसा नहीं जो अपने जीवन में थोड़े समय के लिये भी सुख से बैठ सका हो। श्री रामचन्द्र जी के जीवन को ही ले लो। राज पुत्र होकर भी किशोरावस्था में वनवास, राजगद्दी पर बैठते ही सीता जी का वियोग।

गृहस्थ जीवन में तो सुख की झलक तक नहीं है परन्तु उनकी विशाल आत्मा के लिये अगाध सागर की तरह संसारी सुख मिट्टी की तरह थे और उनका चित्त सदा अचल और निर्मल रहता था।

(१०७) एक दिन इर्शाद हुआ कि ऋण और रोग इन से मनुष्य को सदा बचना चाहिये। जहाँ तक हो सके प्रयत्न करे कि यह होने ही न पावें और यदि किसी भूल या विवशता के कारण हो ही जायें तो उनको छुपाना नहीं

चाहिए । क्योंकि ये छुप नहीं सकते । ऋण तो नोटिस, नालिश, डिग्री व कुर्की के रूप में प्रकट होगा और रोग चारपाई से लगा देगा । इसलिए हर प्रकार का यत्न करके इनको दूर करना चाहिये और उनसे मुक्त होना चाहिए ।

(१०८) एक सत्संगी ने विनय की कि प्रायः महात्मा कहते हैं कि गुरु का शीत प्रसाद खाओ । गुरु को पूजो, परन्तु आप अपनी पूजा और प्रसाद के विषय में कुछ नहीं फरमाते ।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि श्रीमद्‌भगवद्‌गीता, वेदों और शास्त्रों का निचोड़ मानी गई है और इस समय में प्रमाणित ग्रन्थ है । इस में स्पष्ट रूप से मनुष्य पूजन का वर्णन कहीं नहीं आया । १७ अ० के चौथे श्लोक में इतना ही लिखा है कि सात्विकी लोग देवताओं को पूजते हैं, राजसी यक्ष और राक्षसों को, तामसी प्रेत और भूतों को । श्री व्यासजी महाराज ने गीता रच कर सब को गुरु रूप से उपदेश दिया है और श्री कृष्ण भगवान् जी ने सम्बन्धी और मित्र भाव से अर्जुन को उपदेश किया । उन्होंने अपने मुँह से अपने पूजन का वर्णन करना उचित नहीं समझा । जिस तरह उन्होंने अपनी आत्मा समझ कर उपदेश किया है, वैसे ही महात्मा लोग संसार को अपना ही रूप और आत्मा समझ कर दया भाव से उपदेश करते हैं । जिन का ऐसा भाव हो वह पूजन के लिये कैसे कह सकते हैं । अल्बत्ता सात्विकी पुरुषों का यह साधारण स्वभाव है कि वह अपने माता, पिता, गुरु आदि को देवता ही नहीं बल्कि ईश्वर रूप मानते हैं और उसी भाव से पूजन करते हैं ।

(१०९) एक दिन इर्शाद हुआ कि भगवान् जिस पर प्रसन्न होते हैं और जिन पर कृपा होती है, उसको मद, मोह आदि से बचाने का प्रयत्न करते हैं और उसको किसी काम का यश दिलाने के लिए उस कार्य की शक्ति भी प्रदान करते हैं । अर्जुन श्रीकृष्ण भगवान् से प्रेम रखता था और वह उसको चाहते थे । इसलिए महाभारत का युद्ध होने से पहले उसको भीलों से लड़वाया और हरवाया जिस से अर्जुन को बड़ा दुख हुआ । यह इसलिए किया कि महाभारत के युद्ध में पुरुषार्थ करने से उस को अभिमान न हो जाये । इस बड़े युद्ध में उस को इतनी शक्ति दी, कि भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य और कर्ण जैसे योद्धाओं के

छक्के छुड़ा दिये और मार मार कर धूल में मिलवा दिये। इस विजय का उसको अभिमान न हो जाय, इसलिए राजा मोरध्वज से लड़वा कर हरवा दिया और अन्त में जब अन्तर्ध्यान हो गये तो अर्जुन को भीलों ने ऐसा लूटा और परास्त किया, जैसे किसी साधारण मनुष्य को डाकू लूट लेते हैं। इस से उसको और सकल संसार को विदित हो गया कि अर्जुन में अपना बल मनुष्यों का ही था। जो कुछ अनोखा काम उसने किया, वह श्री कृष्ण भगवान् की शक्ति थी। यही दशा सारे संसार की है। प्रभु जिस से जो कुछ करवाना चाहते हैं, वैसी ही बल बुद्धि उसको देते हैं। यह सब उसकी मौज का विस्तार है।

(११०) एक व्यक्ति ने प्रश्न किया, कि आम शास्त्रों में लिखा है और प्रायः सुना भी जाता है कि दुनियाँ स्वप्न है। इस का क्या भेद है? श्री महाराज ने फ़रमाया कि रात में सोते समय जो संसार और सम्बन्धी नज़र आते हैं, वह स्वप्न है और इससे अधिक कुछ नहीं। दिन में जो कुछ दिखलाई देता है वह ख़्याल है। जिस मनुष्य को शत्रु ख़्याल करो वह शत्रु बन जाता है और जिस की तरफ़ मित्रता का ख़्याल करो वह मित्र बन जाता है। जो स्त्री बड़े भाई को व्याह दी जाय तो वह भाभी मान ली जाती है। उसी आयु की स्त्री या उसकी बहिन से स्वयं शादी करे तो धर्मपत्नी बन जाती है। यदि पिता उसी आयु की स्त्री से व्याह कर ले तो लड़के लड़कियाँ उसकी आयु के समान स्त्री को माता मानने लगते हैं। कागज़ के नोट को धन और लोहा को रुपया मान लेने से काम चल जाता है। इसकी वास्तविकता सिवाय विचार के और क्या है इसी तरह यह संसार स्वप्न है।

(१११) एक सत्संगी ने विनय की कि रूस के देश में बड़ी हलचल मच रही है और राज विद्रोह हो रहा है कृपा कर के बतलाइये की राज-काज कैसे ठीक चला करता है?

श्री महाराज ने फ़रमाया कि यह काम हमारे आधीन नहीं हुआ। श्री कृष्ण भगवान् और श्री व्यासदेव जी पूर्ण महात्मा और योगेश्वर थे, परन्तु राज काज में बाधा डालना और उसको सुधारने का काम श्री कृष्ण जी ने अपने जिम्मे रखा था। श्री व्यासदेवजी का काम धर्म उपदेश ही रहा। सत्संगी ने विनय

की कि श्रुति और स्मृति दोनों व्यास जी ने संग्रह कीं। इस कारण से कम से कम मार्ग तो आप हमको बतलायें हानि क्या है ? कुछ न कुछ लाभ तो हम को पहुँचेगा और ग़ल्ती से बच जायेंगे। यूँ तो हजूर के उपदेश के अनुसार ऐसे मामलों में बाधा डालना नहीं चाहते। श्री महाराज ने फ़रमाया कि यह संसार सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण से बना है और सर्व पदार्थ, जीव, जन्तु और मनुष्य की उत्पत्ति इन्हीं में से हुई है और इन्हीं गुणों से इनका स्वभाव बना है। जिसमें जो गुण प्रधान होता है, उसका स्वभाव और क्रिया उसी गुण के अनुसार होती है। राज-काज में भी यही नियम काम करता है। यदि अधिकारी तामसी हो तो भोग, भोजन, निद्रा आलस्य का दौर-दौरा होता है। माँस, मदिरा, व्यभिचार और मारधाड़ होती रहती है। स्त्रियों को बल पूर्वक पकड़ लिया जाता है। राज्य के कामों में बड़ी असावधानी होती है, कोई पूँछ-तांछ नहीं होती, जो जिस के मन आया कर डाला। सब काम दण्ड भेद से होते हैं। डण्डा ही गुरु है "जिस की लाठी, उसकी भैंस" दूसरे देशों पर आक्रमण करना, लूटमार तामसी के कर्म हैं। अगर अधिकारी राजसी हो तो नाच-रंग, सैर-सपाटा, हर समय वेतन बढ़ाने की माँग, टैक्स और कर, आये दिन नये-नये खर्च, जगह-जगह हड़ताल और रिश्वत का बाज़ार गर्म। लाओ लाओ की रट चारों ओर लगी रहती है। यदि मांगने से इच्छा पूरी न हो तो उधार और तरह-तरह के कर्जे सरकार की तरफ़ से जारी किये जाते हैं। हर तरह से चुरा कर, माँग कर, कर्ज ले कर, बढ़-चढ़ कर, काम करने का स्वभाव बन जाता है। अधिकारियों की हाँड़ियाँ चढ़ती हैं। नई-नई सोसाइटियों बना कर राज्य पर अधिकार जमाने का प्रयत्न किया जाता है। सात्विकी राज्य में कम खर्च, साधारण-जीवन, दूसरों की भलाई का विचार, हर जाति और हर धर्म के साथ समान व्यवहार होता है। मक्कारी और धोखे से काम निकालना बुरा समझा जाता है। प्रजा की सम्मति से राज-काज चलता है। जो देने के योग्य है उस से कर आदि लिया जाता है। गरीब, बेवा और मोहताज माफ़ कर दिये जाते हैं, बल्कि राजकोष से इनकी सहायता की जाती है। उनके सुख और शान्ति के लिए काम जारी किये जाते हैं। मनुस्मृति में लिखा है, यदि कोई खोटी वस्तु खरी करके बेचे या कोई ऐसी वस्तु बनाये जिस में लागत कम हो और अधिक दामों में बिक सके, उसको दण्ड दिया जाए, ऐसी वस्तु न बनने पावें। किसी

चीज़ में खोटा मेल न हो सके, सात्विकी राज्य में दण्ड भेद को त्याग कर, साम से काम लिया जाता है। जैसा राजा होता है, वैसी ही प्रजा होती है और जैसी प्रजा होगी उससे राज्य अधिकारी बनेंगे, तो राज्य भी वैसा हो जायेगा। यदि राज्य और प्रजा में विरोध हो तो प्रजा राज्य को उलट देगी और प्रजा के स्वभाव के अनुसार राज्य की स्थिति हो जायेगी। उसका परिणाम कुछ भी क्यों न हो वही होता है जो कर्म के अनुसार होता है। तामसी दशा में धोखा, मक्कारी से काम निकालना बड़ा गुण समझा जाता है। गला-सड़ा, खराब, खोटा माल, सोना, चाँदी, जवाहरात बनाना और नकली रुपया बनाना और दूसरों को देकर धन इकट्ठा करना बड़ा कर्त्तव्य समझा जाता है। दण्ड और भेद के बजाय दाम से काम लिया जाता है। सात्विकी की सुख शान्ति और राजसी का दुख कलेश मानों माया का एक थ्येटर है अर्थात् रंग भूमि है। जिसमें यही तीनों प्रकार के खेल हो कर संसार को बारम्बार उपदेश दिया जाता है, भूलना मत, जैसा करोगे वैसा भरोगे, महात्मा लोग इसको गुणों और माया का तमाशा या उपदेश का ढङ्ग समझ कर कुछ दोष नहीं देते। वह शान्ति से देखते रहते हैं। वह जानते हैं कि सतोगुणी मनुष्य का कभी विनाश नहीं हो सकता। संग दोष के नियमानुसार जो दुख होता भी है उसको ईश्वरीय इच्छा और कर्म का परिणाम समझ कर सहन कर लेते हैं। वह जानते हैं कि समय व संसार सदा एक रस नहीं रह सकता। इसमें समय समय पर परिवर्त्तन अवश्य होता ही है उसे कोई रोक नहीं सकता। कोई देश किसी समय अच्छाई की चोटी पर होता है फिर कुछ समय पश्चात् उसका अधःपतन होता है, राज्य का मुख्य धर्म है कि प्रजा को धनवान और गुणवान् बनाने से पूर्व धर्मात्मा बनाने का प्रबन्ध करे। ताकि वह धर्मानुसार धन और गुण से लाभ उठा कर सकल संसार को सुखी करे। धर्मवत न होने से धन और गुण से भयंकर क्रिया होने की सम्भावना होती है। अन्यथा व्यर्थ व्यय, अपनी बुद्धि, अपना धर्म, अपना देश, अपनी सभ्यता और अपनी सब वस्तुओं को दूसरे से अच्छा समझ कर औरों को वैसा ही करने के लिए विवश करना उपद्रव की जड़ है। राजा और प्रजा सब का मुख्य उपदेश परमज्ञान और ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होना चाहिए और संसार के सभी पदार्थों को उस ज्ञान की प्राप्ति का साधन बना कर जीवन-पथ पर चलना चाहिए। सुन्दरता की चाहना विषय भोग के लिए न हो, परन्तु उससे मन और

इन्द्रियों की प्रशंसा करनी और भगवान् की महिमा जाननी चाहिये। धन से नाना प्रकार के भोग और अभोग नहीं, बल्कि जनता की सेवा करनी चाहिये। गृहस्थ आश्रम में रह कर मौज-मेले के बजाय बाकी के तीनों आश्रमों के पालने का प्रबन्ध करना चाहिये। इसी प्रकार राजा को उचित है कि अपनी प्रजा के प्रत्येक मनुष्य को ऐसे मार्ग पर चलाये जिससे उसका परम कल्याण हो और लोक-परलोक सुधरे। कर लगाकर या लूट खसोट से धन एकत्र कर लिया और कुछ राज्य अधिकारियों ने खाया, कुछ कर्मचारियों ने उड़ाया, प्रजा भला, बुरा चाहे जो करे। बलशाली और धनवान यदि जीव हत्या भी कर दें तो बल और धन के बल पर दण्ड से साफ बच जायें। इसमें राजा की अच्छाई नहीं बुराई है। जिस राज्य में अच्छे मनुष्य दुख पायें और दुष्ट मनुष्य मौज उड़ायें उसका राजा नर्क में जाता है और उसका राज्य शीघ्र नष्ट हो जाता है।

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अधम, नर्क अधिकारी॥

यजुर्वेद के तैत्तीय उपनिषद में लिखा है कि राज्य वह करे जो राजनीति जानता हो और राजांश को हराम समझे। राज्य या उसका कोई धन अपने स्वार्थ के काम में नहीं लावे, वह जब जनता की वस्तु है तो दूसरे की वस्तु को अपने काम में लाना धर्म विरुद्ध है। आज कल के राज्य अधिकारियों की अवस्था की इससे तुलना करो। राजा का तो कहना ही क्या है। राज-अधिकारियों का वार्षिक वेतन ८० हजार तक पहुँचता है। अर्थात् एक मास का ६ हजार ६ सौ ६६ से कुछ ऊपर।

(११२) एक रोज इर्शाद हुआ कि एक मनुष्य महाराजा युधिष्ठिर से मिलने आया, ड्योढ़ी में तीन और पुरुषों को बैठे देखा, तो उनसे पूछा कि आप कैसे बैठे हैं? उनमें से पहला बोला कि मैं एक कुयें पर खड़ा था, देखा कि एक पनिहारी ने एक डोल पानी से तीन चार बर्तन लबालब भर लिये। फिर उन सब बर्तनों का पानी उस डोल में डाला तो डोल आधा भी न भरा। दूसरा बोला कि मैंने यह चरित्र देखा कि एक गाय ने बछिया जनी तो बजाय इसके कि गाय बछिया को चाटे और दूध पिलाये गाय स्वयं बछिया का दूध

पीने लगी और बछिया चुपचाप खड़ी माँ को दूध पिलाती रही। तीसरा बोला कि मैंने बड़े अचम्भे की बात देखी कि खेत के चारों तरफ जो बाड़ खेत की रक्षा के लिए खड़ी थी वह सब ओर से खेत की फ़सल को खाने लगी। जो व्यक्ति आया था वह कहने लगा कि मैंने यह अनोखी बात देखी है कि एक बड़ा भारी पहाड़ ऊपर से गिरने लगा तो एक महात्मा पुरुष ने कच्चा सूत गिरते पहाड़ के नीचे तान दिया। वह पहाड़ कच्चे सूत के आधार पर ठहर गया। फिर वह चारों मिल कर महाराजा के सम्मुख उपस्थित हुये। अपना अपना हाल सुनाया। यह सुन कर महाराजा आँखें बंद करके विचारने लगे और सभासद बड़े सोच में पड़े कि यह क्या बात है? बहुत देर पश्चात महाराजा ने आँखें खोलीं और चारों भाइयों से कहा कि अब कलियुग भगवान आ गये हैं, हम को राज्य छोड़ कर यहाँ से जाना चाहिये ताकि अपना काम ठीक कर सके। सभासदों के पूछने पर महाराजा ने यह बतलाया कि पानी का यह वृतान्त है कि पहले एक कमाता था पाँच सात का पेट भरता था, अब ५,७ कमावें तब भी एक व्यक्ति धाप कर न खा सकेगा। घर में यदि कोई बड़ा बूढ़ा हो तो उसका पेट भरना ही दूभर हो जायेगा। गाय का वृतान्त यह है कि माँ अपनी बेटियों की कमाई खायेगी और अन्त में माता पिता उसके द्वार पर जा पड़ेंगे। खेत का वृत्तान्त यह है कि राजा का धर्म बाड़ की भाँति प्रजा की रक्षा करने का है। वह अन्याय से नाना प्रकार के कर लगाकर और आप खूब वेतन ले कर प्रजा को बिल्कुल भक्षण कर जायेगा। पहाड़ का वृतान्त यह है कि कलियुग के घोर उपद्रव, पहाड़ की तरह संसार पर गिरेंगे। परन्तु जिसने राम नाम का आसरा लिया उस पर न गिरसकेंगे और वही मनुष्य कलियुग के घोर और महान दुखों से रक्षा में रहेगा। कलियुग में भगवान नाम ही आधार है, यह सुख से साधने योग्य हैं।

(११३) एक व्यक्ति अपने नवजवान लड़के को श्री महाराज की सेवा में लाये और अर्ज़ किया कि इस का स्वास्थ्य बड़ा खराब रहता है। कई वैद्यों और डाक्टरों का इलाज किया स्वास्थ्य ठीक नहीं होता। इसी कारण से इसकी शादी नहीं की गई। अब आपकी शरण में लाया हूँ कोई उपाय आप कीजिए। श्री महाराज ने ध्यान से लड़के की तरफ देखा और फरमाया कि इसकी शादी

कर दो। आशा है कि ठीक हो जायेगा। कारण यह है, कि जिस प्रकार योग पाँच तरह का है उसमें से चार तरह का छोड़ कर, केवल एक तरह का करना चाहिए। इसी तरह से संसार के जितने भोग हैं वे भी पाँच प्रकार के हैं। (१) हीन, बिल्कुल कम, नहीं के बराबर अर्थात् पूर्ण इच्छा को दबा देना। (२) अति, बहुत अधिक, दिन रात उसी में लिप्त रहना। (३) कुभोग, पशु आदि से या पुरुष मैथुन। (४) मिथ्या, मानसी भोग से वीर्य को नष्ट करना। (५) शास्त्र की आज्ञानुसार क्रिया और समय अनुकूल समान रीति से धर्मानुसार भोग कहलाता है। कुभोग और मिथ्या-भोग से बहुत हानि है। जिस तरह मन के लड्डू से भूख की तृप्ति नहीं होती बल्कि भोजन न मिलने से शरीर निर्बल हो जाता है, इसी तरह वीर्य तो नष्ट हो जाता है, परन्तु विषय की इच्छा बढ़ती रहती है, इसी कारण अति भोग भोगने वाले अपने को नष्ट कर लेते हैं इन्द्रियों की इच्छा न तो पूरी होती है और न इन्द्रियों का सुख मिलता है। इसलिए धर्म पथ पर चलना ही ठीक है। जीवन के लिए जो बातें आवश्यक हैं उनको यूनानी-तिब में छै ज़रूरियात कहते हैं, वे हैं (१) हवा (२) पानी और भोजन (३) सोना, जागना (४) पाखाना पेशाब (५) खुशी, शर्म, भय, गम, क्रोध इनसे आत्मा की बाहर से अन्दर और अन्दर से बाहर हरकत होती है और शरीर का स्वास्थ्य ठीक रहता है। (६) व्यायाम, स्नान, भोग आदि आवश्यकता के अनुसार शरीर को पुष्ट करता है।

(११४) एक दिन सत्संग में यह प्रस्ताव रखा गया कि साल में दो बार या कम से कम किसी निश्चित स्थान पर भण्डारा हुआ करे। जिसमें अधिक से अधिक सत्संगी एकत्र हों और सत्संग की महिमा बढ़े और नाम फैले। बहुत से महात्मा दूसरों से धन ले कर बल्कि ऋण लेकर भी भण्डारा करते हैं। या श्री महाराज दौरे के तौर पर सब स्थानों पर वर्ष में एक बार अवश्य पधारें। श्री महाराज ने फ़रमाया कि आपस में मिलना-जुलना और एकत्र होना अच्छी बात है इससे विचारों का परिवर्त्तन होता रहता है और एक दूसरे के दुख-दर्द का पता चलता है। बाकी नाम का फैलाना और प्रसिद्धी हमको पसन्द नहीं। दूसरी बात यह है कि किसी निश्चित स्थान पर एकत्र होने में आने-

जाने का खर्चा उठाना पड़ता है और वहाँ धर्मशाला और मकान भी बनाने पड़ते हैं ताकि आने जाने वालों को आराम पहुँचे। इसी तरह आडम्बर बढ़ते-बढ़ते राजसी ठाठ हो जाता है और सत्संग का होना तो क्या एक मेला सा लग जाता है और दो चार दिन की चहल-पहल हो जाती है। तीसरी बात यह है कि आज कल साधुओं का नियम यह हो गया है—"कि हम तुम्हारे घर आयेंगे तो क्या सेवा करोगे और तुम हमारे यहाँ आओगे तो क्या लाओगे।" हर तरह से गृहस्थियों को हानि है जो इस नाज़ुक समय में हम देख नहीं सकते।

(११५) एक दिन इर्शाद हुआ कि मनुष्य शरीर में बहुत से अंग दो, दो हैं। जैसे नाक के छेद, आँख की गोलक, कान, हाथ, पैर, मल-मूत्र स्थान, यदि इनके कर्म में दो भाँति हो जाँये तो हानि नहीं है, परन्तु जिह्वा एक है। जो एक बात जिह्वा से कह दी उसकी पाबन्दी होनी चाहिये। उसको दूसरी बात से बदलना ठीक नहीं और मनुष्य वही है जो अपने वचन का पक्का रहे। यदि स्त्री ज़बान बदल दे तो इतनी दोषी नहीं ठहराई जा सकती।

वचन तो ऐसे दीजियो, जैसे दशरथ भान।
पिता पुत्र दोनों गये, वचन न दीन्हों जान॥
वचन छलो बलिराज, वचन कौरव बन खण्डो।
वचन करन लगे कोश, वचन कौरव बन मण्डो॥
वचन लागि हरिश्चन्द्र, नीच घर नारी समर्प्यो।
वचन लागि जगदेव, शीश कंकालहि अर्प्यो॥

(११६) एक व्यक्ति ने विनय की, कि कर्म की गति समझने में नहीं आती कि यह कैसे होती है और इसका फल अच्छा बुरा कैसा होता है। श्री महाराज ने फ़रमाया कि गीता के १८ वें अध्याय के आरम्भ में ही कर्म का वर्णन है। पहले यह बतलाया कि कुछ पण्डितों का यह मत है कि कर्मों का त्याग ही सन्यास है। कुछ का यह मत है कि कर्मों के फल का त्याग ही त्याग कहलाता है। कुछ बुद्धिमान ऐसा मानते हैं कि कर्म सभी दोष युक्त हैं और कुछ कहते हैं कि यज्ञ, दान, तप, रूप कर्म त्यागने योग्य नहीं। फिर अपना निश्चय श्री कृष्ण भगवान् कहते हैं, कि त्याग तीन प्रकार का होता है। सात्विक, राजसिक, तामसिक। क्योंकि देहधारी पुरुष सम्पूर्ण कर्मों का त्याग

नहीं कर सकता। स्नान भोजन और शयन आदि कर्म तो करने ही पड़ते हैं। इसीलिए कर्म के फल का त्याग ही त्याग है। फिर वाणी शरीर से जो कर्म किये जाते हैं इनके पाँच हेतु हैं। (१) आधार अर्थात् जिसके आश्रय कर्म किया जाये। (२) कर्ता अर्थात् करने वाला। (३) करण अर्थात् इन्द्रियाँ और साधन जिनके द्वारा कर्म किया जाता है। (४) चेष्टा अर्थात् नाना प्रकार की क्रिया। (५) विभू अर्थात् पहले किये हुये शुभाशुभ कर्मों के संस्कार, इसलिए जो आत्मा को कर्त्ता मानते हैं उनकी बुद्धि शुद्ध नहीं समझनी चाहिए। जिसके अन्तः-करण में कर्त्तापन का अहंकार न हो अर्थात् संसारिक पदार्थों में लिप्त न हो वह पुण्य पाप से रहित है। जैसे पानी में डूब जाने से, आग में जल जाने से, हाकिम के हुक्म से फाँसी पर चढ़ जाने से, हाकिम पानी और आग को कर्त्ता-पन का दोष नहीं लगता। यह भी बतलाया है कि ज्ञाता अर्थात् जानने वाला और ज्ञान जिसके द्वारा जाना जाय और ज्ञेय जो वस्तु जानी जाये यह तीनों कर्म के प्रेरक हैं अर्थात् इनके संयोग से कर्म में प्रवृत्ति की इच्छा होती है। फिर गुणों के भेद से कर्त्ता कौन है, कर्म कौन है, करने वाले का ज्ञान क्या है? क्योंकि गुणों के भेद से यह भी सात्विकी, राजसी, तामसी तीन-तीन प्रकार के होते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्णों के कर्म स्वभाव से उत्पन्न हुये गुणों के कारण भिन्न-भिन्न बतलाये हैं। फिर बुद्धि, धारण और सुख को तीन गुणों के लिहाज से पृथक्-पृथक् जतलाया है और यह भी कहा है कि पृथ्वी स्वर्ग और देवताओं में कोई ऐसा प्राणी नहीं है जो इन प्रकृति से उत्पन्न हुये तीन गुणों से रहित हो। क्योंकि सब जगत त्रयगुण-मय माया का ही विकार है। यह भी कहा है कि अपने स्वाभाविक कर्म में लगा हुआ यह निश्चय रख कर कि जिस परमात्मा से सर्वभूतों की उत्पत्ति हुई है और जिससे यह सर्व जगत व्याप्त हैं तो उस परमेश्वर को अपने स्वाभाविक कर्म द्वारा पूज कर मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त होता है। स्वभाव से नियत किये हुए स्वधर्म रूप कर्म को करने से मनुष्य पाप को नहीं प्राप्त होता। जैसे अग्नि में धुँआ होता है इसी तरह से हर कर्म में थोड़ा बहुत दोष होता है। जिस तरह से स्वधर्म को करता हुआ मनुष्य पाप को प्राप्त नहीं होता। उसी तरह सांख्य-योग से सर्वत्र आसक्ति-रहित बुद्धि वाला स्पृह-रहित और अन्तःकरण जीता हुआ, परम निष्क्रय सिद्धि को प्राप्त होता है। आत्म-परायण होने का उपदेश १८वें अध्याय के श्लोक

५५, से ६६ तक किया है। यह ही शरणागति-भाव और अनन्य-भक्ति है। अर्थात कर्म, उपासना, ज्ञान यह एक सिलसिला है जिसको कर्म-काण्डी कर्म के नाम से पुकारते हैं, भक्त लोग उसको भक्ति कहते हैं, ज्ञानी उसको ज्ञान नाम देते हैं। चाहे निष्काम कर्म करो, चाहे सब को भगवान् की सृष्टि समझ कर शुद्धता से व्यवहार करो, चाहे अपना स्वरूप समझ कर भले बुरे में समान चित रहो, चाहे सब व्यवहार को ईश्वर इच्छा समझ कर शरणागति-भाव में बरतो यह सब एक मञ्जिल पर पहुँचा देते हैं।

(११७) एक सत्संगी ने विनय की कि श्री भगवद्गीता में वर्णसंकर की बड़ी निन्दा लिखी है। परन्तु आजकल तो एक वर्ण से दूसरे वर्ण में शादी करने का बड़ा उत्साह हो रहा है और बड़े-बड़े व्यक्ति इस बात को प्रचलित करना चाहते हैं। वर्णसंकर में ऐसे क्या दोष होते हैं जिसके ध्यान मात्र से अर्जुन इतना भयभीत हो गया था। आपका विचार इस विषय में क्या है? श्री महाराज ने फ़रमाया कि शास्त्र में जितनी बातें लिखी हैं वे किसी एक दो आदमी का या दो चार बार का अनुभव नहीं सैंकड़ों क्या हज़ारों और लाखों बड़े-बड़े विचार-शील मनुष्यों ने बहुत युगों के अनुभव के पश्चात् हर एक बात की बुराई-भलाई पर व्यक्तिगत और सभा आदि में इकट्ठे हो कर खूब विचार के बाद कर्म और उसके फल को सूक्ष्म रीति से लिखा है। किसी बात में क्या बुराई है उसकी व्याख्या करना असम्भव है और उसकी आवश्यकता भी नहीं, क्योंकि इसका अनुभव बहुत योग्य मनुष्य दीर्घकाल तक पहले ही कर चुके हैं। साधारण बात यह सुनने में आती है कि जो मनुष्य अपने माता-पिता का आज्ञाकारी नहीं होता उनसे प्रेम नहीं करता, लड़ाई, झगड़ा करता है, उनको कष्ट देता है और दुर्वचन बोलता है उसको सब भले आदमी बुरा कहते हैं और साधारण लोग कहते हैं, कि यह साला हरामी है। कारण यह मालूम होता है कि जब अपने मान्य-पिता से पैदा ही नहीं हुआ उसका अंश भी उसमें नहीं है तो फिर वह पिता से पिता जैसा वर्त्ताव ही कैसे करे। माता सती नहीं, उसका आदर भी ऐसे पुत्र के मन में क्या हो सकता है। व्यभिचारी स्त्री का तो कहना ही क्या पुत्र एक व्यक्ति से पैदा किया, कन्या दूसरे से, ऐसी सन्तान में भाई-बहिन का भाव कैसे हो सकता है। अंश के कारण से और वर्ण के कारण से जो कुछ मर्यादा या भाव

स्वाभाविक होना या प्राकृतिक होना है वह दूसरे वर्ण में कैसे हो सकता है। ब्राह्मण पुत्र का किसी शूद्र कन्या से प्रेम और मर्यादा का भाव क्या हो सकता है? इसका अनुमान रोज के रहन-सहन और लोक व्यवहार से कर लेना चाहिये। हम तो इन प्रवृत्ति की बातों में कोई अपना विचार विशेष नहीं रखना चाहते। हमारा तो यह कहना है कि भगवद् भजन करो। इसके प्रभाव से इन्द्रियाँ और चित्त निर्मल हो कर स्वयं अनुभव हो जायेगा कि बुरा क्या है और भला क्या है। जब यह मालूम हो गया तो अन्तरात्मा बुरी बात को आप छोड़ देगी और फिर ऐसे मनुष्य की वाणी और विचार अपने आप शुद्ध हो जायेंगे। वह ऐसी कोई बात न कहेगा न विचारेगा, जो शास्त्र मर्यादा को तोड़ने वाली या जनता का अहित करने वाली हो। मनुष्य किसी धर्म का मानने वाला हो यदि परमात्मा का प्रेमी नहीं और उसका भजन नहीं करता वह कितना भी माननीय हो, उसकी इन्द्रियाँ और चित्त इतने निर्मल नहीं हो सकते कि वह अनुभव से कह सके। वह तो संसार की चाल ढाल को देख कर ही बात करता है मान, बड़ाई और नेता होने की इच्छा से वह नई-नई मर्यादा स्थापित करने का इच्छुक रहता है। कलियुग में ऐसे मनुष्यों की बहुत अधिकता होना शास्त्रों में लिखा है। श्री तुलसीदासजी ने भी रामायण के उत्तरकाण्ड के अन्तिम भाग में कलियुग का वर्णन करते हुये जो कुछ लिखा है वह क्या कम है? हमारे विचार उनके विचारों से विपरीत थोड़े ही हो सकते हैं।

(११८) एक युवा व्यक्ति बहुत दिनों से साधु बनने की प्रार्थना करता था। एक दिन श्री महाराज ने उसको समझाया कि आपको भजन का रास्ता तो बता दिया है उसको चित्त लगा कर साधो। यदि वह रास्ता कठिन मालूम हो और सत्सङ्ग से या शास्त्र से आपने कोई और रास्ता निश्चित किया हो और उसके विषय में कुछ पूछना चाहते हो हम बतलाने को तैयार हैं। हम किसी का जीवन गड़-बड़ में डालना पसन्द नहीं करते। यदि हमारी बात पसन्द नहीं तो किसी और साधु के पास जा कर उनसे प्रार्थना करो, वह तुम्हारा मनोरथ पूरा कर देंगे। पहले तो कपट की छुरी प्रसिद्ध थी। अब तो साधु सर मूड़ने को बगल में छुरा लिये रहते हैं। ज़रा किसी ने साधु होने का विचार प्रकट किया

तो उन्होंने उसका सर मूँड़ दिया। यदि पैसे वाला हुआ, तो उसे बहला फुसला कर भेष दे देते हैं और उसकी सम्पदा जो हाथ लगती है उसका उपभोग करते हैं। भारत वर्ष में बौद्ध-मत लगभग ढाई हज़ार वर्ष से प्रचलित है और सनातन मत तो यहाँ का पुराना वासी है। दोनों में साधु बनने के लिये कुछ नियम और अधिकार निश्चित हैं। उनके सनातन मत में आजकल पाबन्दी होनी कठिन है। ब्रह्मचर्य और गृहस्थ आश्रम पूरा करने के पश्चात् वानप्रस्थ आश्रम होता है। उसमें मन, चित्त और इन्द्रियों की निरख, परख और परीक्षा हो जाती है। उनमें पूरा उतर गया तो सन्यास का अधिकारी होता है। बुद्ध भगवान् स्वयं भी शादी होने के पश्चात् साधु हुए थे उत्तर वैराग्य था। पूर्व के संस्कारों से मन और इन्द्रियाँ सब अचल थीं। उन्होंने भी तो नियम स्थापित किये। २० वर्ष से कम अवस्था का साधु न हो। उसको कोई बड़ा रोग न हो। वह ऋणी न हो। उपदेश तो एक गुरू हज़ारों को दे सकता है, परन्तु आप अपनी इच्छा से साधु किसी को नहीं बना सकता। भिक्षु कई साधुओं की सम्मति से बनता है। गङ्गा, यमुना के मध्य में कम से कम दस साधु और दूसरे भागों में कम से कम पाँच साधु जब तक न हों तब तक किसी को भिक्षु नहीं बनाया जा सकता। बौद्ध साधु तीन वस्त्र पहनने के, भिक्षा-पात्र, पानी छानने का कपड़ा, सूई और डोरा आदि ज़रूरी चीज़ पास रख सकता है। यह उसकी सम्पत्ति समझी जाती है। बाकी जो कुछ धन सम्पदा इकट्ठी हो जाये या दान में आ जाये वह संघ की समझी जाती है। सनातनी साधु के पास जो कुछ इकट्ठा होता है वह बहुधा दान और भेंट में आता है, परन्तु वह सब सामग्री उसकी व्यक्तिगत सम्पति बन जाती है। दूसरे का उसमें भाग नहीं रहता। इसलिये हम तो किसी को भेष देना पसन्द नहीं करते। हमारा मत तो श्री कबीर जी से मिलता है—

"कहत कबीर कुछ उद्दम कीजिये।
आप खाइये औरन को कीजिये॥"

आगे आप को जो अच्छा लगे कीजिये।

(११९) एक सत्सङ्गी ने विनय की, कि मुझसे प्राणायाम ठीक नहीं होता। वायु कभी नीचे को निकल जाती है और बहुत प्रयत्न से किया जाये तो बेहोशी हो जाती है और नींद सी आ जाती है। श्री महाराज ने फ़रमाया कि

आप तो इञ्जन का काम खूब जानते हैं इसी नियम को प्राणायाम के काम में लाइये। इञ्जन के चलने से पहले अच्छी हवा, तेल आदि अन्दर भरा जाता है। फिर वह हवा दब कर फटती है। जिससे ताक़त और धुआँ पैदा होता है ताक़त इञ्जन चलाने के काम आती है। धूआँ नीचे नाली द्वारा निकल जाता है। इसी प्रकार मनुष्य शरीर के अन्दर अच्छी वायु जिसमें शरीर के पालन के परमाणु मिले रहते हैं अन्दर जाती है उसको पूरक कर्म कहते हैं। पूरी भर जाने से वह दबती है उसको कुम्भक कहते हैं इसी दबाव से वह जल जाती है। शक्ति और धुआँ पैदा करती है। शक्ति से शरीर का संचालन होता है। धूएँ से जी घबराता है इसलिये वह बाहर निकलता है इसको रेचक कर्म कहते हैं। इञ्जन में धूआँ निकलने के लिये एक नाली पृथक् होती है। मनुष्य के शरीर में वह धूआँ खराब हवा के रूप में मुँह से निकल जाता है। थोड़ा-थोड़ा जो अन्दर रह जाता है वह जमा हो कर गुदा द्वार से वायु रूप हो कर निकल जाता है। प्राणायाम में अधिक देर तक कुम्भक न होने का यही कारण है कि कुम्भक के दबाव से ही जो शक्ति और धूआँ बनते हैं उस धुआँ से जी घबराता है। यदि वह इञ्जन के अन्दर से न निकले तो वहाँ भी खराबी करता है। प्राणायाम में पूरी तरह से कुम्भक हो और नीचे के द्वारों से हवा न निकल सके, इसीलिये स्थान-स्थान पर बंध लगाये जाते हैं। गुदा द्वार पर मूल बंध लगाते हैं। जब हवा नीचे से चढ़ कर मणि पूर्वक चक्कर से ऊपर आ जाती है तो उड़यान बंध लगाते हैं ताकि वायु नीचे न उतर जाये। जब कंठ से वायु ऊपर चढ़ जाती है तो जलन्धर बंध लगाते हैं, कि मस्तिष्क में रुकी रहे। मस्तिष्क में पहुँचने से समाधि की (दशा) पैदा हो जाती है। परन्तु इसमें प्रकृति का भेद है। जिस की प्रकृति सात्विक होगी उसी को समाधि का आनन्द आयेगा और समाधि के समय चैतन्य रहेगा। जिसकी राजसी वृत्ति होगी उस को योग-निद्रा हो जायेगी। जिसकी तामसी वृत्ति होगी उसको तन्द्रा हो जायेगी। इसलिये प्राणायाम के साथ साथ वृत्ति को ठीक करना, स्वभाव को बदलना और तामसी से राजसी, राजसी से सात्विक बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। फिर आहार का भी ठीक करना आवश्यक है। जैसे तेल का इन्जन तेल से, गैस का गैस से, बिजली का बिजली से और स्टीम का स्टीम से चलता है वैसे ही जैसी प्रकृति हो उसके अनुसार ही आहार व्यवहार रखने से शरीर ठीक काम करता है। शरीर के

ठीक काम करने से मन आदि इन्द्रियाँ ठीक काम करती हैं और जब शरीर इन्द्री और मन का ठीक काम होता है तब ही प्राणायाम आदि क्रियाएँ ठीक हो सकती हैं। अलबल खाने पीने और शरीर की गड़बड़ चेष्टाओं से कोई काम नहीं हो सकता। साधारण जीवन में रेचक ठीक नहीं होता या अपान वायु बिगड़ने से गुदा द्वार से वायु नहीं निकलती तो वह अन्दर ही अन्दर फिरती रहती है और जी घबराता है। प्रकृति के अनुसार अहार जो कुछ भी हो वह शुद्ध हो ताकि शुद्ध वायु बने।

(१२०) एक व्यक्ति ने वर्त्तमान कानून पर टीका टिप्पणी करते हुये पूछा, कि क्या यह बिल्कुल ठीक है और कानून ऐसा ही होना चाहिए। श्री महाराज ने फ़रमाया कि स्वराज्य और परराज्य में इतना ही भेद है। पर-राज्य में प्रजा को धर्मात्मा बनाने का कभी यत्न नहीं हो सकता, बल्कि उस का धर्म भ्रष्ट किया जाता है। यदि ऐसा न हो तो उस पर शासन कैसे हो सके। जिस तरह से राजा पक्की सड़क बनाता है उस पर सब चलकर आराम पाते हैं, पथिक सुख उठाते हैं। चोर और बदमाशों को भी जहाँ तक रास्ता साफ नज़र आता है पक्की सड़क चलना पसन्द करते हैं। जहाँ पकड़े जाने का भय होता है, वहाँ से पगडण्डी या ऊबड़ खाबड़ मार्ग से चलते हैं। इसी तरह से पक्की सड़क के समान कानून होना चाहिए ताकि जनता उस पर सीधी चल सके। उस पर चलने से जो सुख प्राप्त होता है उसके कारण स्वयं बिना किसी से कहे उसी मार्ग पर चले। क़ानून की मन्शा प्रजा को नष्ट भ्रष्ट करने और दुख पहुँचाने की नहीं होती, बल्कि उसको सुखदाई बनाने और सीधे मार्ग पर लाने को क़ानून बनाया जाता है। जैसे सीधी सड़क पर चलने से जो सुख प्राप्त होता है वैसे ही अच्छे क़ानून पर चलने से भी। इसी कारण से जनता आप से आप उस पर चलती है और उससे प्रजा का लोक-परलोक सुधर जाता है। क़ानून साम, दाम, दण्ड और भेद चारों बातों पर विचार करके बनाया जाता है। स्मृतियों में कहीं कहीं पर बड़ी कठिनाई प्रतीत होती है। जैसे ब्राह्मण को शराब पीने का दण्ड, परन्तु एक दो मनुष्यों को ऐसा दण्ड मिल जाने से साधारण प्रजा ऐसी भयभीत हो जाती है, कि फिर शराब पीने का नाम भी न लेगी और उससे जनता का

कितना उपकार होगा । परराज्य में चालाकी से ऐसा क़ानून बनाते हैं कि दोषी को अपने दोष से निकल जाने का रास्ता मिल जाये । इसका असर यह होता है कि सभ्य मनुष्य के अतिरिक्त बदमाश को छुटकारा दे दिया जाता है जिसका प्रभाव यह होता है कि सभ्य मनुष्य भी ठीक मार्ग छोड़कर बुरे मार्ग पर चलने को तत्पर हो जाते हैं ।

(१२१) एक रोज़ १६१६ में जो युद्ध हो रहा था और जर्मनी ने ८० मील दूरी से मारने वाली तोप निकाली थी उस को सुनकर श्री महाराज ने फ़रमाया, कि इतिहास के पढ़ने से पता चलता है, कि इस तरह के तबाही करने वाले शस्त्र इस से पहले भी बहुत हो चुके हैं—नारायण अस्त्र और ब्रह्म अस्त्र इत्यादि, परन्तु मरे हुओं को जीवित करने का या मरते हुओं को मौत से बचाने का या किसी को मौत से अमर कर देने का कोई यंत्र, हथियार या औजार या दवा का आविष्कार नहीं हुआ । भगवान् की बनाई सृष्टि उजाड़ने वाले बहुत हैं परन्तु ऐसी सृष्टि पैदा करने वाला तो वह आप ही है । ऐसा कोई भी नज़र नहीं आता जो इसको एक सी दशा पर स्थिर रख सके ।

(१२२) एक व्यक्ति ने विनय की, कि परमात्मा ने संसार को क्यों पैदा किया और पाप को क्यों बनाया ? श्री महाराज ने फ़रमाया कि परमात्मा क्या है, कहाँ है, क्या करता है ? संसार बनाने से उसको क्या स्वार्थ है, कब से है ? और क्योंकर हुआ और कब तक रहेगा ? उसका नाम क्या है और उसकी सूरत कैसी है और किस कर्म अच्छे या बुरे से वह प्रसन्न या नाराज होता है और कितना बड़ा है ? इनकी वास्तविकता को कोई नहीं जानता क्योंकि यह हाल परमात्मा ने किसी को नहीं बताया और न किसी को विद्या और बुद्धि से मालूम हुआ । उसके विषय में जो कोई कुछ वर्णन करता है वह अपनी नासमझी प्रकट करता है । हमने तो बार बार कह दिया है, कि खान-पान, आवागमन, ईश्वर की हस्ती और कर्म के विषय में हमसे कोई बात न पूछी जाय और न हम इन विषयों पर राय देना पसन्द करते हैं । जिस किसी को परमात्मा की कृपा से अनुभव हो गया वह मन और वाणी से उसको प्रकट नहीं कर सकता । सब बड़े पुरुषों का यही कहना है कि वह मन और इन्द्रिय से जाना या समझा

नहीं जा सकता। इसलिए उसको अगम, अगोचर, अलख, अनादि, अरूप, अनामी आदि शब्दों से प्रकट करते हैं। ये शब्द उसके नाम नहीं।

(१२३) एक दिन इर्शाद हुआ कि यजुर्वेद की सन्त-उपसर्ग-उपनिषद में पाँच विशेष बातें हैं। (१) भजन का तरीका, जिसका वर्णन भगवद्गीता के अ० ६ श्लोक १० से २४ तक दिया हुआ है। (२) दिल में जिस प्रकार बड़ाई होती है उसी प्रकार बुद्धि का विकास होता है और जिस प्रकार विकास होता है उसी प्रकार ज्ञान होता है और उतनी ही समझने की योग्यता होती है उतने ही शुभ कर्म करता है। जिनका दिल जितना तंग होता है उतना ही ज्ञान, समझ और नेक काम करना उनमें कम होते हैं। (३) भजन के बारे में ध्यान, धारणा और ध्येय किस किस को करना चाहिए। पृथ्वी का ध्यान करे मैं मिट्टी का चक्कर हूँ। पानी का, अग्नि का, हवा का, आकाश का, अपने स्वास्थ्य ठीक होने का (४) भजन और धारणा से अन्तर प्रकाश के चिह्न ये हैं। कभी अन्धेरा, कभी गैस का धुआँ कभी सूर्य का सा प्रकाश, कभी बिजली की सी चमक, कभी चलती हुई हवा, कभी सफ़ेदी और सफ़ाई, मशाल की सी रोशनी कभी बहुत प्रकाश (५) हिरण्यगर्भ में पहुँच कर काम क्रोध आदि सामान्य होते हैं अर्थात् क्रोध आदि सामान्य और सम अवस्था में होते हैं सिर्फ नाम को काम-जीत हो जाना दूसरी बात है।

(१२४) एक दिन इर्शाद हुआ, कि जहाँ किसी इन्द्रिय की पहुँच नहीं वहाँ जागृत में यह मन सैर करता है बिना किसी प्रकट अवस्था के कभी हंसता है, कभी रोने लगता है, कभी दुखी बन कर ठन्डे श्वांस लेने लगता है, कभी अपने आपको भिखारी और कँगाल मानता है, कभी लखपति और करोड़पति बन बैठता है जो भोग उपस्थित न हों उनको भी भोग लेता है और इन्द्रियों को भी भुगवा देता है। हालांकि वह सब मन के लडड् ही क्यों न हों। इसी तरह से स्वप्नावस्था में भी शरीर सोया पड़ा रहता है और मन कहाँ का कहां जाता है। लाखों कोस दूर की वस्तु जिस को न कभी देखा हो न सुना हो उस को भी अनुमान से सिद्ध कर के देखता है। किसी समय भविष्य में होने वाली ऐसी वस्तुओं को भी देख लेता है जो बहुत समय पीछे प्रकट होती हैं। हर एक इन्द्रिय से काम लेता है। दूसरा कोई उपस्थित न हो तो भी अकेला लड़ता

है, झगड़ता है, भागता है, मारता है। इस से प्रकट है कि यह दिल सब से अधिक बलवान, शरीर अद्भुत और सर्व व्यापी है, परन्तु काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर में फंसता है। यदि सच्चा गुरू मिल जाये और विद्या, बुद्धि और साधन से सम्पन्न हो तो कमाल को पहुँच जावे। सुषुप्ति और तुरिया में सब धन्धों से हट कर सुख और आनन्द में मग्न होता है। उस समय चाहे बग़ल में सांप पड़ा हो, चाहे कोष धरा हो, चाहे कामिनी पास हो, किसी की परवाह नहीं, परन्तु सुषुप्ति का आनन्द प्रमाद और आलस्य से होता है। इसलिए जागृतमें मिट जाता है। तुरिया अवस्था में पहुँच कर वह आनन्द और सुख स्थित हो जाते हैं। जागृत और स्वप्न अवस्था में भी समान भाव से रहते हैं, परन्तु यह कहने और जानने की बात नहीं, बल्कि ज्ञान और विज्ञान से प्राप्त होते हैं। इससे दिल की मानता शुद्ध होती है। यदि यह दिल पूर्णता प्राप्त करने और शुभ कार्य में लग जावे, विषय भोग का विचार छोड़ दे, तो लोक परलोक में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं जिस को यह प्राप्त न कर सके। कुकर्म व खोटी संगत से भी दिल नर्क भोगता है और लोक परलोक की वासना उठाता है। यह ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव की पदवी पाता है। जीव से ब्रह्म स्वरूप का अनुभव करने लगता है। कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय को काबू कर के विषय की ओर जाने से रोक दे फिर इच्छा प्राप्त है। जप, तप, दान, तीर्थ-स्नान आदि कर्मों से यह उपाय सरल है उसमें किसी सामग्री की आवश्यकता नहीं।

(१२५) एक दिन इर्शाद हुआ कि परमात्मा अलख, अगोचर, अनामी है, इसलिए उसका न कोई रूप है न नाम है। जिस वस्तु का नाम रूप न हो वह किसी भी इन्द्रिय से जानी नहीं जा सकती। नाम व रूप वाली जितनी भी वस्तुएं हैं वह सब माया का कार्यालय है। इस माया ने अपने और परमात्मा के बीच में इतना पर्दा डाल रखा है जिस से परमात्मा की बड़ाई और महानता का पता नहीं चलता और माया सम्बन्धी तड़क भड़क धन लक्ष्मी ही सब को दीख पड़ती है। यह सब सिनेमा का सा खेल है लेकिन साधारण मनुष्य के लिए कितना कठिन है कि वह सिनेमा को झूठा और संकल्प रूप समझ उसके देखने से परहेज़ करे। इस तरह से इस अनिर्वचनीय माया की वास्तविकता को समझना बड़ा कठिन काम है। इससे दिल हटा कर परमात्मा की ओर

लगाना बड़ा कठिन है। जिस वस्तु की शक्ल सूरत न देखी हो उससे प्रेम करना सहज काम नहीं। माया की सब शक्लें झूठी होकर सच्ची दिखलाई पड़ती हैं, इसलिए सारे संसार का मन उस तरफ खिंचा जाता है, परन्तु खूब समझ लेना चाहिए कि यह संसार न किसी का हुआ है और न सदा किसी का हो कर रहेगा। इस सुख से कोई तृप्त नहीं हुआ। इसकी आदत इसका स्वभाव और इसकी प्रथा ऐसी है, कि इससे सदा कोई प्रसन्न नहीं रहा और आश्चर्य की बात यह है कि जिस को संसार का जितना अधिक सुख और भोग मिलता है वह सदा उससे अधिक की इच्छा करता है और जिसको यह प्राप्त नहीं हुआ वह ईर्ष्या से जलता है और बेक़रारी से तड़फता है। यह पलक के हिलाने से एक के पहलू से निकल कर दूसरे की बग़ल को गरमाती है। जिसकी बग़ल में जा बैठती है वह समझता है कि हमेशा मेरी ही रहेगी। परन्तु "यह वसुधा काहू की न भई" सैकड़ों यत्न, हज़ारों परिश्रम से यह प्राप्त होती है। इसके भोग से तृप्ति भी नहीं होने पाती, कि काफ़ूर की तरह उड़ जाती है और पारे की तरह हाथ से बिखर जाती है। इससे दिल लगाते समय और उसको पा कर इससे प्रेम कर, इससे वियोग होने पर हर दशा में दुख, जलन, डाह, ईर्ष्या और चिन्ता होती है, शान्ति कदापि नहीं होती। बुद्धिमान को चाहिए कि विचार से उसको "क्षणभंगुर" समझ कर त्याग दे और उसके किसी कार्यालय में दिल न लगाये। जिसको इसकी वास्तविकता मालूम हो गई, उसको भी ज्ञान हो जायेगा कि असल आत्मा क्या है। वही सत्य है, वही चैतन्य है वही आनन्द स्वरूप व आनन्द दाता है। तन, मन, धन, स्त्री सबको उसकी खोज में न्यौछावर करे जो कुछ पुण्य, दान, तीर्थ आदि कर्म करे वह परमात्मा के अर्पण हों। किसी शुभ कर्म का फल इस लोक और परलोक में न चाहना ही ज्ञान है इससे मुक्ति मिल सकती है। जो शुभ कर्म बिना किसी बदले या फल की इच्छा से करेगा उसको कभी हानि न होगी। जिसको लाभ की चाह नहीं उसको हानि का भय भी नहीं। अचानक ही जो कुछ ईश्वरेच्छा से कर्म का फल उपस्थित हो उसको लाभ समझे। ऐसे ज्ञानी को सुख दुख समान हैं। वह आत्मा को हर तरफ़ पूर्ण देखता है। फिर किससे प्रेम करे, घृणा और प्रेम दूसरे से होता है। जब वही वह है तो अपने से क्या द्वैतपन का व्यवहार करे।

(१२६) एक दिन इर्शाद हुआ कि किसी व्यक्ति के सिर पर या पीठ पर या कन्धों पर बोझा रखा हो तो उससे उसका अंग नीचे को झुक जाता है। ऊपर को नहीं उठता। इसी तरह सच्ची विद्या और सच्चा धन होने से मनुष्य का सिर नीचे झुकता है, वह ऊपर को उठता नहीं है। खोटा धन और अनुचित विद्या का यह प्रमाण है कि उससे मनुष्य ऊपर उठता है और इतरा जाता है।

(१२७) एक दिन मृत्यु की चर्चा होने लगी कि मरते समय जीव संज्ञा-हीन हो जाता है और बड़ा कष्ट होता है। श्री महाराज ने फ़रमाया कि यदि सोते हुये मनुष्य को देखो तो कैसे खुर्राटे लेता है। गला खर खर बोलता है, मुँह फट जाता है और देखने से बुरा प्रतीत होता है। क्या उस सोने वाले को कष्ट होता है? वह तो बहुत आराम पाता है। देखना, बोलना, सुनना, सूँघना और स्वाद लेना यह सब कर्म प्राण की शक्ति से होते हैं। जब मनुष्य चुप हो जाता है तो वह बोलने की शक्ति प्राण में समा जाती है। इन शक्तियों के प्राण में मिल जाने से जीव को सुख होता है। प्राण सब से बड़ा है। प्राण के बिना न जिन्दा रह सकते हैं, न सुख पा सकते हैं। इसलिए मरते समय यह सब इन्द्रियाँ अपने देवताओं के साथ प्राण में समा जाती हैं और जब प्राण निकलता है, सब उसके साथ लगी चली जाती हैं। जैसे आग से चिन्गारी अलग हो कर हर तरफ गिरती है और अपनी अपनी सामर्थ्य अनुसार कर्म करती है, फिर वायु में समा जाती है। इसी तरह जब मनुष्य मृत्यु के निकट होता है तो सब इन्द्रियाँ अपने अपने गन्तव्य स्थान छोड़ कर प्राण में जा मिलती हैं। फिर कर्म नहीं कर सकतीं। इसी को कमज़ोरी व बेहोशी कहते हैं। इसमें दुख की क्या बात है। जैसे सुषुप्ति अवस्था में सब इन्द्रियाँ प्राण में मिल जाती हैं, उस समय न कुछ देखता है न सुनता है परन्तु सुषुप्ति में दुख तो नहीं होता सुख की प्रतीति होती है इसलिये उसको सुषुप्ति कहते हैं।। आँख, कान, नाक आदि बाहर की इन्द्रियों को भजन के समय बन्द करने में भी यही आशय हुआ कि यह इन्द्रियाँ अपने भण्डार अर्थात् मन की ओर झुक जाँय।

(१२८) एक व्यक्ति ने प्रश्न किया कि यह संसार ईश्वर की इच्छा से पैदा हुआ है? श्री महाराज ने फ़रमाया कि इच्छा में कुछ इच्छा और वासना हुआ करती हैं। इसलिये संसार की उत्पत्ति को इच्छा से कहना ठीक न होगा।

परमात्मा की मौज से पैदा होना मानो तो कुछ उचित मालूम पड़ता है। जब मनुष्य मौज में होता है तो बिना किसी प्रकार की वासना या कामना के कर्म करने लगता है। जैसे दरिया की मौज या बहाव में नाना प्रकार की लहरें भँवर और चक्कर पैदा होते हैं, वह पानी की इच्छा से नहीं होते बल्कि पानी के बहाव का यह स्वभाव ही है कि उसमें चक्कर और भँवर पैदा हों। वह स्वाभाविक ही पैदा होते हैं। इसी तरह से जीवों के कर्म की प्रेरणा से आत्मा में स्पन्दन होता है। उसी कर्म से संसार प्रकट होता है।

(१२९) एक व्यक्ति ने चर्चा की कि अमुक व्यक्ति धर्मार्थ मकान बनवा रहा है। लोग उसका सामान चुरा चुरा कर ले जाते हैं। मनुष्यों की वृत्ति ऐसी बिगड़ गई है कि धर्म के काम में भी चोरी करने से नहीं चूकते। इमारत का कुछ भाग गिर भी गया। धर्म के काम में यह घाटा और हानि हो रही है। श्री महाराज ने फ़रमाया कि किसी के चाहे जितना धन हो, यदि उसमें थोड़ा थोड़ा भी घटता जाय तो दस, बीस, पचास या इससे अधिक समय में सारा नष्ट हो जायेगा। इस संसार को बने करोड़ों और अरबों वर्ष हो गये। यह संसार उत्पन्न हुआ तभी धर्म स्थापित हुआ था। यदि धर्म ज़रा ज़रा भी कम हो जाता तो अभी तक बिल्कुल समाप्त हो जाना चाहिए था और उसका अंश भी न रहता। लेकिन धर्म ऐसी वस्तु है कि उसमें कभी भी घाटा नहीं आता। वह तो ज्यों का त्यों बना रहता है। मनुष्य अपनी हीन वृत्ति का परिचय देने के लिये चाहे जैसे उसकी हानि करे, परन्तु धर्म में अणु बराबर भी घाटा नहीं आ सकता। ऐसी बातों को घाटा नहीं समझना चाहिए। उनको विघ्न कह सकते हैं। वह विघ्न धर्म की सच्चाई को प्रमाणित करने के लिये होते हैं। चोरी, चकारी, गिरा पड़ी से काम बन्द हो जाय तो समझ लेना चाहिए कि यह धर्मार्थ न था या खोटा धन लगा होगा। जब सब विघ्नों को पार करके कार्य समाप्त हो जाय तब ही तो उसके धर्ममय और धर्मार्थ होने का पता लगता है। धर्म वही कहलाता है जो कभी भी और किसी तरह से ज़रा भी न घटे। सदा एक रस रहे। सत्य और धर्म को भगवान् का स्वरूप समझना चाहिए।

(१३०) एक दिन इर्शाद हुआ कि ईमान है तो जान है और जान है तो जहान है, नहीं तो पूरा नुकसान है।

(१३१) एक मनुष्य ने विनय की कि स्त्रियों को तो पहले पूरे अधिकार नहीं दिये जाते थे, अब जागृति हो रही है और उन्हें सरकारी नौकरी और राजकार्य में भी हिस्सा दिया जायेगा, आपकी इस विषय में क्या सम्मति है ? श्री महाराज ने फ़रमाया कि ईश्वर भजन में तो स्त्री पुरुष सब का पूरा-पूरा अधिकार है और सब समान भाव से अधिकार ले सकते हैं कोई पाबन्दी स्त्री पुरुष तो क्या, बल्कि जाति-पाँति तक की भी नहीं है । यह जो आपने कहा कि पहले अधिकार नहीं दिये जाते थे इससे हम सहमत नहीं । सनातन धर्म की सभ्यता तो सर्व माननीय है। फिर जो सर्वमान्य वस्तु हो और उसमें स्त्री पुरुष के अधिकार ठीक न हों, तो उसको सर्व माननीय कैसे कहा जा सकता है। इससे स्पष्ट है कि अधिकार सब को ठीक-ठीक दिये गये थे । ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वान प्रस्थ, सन्यासी, स्त्री, पुरुष, स्वामी, सेवक, राजा और प्रजा सब के अधिकार यथायोग्य हैं तब ही तो सभ्यता सर्वमान्य हुई है। अब कुछ चलन ऐसा चल गया है कि गृहस्थी तो सन्यासी के धर्म करने लगे हैं और सन्यासी गृहस्थी के, ब्रह्मचारी जिनका काम विद्या अध्ययन का है वह राज काज और राजनैतिक कामों में भाग लेने को सब से पहले अग्रसर होते हैं । स्त्रियाँ जिनका कार्य गृहस्थी में बाल बच्चों का पालन पोषन था, वह अब सिर खोल कर राज्य कार्य में कूद पड़ी हैं। सब से पहले झण्डियाँ उठा कर चलती हैं। कहावत है—

जाका काम ताही को साजे ।
और करे तो ठेंगा बाजे ॥

स्त्रियों को अधिकार मिलने से तो आप खुश हैं परन्तु "परधर्मो भयावहः" का जो फल हो रहा है उसकी तो आप शिकायत करते रहते हैं। फिर—

"चरा कारे कुन्द आक़िल, कि बाज़ आयद पशेमानी ।"

अर्थ—बुद्धिमान मनुष्य ऐसे कर्म क्यों करें जिसके परिणाम में उसको लज्जा उठानी पड़े ।

(१३२) एक व्यक्ति ने विनय की कि साधु लोग अपना रूप बिगाड़ कर क्यों रखते हैं। कपड़ा तक फटा पुराना, पास कौड़ी न पैसा । इससे ज्ञान में क्या वृद्धि होती है। श्री महाराज ने फ़रमाया कि गृहस्थ में बाप, बेटा, भाई, मित्र,

स्वामी, सेवक सब प्रेम से उस समय तक निर्वाह करते हैं, जब तक कोई किसी दूसरे की वस्तु को न देखे, वरना विग्रह फैल जाता है । विशेषतया यदि बेटा अपनी माँ को कुदृष्टि से देखे, या बाप अपने बेटे की बहू पर खोटी नज़र डाले, या भाई भावी का लालसी हो, या मित्र अपने मित्र की स्त्री को बुरी दृष्टि से देखे, या नौकर अपनी स्वामिनी को चाहने लगे तो गज़ब ही हो जाये । प्रेम और मित्रता एक दम मिट्टी में मिल जाती है । भक्त अपने भगवान् को सेवक, सखा, भाई, पिता या पुत्र आदि के नाते से प्रेम करते हैं । श्री और संसार भर की शोभा और लक्ष्मी अर्थात् संसार भर की सम्पदा भगवान् की स्त्री मानी गई है । साधु लोग भगवान् के भक्त हो कर यदि श्री और लक्ष्मी की चाहना करें, या लक्ष्मी के सङ्ग के इच्छुक हों तो फिर भक्ति और प्रेम कहाँ । जो कोई भी मनुष्य इन दोनों में से किसी को चाहता है, तो भगवान् तो कल्पवृक्ष और कामधेनु हैं वह उसकी इच्छा को अवश्य पूरा कर देते हैं । परन्तु श्री और लक्ष्मी का सङ्ग उनको डुबाये बिना नहीं रहता । ऐसी वस्तु को जिसका उनको अधिकार नहीं था, माँग कर या प्राप्त करके गढ़े में गिरते हैं ।

(१३३) एक दुकानदार ने विनय की कि मेरी दुकान नहीं चलती है कृपा दृष्टि हो जाय तो निर्वाह हो ।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि दुकानदारी में कुछ बातें ध्यान देने योग्य हैं । (१) जिस गली मोहल्ला या बाज़ार में दुकान हो वहाँ जिस किसी के घर में शादी विवाह, जन्म मरण का काम हो उन सब में यथा समय पूरी तरह भाग ले । (२) ऐसे समय यदि किसी वस्तु या धन की आवश्यकता हो और अपनी सामर्थ्य उस आवश्यकता को पूरा करने की हो तो अवश्य पूरा करे क्योंकि समय पर काम आ जाने से बहुत लोग कृतज्ञ हो जायेंगे । (३) नम्रता और दीनता का व्यवहार रखे । किसी से लड़े झगड़े नहीं । थोड़ी हानि उठा कर भी लड़ाई झगड़े से बच सके तो उस हानि को सह ले । (४) सब की सुनता रहे अपनी सम्मति कम दे; परन्तु जिस समाज या पार्टी, जाति या वर्ण या मनुष्यों का ज़ोर हो उससे मिलता जुलता रहे । ऐसे लोगों से कभी न बिगाड़े । (५) आस पास के ग्राहकों का ध्यान रख कर उसी तरह का सामान दुकान में रखे । (६) बच्चों से हित करे और प्यार से बोले । उनके माँगने पर थोड़ी बहुत वस्तु

मुफ्त देने पर भी बड़ा लाभ होता है। ऐसा दुकानदार बच्चों के माता पिता का दिल अपनी तरफ़ खींच लेता है और वह उसके पक्के ग्राहक बन जाते हैं। (७) दुकानदारी में उधार के बिना काम नहीं चलता। कम से कम महीना भर की उचापत बहुत आदमियों को देनी पड़ती है। परन्तु जहाँ तक हो सके बहुत लोगों को उधार न दे। किसी बहाने से उनको टाल दे। नहीं तो गाँठ से पैसा जायेगा और माँगने पर गाली मिलेगी और न देने वाले लोग मारने तक को तैयार हो जायेंगे। (८) बहुत अधिक मुनाफ़ा न ले। जनता की सेवा की नियत से काम करे। अधिक धन संचय करने और जनता की गाँठ काटने की नीयत न करे। हर तरफ ध्यान रखे। दुकानदार को चाहिए के ग्राहकों की बात दोनों कानों से सुनता रहे और जवाब देता रहे। ऐसे दुकानदार की दुकानदारी ऐसी जम जाएगी कि हिलाने से न हिलेगी।

(१३४) एक व्यक्ति ने पूछा कि यह जो साधु बिल्कुल नंगे रहते हैं इससे क्या लाभ है? श्री महाराज ने फ़रमाया कि हमारे विचार से पाँच बातें होती हैं। (१) संसार को दिखलाने और अपनी महिमा बढ़ाने और सिद्धता जतलाने को नंगे रहना। धूर्तों की इच्छा उसमें यह भी हो सकती है कि कुचाल स्त्रियों पर इसका प्रभाव पड़े। (२) दृढ़ वैराग्य की दशा में भी ऐसा होता है कि मनुष्य कपड़े आदि की भी परवाह नहीं करता। (३) तितीक्षा के लिए। वैराग्य और तितीक्षा दोनों दशा में यदि कपड़ा नहीं पहनना है तो गृहस्थियों से दूर रहने में ही कुशल है। (४) मन का विषय रस निवृत्त हो जाए। इस दशा में शहर में रहे या जँगल में परन्तु सभ्यता यही चाहती है कि माई लोगों में नंगे रहना उचित नहीं। (५) जब चित्त भगवान् और ब्रह्म में ऐसा लीन हो जाये कि इन्द्रियों का ध्यान ही न रहे तो स्थान और पात्र के भेद में गुन्जाइश ही नहीं। चाहे स्त्री सामने हो या पुरुष। ऐसी दशा में किसी के रूप रंग और रेखा का पता ही नहीं चलता।

(१३५) एक व्यक्ति ने विनय की कि अमुक सत्संगी बड़े नियम धर्म से रहता है। इन्द्रियों का भोग बिल्कुल त्याग रखा है। फिर भी उसके स्वास्थ्य में कुछ न कुछ खराबी रहती है। श्री महाराज ने फ़रमाया कि एक मिठाई का कमीशन ऐजेन्ट दुकान में जितनी मिठाई बिके उसको प्रति सेर आधी छटाँक

मिलती है। एक आदमी स्वयं तो मिठाई नहीं खाता है दूसरों को भी मिठाई खाने और खरीदने से मना करता है जिससे बिक्री कम होती है जिस के कारण कमीशन ऐजेन्ट को भी हानि पहुँचती है। पहले तो ऐजेन्ट इस बात की खोज करता है कि अच्छी से अच्छी मन पसन्द मिठाई उसके लिये बनाये ताकि वह स्वयं भी खाने लगे और जब खाने लगेगा दूसरों को किस मुँह से मना करेगा। जब हर तरह लल्लो चप्पो से भी वह मिठाई नहीं खाता और अप्रसन्न होकर तरह तरह की हानि पहुँचाता है। इसी तरह से जितनी इन्द्रियाँ मनुष्य शरीर के अन्दर हैं, उन सब के देवता उपस्थित हैं। जो भोग मनुष्य भोगता है तो देवताओं को भी उस रस का भाग मिलता है। जो मनुष्य इन्द्रियों के भोग को त्याग देता है तो पहले देवता नाना प्रकार के भोग को उसके सामने उपस्थित करते हैं। जब भोग न भोगे तो देवता दुखी होकर उसको शारीरिक बाधा पहुँचाते हैं। इसलिये ऐसे कठिन मार्ग पर चलने वाले मनुष्य को शारीरिक दुखों से नहीं डरना चाहिए। यह दुख परमार्थ के कामों में बाधा नहीं डाल सकते। सच्चे जिज्ञासु को इस बात का पता होता है कि श्रवणेन्द्रिय का सुख त्यागने से बहरा हो सकता है। इसी तरह से और सब इन्द्रियों का हाल समझो।

(१३६) एक दिन इर्शाद हुआ कि सच्चा ब्रह्मचारी, सच्चा गृहस्थी, सच्चा सन्त, सच्चा परम सन्त, सच्चा वानप्रस्थी और सच्चा महात्मा वह है जिसके जीवन का कम से कम बोझा दूसरों के सिर पर हो और दूसरों का अधिक से अधिक हित करे और सुख शान्ति का कारण हो। ब्रह्मचारी का खर्चा इतना कम हो कि उसके माता पिता और संरक्षक उसको दुख रूप न समझें और वह अपने गुरू और बड़ों की सेवा करे और काम में उनका हाथ बटाये। गृहस्थी अपनी कमाई से तीनों आश्रमों का पालन करे। ऐसा न हो कि "काम करे न धन्धा बैठा बैठा खाये और मौज उड़ाये" और जो सम्पत्ति उसके बड़े बूढ़े जनता की सेवा के लिए उस को सौंप गये हों, उसको बरबाद न करदे। बानप्रस्थ अपने शुद्ध आचरण और धर्म मय जीवन व भजन पूजन से शान्ति स्थापित करे। सुन्दर लेख और उपदेशों द्वारा जनता की सेवा करे और कम से कम खर्च कर के अपनी जीवन यात्रा पूरी करे। साधू, सन्यासी, सन्त, महात्मा अपने बैराग्य

और त्याग द्वारा अपने निजी खर्च को इतना कम कर दें कि दूसरों को उसका उठाना दूभर न हो, बल्कि उसके वैराग्य और त्याग को देख कर गृहस्थियों का भी जी चाहे कि अन्न-वस्त्र से उसकी खूब सेवा करें। परन्तु आजकल की दशा तो बिल्कुल विपरीत हो रही है। एक-एक विद्यार्थी का खर्चा इतना होता है कि उसके माता-पिता दबे जाते हैं। बनाव शृँगार, ब्रह्मचारी के बजाय व्यभिचारी का सा हो रहा है। गृहस्थियों का यह हाल है कि नौ लावें और तेरह की भूख। उनके भोग, हार, शृङ्गार और अच्छे वस्त्र आदि का इतना खर्चा होता है कि किसी दूसरे आश्रम की सेवा तो दूर रही अपने बाल बच्चों का पालन भी ठीक से नहीं कर सकते। वानप्रस्थ कहने को तो त्यागी अवस्था है, पर साग लायेंगे तो बढ़िया से बढ़िया, कपड़े खरीदेंगे तो अच्छे से अच्छा रहने को मकान सबसे सुन्दर चाहिये। आयु भर चाहे नौकरी करी हो या पापड़ बेले हों परन्तु अब अपनी सेवा के लिए नौकर अवश्य चाहिए। साधु सन्यासियों की भी अक़्ल बिगड़ गई है और ठाठबाट का तो कहना ही क्या है। एक पल्टन तो शिष्यों की अवश्य होगी, जिनकी सेवा का भार दूसरों के सिर पर होता है।

(१३७) एक व्यक्ति ने प्रार्थना की कि क्रोध बड़ा खराब होता है। जब आता है तो मनुष्य अन्धा हो जाता है। यह कैसे आता है और इसका प्रभाव कम या अधिक क्यों होता है ?

श्री महाराज ने फ़रमाया कि श्रीमद्भगवद्गीता के दूसरे अध्याय के ६२ वें श्लोक में लिखा है, कि विषयों के संग से कामना उपजती है और कामना के पूर्ण न होने से क्रोध आता है। प्रकृति तीन तरह की है। तामसी, राजसी और सात्विकी। तामसी मनुष्य के हाथ और पाँव में क्रोध पूरा ज़ोर करता है। इसलिए वह हाथ पाँव बहुत जल्दी चलाता है। राजसी मनुष्य के मध्य देह में क्रोध का अधिक असर होता है, इसलिए वह दिल में बात को रख लेता है। पेट के कारण रूठ कर खाना बन्द कर देता है, बड़ी लम्बी-लम्बी सांस ले कर जो कुछ क्रोध में करना है उसको सोचता है। उसकी तेज़ी से उसका पित्त भी खराब हो जाता है और गाली-गलौच भी बकने लगता है। सात्विकी मनुष्य के दिमाग पर क्रोध का असर होता है जिससे सब शरीर काँप उठता है और स्वास्थ्य पर उसका बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। जिज्ञासु और साधु को चाहिए कि ऐसे स्थानों से दूर

रहें, जहाँ रहने से क्रोध उपजता है और ऐसे मनुष्यों का संग त्याग दे जिन के संग रहनी, सहनी और क्रिया से क्रोध आता है।

(१३८) एक दिन इर्शाद हुआ कि माता पिता सन्तान पर कठोरता करे, सन्तान माता पिता से दुर्वचन बोले, हाकिम मातहत पर कड़ाई करे, राजा प्रजा पर गज़ब ढावे, पुरुष स्त्री को सतावे, स्त्री पति से मुँह ज़ोरी करे, शिष्य गुरू को शिक्षा करे, दुष्ट जन साधु से खोटाई करे इन सब को सहन करने में ही कुशलता है ।

(१३९) एक दिन किसी व्यक्ति की शिकायत होने लगी, कि बड़ा अत्याचार करता है। अमुक निर्धन के पीछे हाथ धो कर पड़ा है । कहता है कि उसके बाल बच्चों और उसको जान से मार डालूँगा और उस का वंश मिटा दूँगा। श्री महाराज ने फरमाया कि अत्याचारी की आयु कम होती है और उसका वंश घट जाता है। शेर, गाय और हिरण आदि को खाता है, परन्तु शेर की संख्या कम है, गाय और हिरण की फिर भी संख्या अधिक है। भेड़िया भेड़ बकरी को खाता है फिर भी जितनी संख्या भेड़ बकरी की है उतनी भेड़िए की नहीं। बिल्ली चूहे और चिड़िया खाती है, फिर भी जितने चूहे और चिड़ियाँ संसार में हैं उतनी बिल्लीं नहीं। इसी तरह और भी सब का हाल है। जितने कबूतर हैं उतने शिकरे और बाज़ नहीं। हांलाकि सांप हानि पहुँचाने वाला कीड़ा है फिर भी जितनी संख्या साँपों की है उतनी नेवलों की नहीं होती।

(१४०) एक दिन इर्शाद हुआ कि:—

जर मुरीद ज़न मुरीद और मन मुरीद संसार।
गुरु मुरीद हरि को भजे, उत्तरे भव जल पार॥

(१४१) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि सुख की खोज में सब संसार लगा रहता है, पर सुख प्राप्त बहुत कम को होता है । कारण यह है कि साधन ठीक नहीं। विद्या से नम्रता होनी चाहिए यह नहीं कि विद्या प्राप्त कर के उलटा झगड़ालू और अभिमानी बन जाये। नम्रता से मेल पैदा होता है। मेल जोल से धन की प्राप्ति होती है। धन से सुख प्राप्त होता है, परन्तु यह अगले ज़माने की सी बात दीख पड़ती है। आजकल तो थोड़ी विद्या प्राप्त हुई, कि तर्क वितर्क

आरम्भ हुआ। जिस से झगड़ा न हो तो भी होने लगे। जितना अधिक धन हो उतना ही अधिक झगड़ा होता है। न्यायालय में भी धनवान बड़ा दिखलाई देता है।

(१४२) एक रोज़ किसी ने विनय की कि कमाई कौन सी अच्छी होती है ?

श्री महाराज ने फरमाया कि कमाई तीन तरह की होती है। प्रथम हाथ पैर का परिश्रम और खड़े खड़े और चलते फिरते की जैसे खेती का काम। कुआं खड़े खड़े चलता है, हल और गाहन भी खड़े खड़े चलाये जाते हैं। अभिप्राय यह है कि सब काम खड़े खड़े और चलते फिरते और हाथ पैर दोनों के परिश्रम के हैं। दूसरे दुकानदारी और बाबूगीरी आदि इन में हाथों का काम भी है और बैठे बैठे का। तीसरे साहूकारी जिस में गद्दे तकियों के सहारे लेटे लेटे ही सब काम होता है। अधिकारियों का भी आज कल यही स्वभाव हो गया है। स्वयं आराम से कुर्सी पर लेटे लेटे बोलते जाते हैं। पेशकार आदि लिखते जाते हैं। न हाथ हिलें न पैर चलें। इन कमाइयों को पचाने का भी वैसा ही ढंग होता है। जैसे कमाई जाती है, वैसे ही खाई जाती है। हाथ पैर की कमाई वाले खूब खाते हैं, और अच्छी तरह पचाते हैं। बैठ के कमाने वालों को यदि आज पेट में दर्द है तो कल कब्ज़ है। लेट के कमाने वालों को प्रमेह आदि भयंकर रोगों का सामना करना पड़ता है। नाना प्रकार का भोजन न खा सकते हैं न पचा सकते हैं। यदि खा लें तो सिर और पेट पकड़ कर झींकते हैं।

(१४३) एक साहब ने विनय की, कि राम राज्य की बड़ी चर्चा है। यह राम राज्य क्या है ?

श्री महाराज ने फरमाया कि रामराज्य और स्वराज्य वही है जहाँ राज-काज की बागडोर बुद्धिमान, गुणी, पंडित, धैर्यवान, धर्मवान ब्राह्मणों के हाथ में होती है। जिस समाज में सभी नेता होते हैं। जहाँ आज्ञा मानने वालों का नहीं परन्तु आज्ञा देने वालों का ज़ोर होता है वह समाज बहुत दिनों तक टिक नहीं सकता। राज काज का काम सीधा सादा नहीं वह बड़े पित्तामारी

और, स्वार्थ त्याग का काम है। स्वार्थ त्याग, कामनी त्याग, कंचन के लोभ और कीर्ति की कामना का परित्याग ऐसा सरल नहीं है कि सारी जनता कर सके। इस लिए सारी जनता शासन कार्य भी नहीं कर सकती, शासन पर स्वार्थ त्यागी ब्रह्म विद्या के जानने वाले ज्ञान युक्त ब्राह्मणों को ही अधिकार है। इसलिए प्राचीन आर्य राजाओं के सचिवगण प्रायः सच्चे त्यागी ब्राह्मण ही होते थे। राजा का काम केवल आज्ञा देना और जनता से उस आज्ञा का पालन करवाना हुआ करता था। वह सचिवगण जनता द्वारा नियुक्त किये जायें तो उनका शासन ही प्रजातन्त्र और वास्तविक भूतन्त्र कहा जा सकता है। स्वराज्य एक विलक्षण प्रकार की परतन्त्रता का नाम है, जिसमें एक विशेष प्रकार के दायित्व के भाव से प्रत्येक मनुष्य को बंधना पड़ता है। स्वराज्य में विजय के बहुत से स्वार्थों का त्याग आवश्यक होता है। साथ में जनता के सामूहिक स्वार्थ के भाव को प्रधान भी मानना होता है। वह एक प्रकार का नियमित जीवन है जिसकी आधीनता में आ कर प्रत्येक मनुष्य को अपनी स्वतन्त्रता छोड़नी पड़ती है। इससे यह विचार भ्रममूलक है कि स्वराज्य प्राप्ति से हमें स्वतन्त्रता मिल जायेगी, हम जो चाहें सो करेंगे, हम पर किसी प्रकार का अंकुश बाकी न रह जायगा और यह भ्रममूलक भाव जहाँ-जहाँ है वहाँ की जनता स्वराज्य के लिये नहीं वरन् अराजकता के लिये तैयार रहे। ऐसे समाज में न तो स्वराज्य और न सुख की प्राप्ति होगी और न दैन्य अज्ञान का नाश ही होगा, वरन् कुराज्य, दुख तथा अज्ञान की वृद्धि ही अधिक होगी। जिस राज्य में कम से कम क़ानून और स्मृति हों और फौज और पुलिस कम हो वही अच्छा राज्य है क्योंकि कानून दुष्टता को रोकने, पुलिस और सेना कानून न मानने वालों के हेतु होते हैं।

(१४४) एक व्यक्ति ने पूछा कि बूढ़ों को स्त्री बहुत अच्छी लगती है। इसका क्या कारण है ?

श्री महाराज ने फ़रमाया कि गर्मी का स्वरूप आग है और शक्ति का स्वरूप स्त्री। जाड़े में गर्मी कम हो जाती है और सर्दी बढ़ जाती है। उसके मिटाने के लिये आग बहुत अच्छी प्रतीत होती है। मनुष्य उसको हाथों से पकड़ लेता है। इसी प्रकार बुढ़ापे में शक्ति घट जाती है, इसलिए शक्ति स्वरूप स्त्री बहुत अच्छी लगती है और मनुष्य के हाथ पैर की शक्ति घट जाने से वह काम-

काज अच्छी तरह से नहीं कर सकता, अपने शरीर की क्रिया में भी बाधा मालूम होती है, स्त्री उसकी सेवा तथा सहायता करती है। इस कारण से स्त्री की आवश्यकता भी प्रतीत होती है और अच्छी भी लगती है।

(१४५) एक व्यक्ति ने पूछा कि जिस साधु से मिलने का संयोग हुआ वही योग करने को कहता है। यह योग क्या वस्तु है ?

श्री महाराज ने फ़रमाया कि योग दो प्रकार का है। प्रवृत्ति मार्ग और निवृत्ति मार्ग। प्रवृत्ति मार्ग का यह उदाहरण है, कि श्री कबीर जी के पास आ कर किसी ने यही प्रश्न किया, वह ताना तान रहे थे उसने (माई लोई) से कहा "लाना", उसने पूछाताछा कुछ नहीं, "कुच" उठा कर दे दिया। जिस से वह ताने को साफ करने में लगे, फिर बोले घी हो तो लाओ, माई जी ने घी से भरी पसेनिया दे दी जिसको कबीर जी ने ज़मीन पर औंधा दिया किसी ने नहीं टोका कि यह क्यों फैलाया। थोड़ी देर बाद बोले कि कुछ कपड़ा है तो लाओ। माई जी ने एक थान ला दिया जिसको उन्होंने किसी निर्धन के हवाले कर दिया। घर वाले सब देखते रह गये, किसी ने यह नहीं टोका कि क्या करते हो। इसके उपरान्त प्रश्न करने वाले से यह कहा कि यह प्रवृत्ति योग है। इसको पूरा कर लो तब निवृत्ति बतलायेंगे। वह व्यक्ति जब घर गया तो कहने लगा 'लाओ'। उसकी स्त्री बोली "क्या लाऊँ"। सब ने पूछा परन्तु वह लाओ के सिवा कुछ न बोले। स्त्री बोली आज क्या हो गया है, चण्डू तो नहीं पी आये हो। फिर बोले कि घी लाओ। घर वाले पूछने लगे कि क्या करोगे ? बहुत माँगने पर दे दिया। जब वह फैलाने लगा, तो लड़के ने हाथ से छीन लिया और बोला, "चाचा पागल हो गये हो, घी ज़मीन पर क्यों डालते हो ?" फिर बोला 'कपड़ा लाओ'। घर वाले पूछने लगे कितना लाएँ, किसी ने पूछा क्या करोगे ? बहुत कहने के बाद थोड़ा सा कपड़ा दिया। जब वह किसी निर्धन को देने लगा तो हाथ से छीन लिया और कहने लगे कि आज तो सचमुच भँग पी आये हो। यह क्या ऊट-पटाँग काम कर रहे हो। तात्पर्य यह है कि पहले संसार के कामों में समता होनी चाहिए ताकि चित्त शान्त हो नहीं तो योग कैसे प्राप्त होगा ?

इस समता और शान्ति को प्राप्त करने के लिए ही साधु लोग घर-बार

छोड़ कर बनों और पहाड़ों में जा बैठते हैं, ताकि किल-किल, टायँ-टायँ से चित्त अशान्त न हो। परन्तु आजकल तो घर से ही अशान्ति की पोट बाँध कर निकलते हैं। स्थान बनाओ, गुरुद्वारा बनवाओ। कला कौशल जारी करो, यह धन्धा आरम्भ करो जिससे रुपये प्राप्त हों और काम चले। कुछ नहीं तो भंडारा का खफ़्त सवार हो जाता है। गृहस्थियों का धन लगता है और साधु का नाम होता है और मौज़ मेला भी। ऐसे खर्च करते हैं जैसे 'पराये धन पर चोर।'

(१४६) एक सेवक ने विनय की, कि मैं अपने लड़के की शादी अपनी बिरादरी के अच्छे घराने में करना चाहता हूँ, परन्तु लड़का कहता है कि मेरा तो प्रेम जिस लड़की से हो गया है मैं तो उसी से शादी करूँगा। क्या करूँ बड़ा परेशान हूँ। श्री महाराज ने फरमाया कि अन्य देशों में पहले प्रेम होता है फिर शादी। जैसे कोर्टशिप इत्यादि। जब वह चीज़ मिल गई और अपनी हो गई तो प्रेम थोड़े दिनों बाद मिट जाता है। भारतवर्ष में पहले शादी होती है, फिर प्रेम होता है। शादी होने से पहले दुल्हा दुल्हिन में किसी भी तरह का सम्बन्ध या जानकारी होती ही नहीं जब विवाह हो गया तो एक दूसरे को अपना जीवनाधार जान कर प्रेम करते हैं और वह प्रेम अन्त समय तक निभ जाता है। बल्कि इतना बढ़ता है कि एक दूसरे के पीछे अपने प्राण तक दे देते हैं, और उस सम्बन्ध को इस जीवन भर तक नहीं निभाते, बल्कि जन्म जन्मान्तर तक होने की आशा और लालसा करते हैं।

(१४७) एक दिन इर्शाद हुआ कि एक पण्डित अपने शिष्यों को गीता पढ़ाया करते थे। शिष्य प्रतिदिन आ कर कहते कि गुरू जी भगवद्गीता में बड़ा आनन्द आता है। पण्डित सोचने लगा कि हम को तो गीता पाठ करते इतनी आयु व्यतीत हो गई, परन्तु हम को तो कभी आनन्द नहीं आया। इन लोगों को ऐसा आनन्द कहाँ से आ जाता है। संयोगवश पण्डित जी अपने गुरू के पास काशी जी गये और उनसे चर्चा की, कि मुझको गीता पाठ करते इतने वर्ष व्यतीत हुए, परन्तु आनन्द प्राप्त नहीं हुआ क्या कारण है? उन्होंने फ़रमाया कि तुमने केवल गीता पढ़ी है अभी गुणी नहीं और इस तरह से आयु भर पाठ करते रहोगे तो भी आनन्द नहीं आयेगा। गीता तो भगवान् श्री कृष्ण के हृदय से निकली है जब उनके हृदय से लग जाओगे तब उनकी कृपा से आनन्द

आयेगा। भगवद्गीता के चौथे अध्याय के श्लोक २६, ३० में प्राणायाम और पाँचवें अध्याय के २७ वें श्लोक में भृकुटी ध्यान और ८ वें अध्याय के १० से १३ वें श्लोक तक ओंकार का जाप बतलाते हैं। उनमें से जिस पर तुम्हारी श्रद्धा हो और जो तुम को सुगम दिखलाई दे वह करो। १० वें अध्याय के १० वें और ११ वें श्लोक में देखो श्री भगवान् कहते हैं निरन्तर मेरे ध्यान में लगे हुए और प्रेम पूर्वक भजने वालों को मैं वह तत्त्व ज्ञान रूप योग देता हूँ जिससे वह मुझको प्राप्त होते हैं और उनके ऊपर अनुग्रह करने के लिये मैं स्वयं उनके अन्तःकरण में एक ही भाव से स्थित हुआ, अज्ञान से उत्पन्न हुए अन्धकार को प्रकाश मय तत्त्व ज्ञान रूपी दीपक द्वारा नष्ट करता हूँ और १८ वें अध्याय के ६६ वें श्लोक में भगवान् प्रण करके फरमाते हैं कि जो एक मेरी ही शरणागत भाव को धारण करेगा मैं उसको सम्पूर्ण पापों से मुक्त करूँगा।

(१४८) एक दिन तीनों गुणों का वर्णन होने लगा कि इनमें सतोगुण अच्छा है तमोगुण ख़राब है और रजोगुण कुछ अच्छा है कुछ ख़राब है।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि जब तीनों के नाम के साथ गुण लगा हुआ है तो कोई ख़राब नहीं हो सकता। सतोगुण में सत्य प्रधान है जिसके कारण सच्चाई तीनों काल में दृष्टिगोचर होती है। जैसे दिन में सूर्य की रोशनी में प्रत्येक वस्तु साफ़ और ठीक रूप में हर समय दिखलाई पड़ती है। रजोगुण में रज प्रधान है। रज उस वस्तु को कहते हैं जो लगे भी और छूट भी जाये। जैसे यमुना रज बिस्तर में और शरीर में लग जाती है झाड़ देने से छूट जाती है। इसमें अवस्था कुछ झुटपुटे की सी होती है। उसमें कभी रोशनी की झलक अधिक होती है जिससे वस्तु का रूप दिखलाई देता है, कभी प्रकाश की कमी से रूप ठीक दिखलाई नहीं पड़ता और कुछ का कुछ नज़र आता है जैसे रस्सी का साँप। तमोगुण में तम प्रधान होता है। अन्धेरे के कारण वस्तु का रूप ज्यों का त्यों नज़र नहीं आता। टटोल कर काम होता है जैसे अँधेरे में रुपया के आकार की कोई वस्तु मिले और उसको रुपया समझ कर ले लिया जाय। इस तरह से पदार्थों को ग्रहण करता है उनका जो प्रभाव और परिणाम होता है उसके बुरे-भले का निर्णय करने का विवेक नहीं होता क्योंकि बुद्धि तम प्रधान है और अन्धेरे से

ढकी हुई है। सत्य प्रधान बुद्धि प्रकाश और चैतन्य होने के कारण से भलाई-बुराई का निर्णय कर लेती है और उसी के अनुसार बर्तती और कर्म करती है। रज प्रधान बुद्धि में कभी भलाई बन जाती है कभी बुराई। ठीक निर्णय इसमें कभी नहीं होता। सुखदाई वस्तुएँ दुखदाई दिखलाई देती हैं और दुखदाई वस्तुएँ सुखदाई प्रतीत होती हैं। परन्तु तत्व वस्तु और आत्मा तीनों अवस्था में समान रूप से स्थित होता है। इसमें कोई भेदभाव और घटा बढ़ी नहीं होती जैसे ज़मीन, मकान दिन में साफ़ दिखाई देते हैं, रात में नज़र नहीं आते परन्तु रात में वह कहीं जाते नहीं न कुछ घटा बढ़ी होती है।

(१४६) एक दिन इर्शाद हुआ कि सतोगुणी मनुष्य भगवान के किसी पदार्थ की चाहना नहीं करते जो कुछ अनिश्चित प्राप्त हो जाय उसमें ही सन्तोष होता है। भगवान् की तरफ से सर्वदा वही पदार्थ दिया जाता है जो जीव के कल्याण का कारण हो। चाहे उस कर्म में कष्ट पहले क्यों न हो, परन्तु परिणाम सुखदाई होता है। रजोगुणी मनुष्य की कामना सर्वदा भोगों की होती है और ईश्वर कृपा से उनकी कामना के अनुसार भोग पदार्थ प्राप्त होते हैं जिस पर वह बड़े प्रसन्न होते हैं परन्तु उनका भोग रोग समान होता है और अन्त में दुखदाई होते हैं। तमोगुणी मनुष्य तम प्रधान बुद्धि के कारण दुखदाई पदार्थों को ही सुखदाई समझ कर उनकी इच्छा करते हैं जब उस की इच्छा के अनुसार पदार्थ मिल जाते हैं तो आदि में कष्ट करने से प्राप्त होते हैं और उनके भोग भी दुख से भरे हुये होते हैं जैसे दगाबाज़ी, धोखा फ़रेब और नशे वाले पदार्थों का सेवन। अत्यन्त प्रमाद, आलस, अति भोजन, अति भोग आदि उनके अन्त में भी दुख होता है।

(१५०) एक दिन इर्शाद हुआ कि धन की तीन गति होती हैं—भोग, दान और नाश। या तो धन से संसारी भोग विलास होता है, या दान में लग जाता है, यह भी न हो तो नाश को प्राप्त होता है। जो अधर्म की कमाई होती है वह वैद्य, वकील, वेश्या, रिश्वत, राज, शराब, आग, जुआ, चोर, सूद, साला और जमाई के जाती है और धर्म की कमाई अतिथि, अनाथ, दान, विधवा, रोगी, मोहताज, साधु, देवता, पित्र, गुरु, बेटा, भाई और शरीफ़ के काम आती है।

(१५१) एक दिन इर्शाद हुआ कि यह विषय बड़े प्रबल हैं। इनमें काम तो अति प्रबल है। जब उसका भूत सिर पर सवार होता है तो माँ, बहन, बेटी, पशु, पक्षी, चित्र व मूर्ति तक नारिमय दीख पड़ती हैं। जिस समय शिवजी महाराज की समाधि खोलने को कामदेव गया था, उस समय संसार की दशा का रामायण में अच्छी तरह वर्णन है। इसलिये हर मनुष्य को चाहिये चाहें स्त्री हो या पुरुष, गृहस्थ हो या विरक्त काम उत्तेजक चेष्टा और सामिग्री से दूर ही रहना चाहिए। अपनी साधुता, तपस्या और ज्ञान के घमण्ड पर इस तत्व से बेपरवाह नहीं होना चाहिए। हमारे पूज्य पूर्वज महात्मा विश्वामित्र जी ने संसार को उपदेश देने के निमित्त ही अपनी तपस्या और काम की गति दिखलाई है और यह मन कहाँ तक मनुष्य को पछाड़ सकता है इसका परिचय अच्छी तरह से दर्शाया है।

(१५२) एक व्यक्ति अपने लड़के की शिकायत करने लगे कि स्वभाव का बड़ा टेढ़ा है कोई बात सुनता ही नहीं। चाहे जितना दबाओ सीधे मार्ग पर आता ही नहीं बड़ा खुश्क दिमाग है।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि आप जो खुश्क मिज़ाज और टेढ़े दिमाग वाले से कठोरता करते हैं यह ठीक नहीं। वह तो मनुष्य है, सूखी लकड़ी भी सीधी हो जाती है। उसका ढंग यह है कि पहले लकड़ी को भिगो कर ज़रा नरम करते हैं, फिर तेल लगा कर चिकना और फिर आग दिखा कर गर्म करते हैं तब दबा कर सीधा करते हैं। इसी प्रकार पहले नर्मी से समझा कर उसके दिल को ठन्डा करो, फिर लालच और लोभ से फुसलाओ। जब लोभ में आ जाय तो कभी-कभी मनमानी वस्तुएँ उसको देना बन्द करो ताकि उसकी इच्छा पूरी न होने से आपकी बात मान कर अपनी मन वांछित वस्तुएँ प्राप्त करे, फिर दबाव डालो। संस्कार अच्छे हैं तो सीधे मार्ग पर आ जायेगा।

(१५३) एक आदमी ने कहा कि गुण तो तीन हैं। फिर यह छै रस कैसे बने इनमें से कौन रस किस गुण के आधीन है?

श्रीमहाराज ने फ़रमाया कि मुख्य रस तो तीन ही हैं। मीठा, नमकीन और चरपरा। खट्टा और कसैला मीठे रस के अन्तर्गत है। गन्ने का रस मीठा

होता है उसमें पानी डाल कर धूप में रखो तो गर्मी से सिरका बन जाता है। यदि मीठे में खटास न होती तो सिरके में कहाँ से पैदा हो जाती। अम्बियाँ खट्टी होती हैं, पक कर आम मीठा हो जाता है। इसी तरह कसैला भी मीठे के अन्तर्गत है। आमला पहले कसैला होता है फिर उसका स्वाद मीठा मालूम होता है। कड़ुआ नमक के अन्तर्गत है। साँभर झील में नमक बनता है। नमक बाहर निकाल लेने के बाद जो पानी बचता है वह कड़ुआ होता है उसको अंग्रेजी में बिटर्न कहते हैं। तीसरा चरपरा रस है। अर्थात् मीठा सतोगुण है। खट्टा रजोगुण में सतोगुण मिला है। कसैले में सतोगुण से तमोगुण प्रधान है। नमकीन रजोगुण है। नमक में कड़ुआपन रजोगुण तमोगुण प्रधान है। चरपरा तमोगुण है।

(१५४) एक व्यक्ति ने विनय की, कि कोई ऐसा धन्धा बतलाइये जिसमें बहुत लक्ष्मी की प्राप्ति हो।

श्री महाराज ने फ़रमाया कि लक्ष्मी भगवान की अर्धांगिनी हैं। जहाँ भगवान का निवास होगा वहीं लक्ष्मी जी निवास करेंगी। कलियुग में भगवान का निवास पाँच कामों में है। उनमें से कोई एक या दो या पाँचों करने से, एक गुणी दो गुणी या पाँच गुणी धन की प्राप्ति हो सकती है। पहली शराब की दुकान, (२) जूये का अड्डा, (३) वेश्या का स्थान, (४) पशु-वध का स्थान और (५) स्वर्ण का काम। शराब में पानी के दाम होते हैं। दो रुपये से कम की देशी भी नहीं मिलती अँग्रेजी तो २०, २५ की बोतल होती है। जुए में कोई हारे कोई जीते। अखाड़े वाला अपना नाल निकाले चला जाता है। वेश्या बाज़ार में तो चाँदी बरसती है। आये साल अकाल पड़ता है, जिसमें दो, दो रुपये में अकाल के मारे पशु आ जाते हैं। बीसों रुपयों का तो मांस ही बिक जाता है फिर खाल, सींग, खुर आँतों तक के दाम खड़े किये जाते हैं। पाँच तोले का आभूषण बनवाओ तो तोला भर सुनार ईमानदारी से निकाल लेता है। बाज़ार में जो बने बनाये जेवर बिकते हैं उनमें तो बड़ी ही भूल है।

(१५५) एक सत्संगी ने पूछा कि संसार को मिथ्या कहते हैं परन्तु सत्य जैसा प्रतीत होता है। इसका कारण क्या है?

श्री महाराज ने फ़रमाया कि लाल रंग के गिलास में पानी भर दो तो दूर से पानी लाल प्रतीत होता है। इसी प्रकार इस संसार का निवास भगवान् आत्मा में है। भगवान में स्थित होने से और उनकी सत्ता से ज़गत सत्य जैसा प्रतीत होता है।

(१५६) एक दिन इर्शाद हुआ कि "वस्तु कहीं ढूंढे कहीं किस विधि आवे हाथ।" (१) मौत से बचने और सर्वदा जीवित रहने। (२) सर्वज्ञ होने और सत्य वस्तु का ज्ञान प्राप्त करने। (३) दुख का लेश मात्र न हो और सर्वदा सुख बना रहे यह तीन इच्छा सब को रहती हैं। इन इच्छाओं को पूरी करने के लिए नाना प्रकार की सामिग्री इकट्ठी की जाती हैं। पहरने के लिए सुन्दर सुखदाई वस्त्र, खाने के लिए अनेक प्रकार के स्वादिष्ट भोजन और दसों इन्द्रियों को सुख देने वाले भोगों की इच्छा होती है। परन्तु इन बाहरी पदार्थों से यथेष्ट सुख प्राप्त नहीं होता, इनका सुख च्रण भंगुर है। कारण यह कि सुख और ज्ञान की इच्छा अन्तर में जीव को होती है और यह सब सामग्री च्रण भंगुर है। भला च्रण भंगुर सामिग्री से अन्तःकरण को स्थाई सुख कैसे मिल सकता है। इसकी खोज कैसे हो? इसकी खोज अन्तर में ही करनी चाहिये। अन्तर में दृष्टि कैसे पहुँचे? इस प्रश्न का उत्तर और इस शंका का समाधान महाभारत, भागवत, योगवशिष्ठ और देवकृत, ऋषि मुनि कृत महाग्रन्थों तथा वेद शास्त्र आदि पुस्तकों में दिया हुआ है। उनके अवलोकन, श्रवण, मनन और अन्त में निधिध्यासन से मनोवृत्तियाँ अन्तर्मुखी होने से जो स्थिति वहाँ होती है और जो अनुभव होता है उसी का सुख और आनन्द सच्चा आनन्द होता है। बाहरी पदार्थों से उत्पन्न सुख स्थाई सुख नहीं होता कारण यह कि बाहर के बाहरी भोग तो रोग समान होते हैं। सर्व सुखों के देने वाली भगवान की भक्ति और स्वरूप का ज्ञान है। स्वरूप के ज्ञान से ही पता चलता है कि हमारा जीवात्मा भी उसी का अंश है। बल्कि अंश कहते भी नहीं बनता उसी का स्वरूप है और स्वरूप शब्द भी ठीक नहीं जँचता बल्कि—"वही है।"

(१५७) एक दिन बहुत से सत्संगियों ने सलाह करके विनय की, कि भागवत् सप्ताह की कथा होनी चाहिये। श्री महाराज ने फ़रमाया कि सत्सङ्ग

सर्वदा श्रेष्ठ है। अवश्य कराओ, परन्तु बात यह है कि भागवत् ऐसा ग्रन्थ नहीं जो हर एक को सुनाया जाये । उसके अधिकारी बहुत ही कम हैं। जिसको श्री कृष्ण भगवान् से पूरा प्रेम हो और जिसको उनकी लीलाओं के विषय में ज़रा भी शङ्का उत्पन्न न हो और पूरा निश्चय हो कि यह सब चरित्र और बातें संसार के कल्याण के लिये की गई थीं, उसी को यह ग्रन्थ सुनाना चाहिये। जब किसी मनुष्य का अन्त समय होता है तो चाहे वह कैसा ही दुराचारी हो, उसकी वृत्ति दुराचार से हट ही जाती है। और प्रत्येक मनुष्य उससे यही कहता है कि परमात्मा परमेश्वर का ध्यान करो और सब विषय वासना मोह आदि छोड़ दो। राजा परीच्छित जैसा बुद्धिमान भला जिसको सात दिन के अन्दर अपना मरण निश्चय हो गया था और श्री शुकदेव जी ऐसे त्यागी और विरक्त महात्मा उपदेश करने वाले तथा ऋषि मुनी महात्माओं की सभा क्या उसमें विषय भोग और बुराई के वर्णन करने का अवसर हो सकता है ? ऐसी सभा में तो सिवाय ज्ञान, विचार, वैराग्य और संसार से छुटकारा पाने वाले उपदेश के सिवा और क्या कहेगा । यही नहीं कितनी नासमझी और मूर्खता की बात है कि ऐसे समय में किये हुये उपदेश में मनुष्य की ऐसी नीच बुद्धि हो यह तो "बिल्ली को स्वप्न में छिछड़े" ही दिखाई देने वाली बात है। जैसी नीच प्रकृति मनुष्य की होती है वैसे ही उस के विचार होते हैं। उसको अच्छे कर्मों में भी बुराई ही दिखलाई पड़ती है । जिसका जैसा दर्पण होता है वैसा ही उस में मुख दिखलाई पड़ता है।

(१५८) एक व्यक्ति ने श्री कृष्ण जी की लीलाओं पर तर्क करते पूछा, कि उन्होंने अवतार हो कर ऐसे काम क्यों किये ?

श्री महाराज ने फरमाया कि जिस काम को आप बुरा समझते हैं ? उसका बारम्बार ध्यान और चर्चा क्यों करते हैं। इस से उस कर्म के संस्कार आप में पैदा हो जायेंगे। जब वह आप को पसन्द नहीं तो बिल्कुल उन की तरफ ध्यान ही मत दो। अच्छा या बुरा कैसा भी हो जो करता है वह जाने या जिसने किया है उस का फल वह भोगेगा । बहुत से कर्म हैं कि केवल आचरण करने के निमित्त हैं और बहुत से ऐसे हैं, कि जो आचरण करने के

लिये नहीं, परन्तु ध्यान करने के लिए हैं। जो भक्त श्री कृष्ण लीला से प्रेम रखते हैं, उन को भी ऐसी लीलाओं का आचरण नहीं करना चाहिए। उनके ध्यान मात्र से ही आनन्द प्राप्त करें नहीं तो भूल में पड़ जायेंगे और "चौबे जी छब्बे होने गये थे दुबे ही रह गये" वाला उदाहरण हो जायेगा।

श्री कृष्ण जी को भगवान और अवतार मान कर ऐसी शंका करना कितना अनुचित विचार है। किसी इन्जनियर ने बाल काटने की मशीन बनाई। जिससे नाई और दूसरे लोग बाल काटें, यदि उसने उस मशीन से स्वयं ही बाल काट लिये तो क्या अपराध हो गया। जब तक वह स्वयं उस को काम में लाकर न देखेगा तो उस की बुराई भलाई का पता कैसे लगेगा और जो त्रुटी उस में रह गई है या चलते चलते हो जाती है वह कैसे दूर कर सकेगा। जिस भगवान् ने ऊपर तक सारा माँस का शरीर बनाया है उसके लिये कैसी योनि और कैसा मुँह सब रचना समान है। यह भेद तो संसारी मनुष्यों की विषयावृत्त बुद्धि से ही प्रतीत होता है। जब गोपियाँ आई थीं, तो रास करने से प्रथम भगवान् ने उनको जो उपदेश किया था वह आपने नहीं पढ़ा। आजकल तो यह प्रथा हो रही है कि न आँख से देखे, न कान से सुने। सब को बन्द करके बुराई करने को मुँह खोल देते हैं और तर्क करने को ज़बान कतरनी की भाँति चलती है।

(१५६) एक दिन किसी सत्संगी ने विनय की, कि इस युग में सब ने धर्म कर्म छोड़ दिये हैं और लोग मनमानी कर रहे हैं ?

श्री महाराज ने फ़रमाया कि कर्म तो कोई छूटा हुआ दिखलाई नहीं पड़ता। सूर्य चन्द्र तक ठीक नियत समय पर निकलते हैं और नियत समय पर डूबते हैं। मनुष्यों के कर्मों का भी यह ही हाल है कर्मों का रूप बदल गया है सवेरे उठ कर आवश्यकताओं से निश्चिन्त हो कर हवन होता था उसके स्थान पर तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट, सिगार से धुआँधार काम लिया जाता है। सरकार कूड़ा करकट मैला आदि इकट्ठा कर के उस को भट्टी (Incinerator) में जलाती हैं। बजाय मेवा मिष्टान्न घी खीर के धूएँ के, अब देवताओं को मैले के धुऐं की धूनी दी जाती है। चरणामृत की जगह चाय और काफी ने

ले ली है। मुँह धोने की भी आवश्यकता नहीं रही । एक प्याला तो बिना मुँह धोये ही गट हो जाता है । स्वाध्याय में पहले देव कृत वेद पढ़े जाते थे फिर ऋषि कृत शास्त्र पुराण की बारी आई। अब मनुष्य कृत अखबार की बारी आई है जिसमें कम से कम आधा झूठ तो होता ही है। सुबह उठने के साथ ही लोग अखबार बेचने वाले की ऐसी प्रतिक्षा करते हैं जैसे भक्त भगवान् की। पितृ-यज्ञ में माता-पिता की सेवा पूजा और खिलाने पिलाने के बजाय सास, ससुर, साला, साली, सलहज की आवभगत और मनुहार होती है मन्दिरों में मूर्त्ति के दर्शन के स्थान पर सिनेमा देखा जाता है। थियेटर में मनुष्य तो काम करते थे अब सिनेमा में वह भी उड़ा दिये गये। गऊ ग्रास निकाला जाता था वह भी बन्द हो गया और बन्द भी क्यों न हो। गाय ही नहीं रही तो खिलायें किस को। मुहल्ला भर ढूँढ़ो तो शायद ही किसी पुराने विचारों वाले के घर गाय मिलेगी। भूत यज्ञ अलबत्ता बड़े जोर शोर से रचाया जाता है । एक कुत्ता छोड़, चार कुत्ते पले होंगे। उनको साबुन लगा कर नहलाना धुलाना रातब आदि की तैयारी। जाड़े में कपड़े के बिना चाहे माँ बाप ठिठर कर मर जायें परन्तु कुत्ते के लिये ऊनी गद्दी बनेगी। माता-पिता गुरू के चरण छूने के बजाय सुबह ही सुबह कुत्ते की टाँग उठा देखी जाती है कि कहीं कलेली तो नहीं चिपट गई हैं । माथे पर तिलक लगाने को चन्दन घिसने का अवकाश नहीं, परन्तु जूते पर स्याही दिन में दो बार नहीं तो एक बार अवश्य होगी।

(१६०) एक दिन इर्शाद हुआ कि (१) जो बड़े बूढ़ों के हितकारी बचन नहीं मानेगा वह नष्ट हो जायेगा। स्वामी माता-पिता और गुरू की आज्ञा पालन करनी चाहिये। (२) विद्या से धीरता, धन और मान प्राप्त होता है । कुल की उत्तमता और शोभा विद्या हीन नहीं बढ़ा सकता । विद्या उसी को कहते हैं जो खोटे कर्मों से बचाये। (३) कम खाने से रोग और दोष शान्त होते हैं और कम बोलने से झगड़ा रगड़ा शान्त होता है । जीवन की रक्षा परम धर्म है। (४) कोमल वचन और सत्कार सब की शोभा बढ़ाता है और धनवान को अधिकतर, धन्यता और सन्तोष से पदार्थ प्राप्त होते हैं और कार्य सिद्ध होता है। जो कर्म ईश्वर अर्पण करता है उसको मन वाँछित फल प्राप्त होता है। क्षमावान मनुष्य के बैरी भी उससे हित करते हैं। मूर्खों की संगत से नर्क वास अति उत्तम

है। (५) व्यवहार की शुद्धता से कभी हानि नहीं होती और प्रसन्न मुख होने से कार्य की सिद्धि होती है और मित्र बढ़ते हैं। मनुष्य उससे प्रेम करते हैं जो खोट और अपराध हो जाय उसे मान ले, अस्वीकार नहीं करे। (६) झूठ सर्वदा निन्दक है। झूठा मनुष्य सच्च भी बोले तब भी उसका विश्वास नहीं करते। जब तक स्वयं निर्णय न कर लो दूसरे के कहने से किसी के दोष को सच्च मत मानो। बुद्धिमान मनुष्यों की सम्मति से कार्य करने से कभी लज्जित नहीं होना पड़ेगा। भोजन और वस्त्र परिमित होने चाहिये। स्वामी सर्वदा स्वामी है और सेवक सर्वदा सेवक है। स्वामी के अधिकार को ध्यान में रखे। (७) खोटे विचारों से मन और बुद्धि बिगड़ते हैं और खोटे वचनों से जिह्वा दूषित होती है। (८) कीर्ति जीवन से भी उत्तम है। अपकीर्ति से मृत्यु अच्छी है। न्याय से धन की वृद्धि होती है और अन्याय से राज्य तक नष्ट हो जाते हैं। (६) जो वचन दो उसको पूरा करो। बैरी भी वचन पालक का मान और विश्वास करते हैं। (१०) घमण्ड मनुष्य को तुच्छ और लघु बना देता है। कटु वचन बैरी उत्पन्न करता है। "अपने मुँह मियाँ मिठ्ठू" बनने से मान की हानि होती है। वर्णसङ्कर से कभी हित की आशा मत करना। स्वरूप की सुन्दरता को देख कर यह धोखा मत खाना कि उसकी प्रकृति भी उत्तम है। बालकों की अधिक प्रशंसा करने से वह कुमार्गी हो जाते हैं। हाय-हाय लालच बुरी बला है। (११) इष्ट और अनिष्ट कार्य की यह परीक्षा है कि जो विषय भोग की वृद्धि करे वह अनिष्ट और जो ईश्वरीय ज्ञान की ओर ले जाये वह उत्तम कार्य है। (१२) जिनको स्वाध्याय प्रिय है जो बुराई को भलाई से मिटाते हैं, जो क्रोध को दबाते हैं और प्रश्न का ठीक उत्तर देते हैं, वह भद्र पुरुष हैं। (१३) समय के उतार चढ़ाव से जिसका चित्त नहीं घबराता उसको अति बुद्धिमान समझो। (१४) बिगड़े दोष और रोग में भोजन दोष और रोग को बढ़ाता है। अशुद्ध मन वाले का अति उत्तम विद्या बहुत बिगाड़ करती है। सच्ची भूख में भोजन करने से और क्षुधा शेष रहते भोजन बन्द कर देने से स्वास्थ्य ठीक रहता है।

(१६१) एक दिन इर्शाद हुआ कि—

बिना बैल खेती करे, बिन भइयन के रार।
बिन महरारू घर करे, चौदह साख लबार॥

अर्थात् बिना बैल खेती का काम ठीक नहीं हो सकता। जिसके भाई न हो और वह किसी से झगड़ा कर बैठे तो सहायता कौन करे और हानि उठाये। जिसके घर में औरत न हो वह गृहस्थी का सामान इकट्ठा करे और मकान आदि बनवाये तो व्यर्थ है।

(१६२) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि (१) सच्चा मित्र वह है जो शुभ कर्मों में सहायता करे और अशुद्ध से रोके। (२) धनवान को चाहिये मोहताजों को भोजन दे और अतिथि का सत्कार करे। (३) कुमार्गी पुत्र ६ अँगुलियों की भाँति होता है। काटो तो दुःख और रहने दो तो दोष। (४) जो मनुष्य अपने को सर्व जीव धारियों से न्यून मानता है और किसी जीव को नहीं सताता, यह गुण महात्माओं की संगत से प्राप्त होता है। (५) दाता और उदार पुरुषों के दोषों की मनुष्य गणना नहीं करते। (६) मित्र और अमित्र की परीक्षा आवश्यकता और प्रयोजन के समय होती है। (७) धर्मात्मा को धर्म और अधर्मी को धन जीवन से भी अधिक प्रिय होता है। (८) सज्जनों की संगत और उससे लाभ उठाना सर्वोत्तम है। (९) विद्या, प्रेम, उदारता और मुख की प्रसन्नता सज्जनों का गुण है। (१०) कम बोलने से मान सम्मान बढ़ता है। (११) प्रार्थना यही करनी चाहिये कि संसार भर का कल्याण हो। (१२) मित्रता के चार चरण हैं। मित्र को बुलाना मित्र के घर जाना। मित्र के घर भोजन करना और मित्र को खिलाना। मित्र को उपहार देना और उसके उपहार स्वीकार करना। अपना भेद मित्र से कहना और उसके भेद को अपने हृदय में रखना। (१३) पुत्र वही है जो पिता को नर्क से बचावे उत्तम पुत्र पिता के मन की बात समझ कर ही करता है। मध्य पुत्र पिता की आज्ञानुसार ही करता है। कनिष्ट पुत्र कहने पर भी नहीं करता।

(१६३) एक दिन इर्शाद हुआ कि इस संसार को दुःख का घर और दुर्गुणों का भण्डार समझने वालों का विचार उन लोगों से मिलता है जो इस बात से सहमत होते हैं कि फूल के वृक्ष में काँटे हैं वास्तव में परमात्मा ने संसार और संसार के कुल लोक सामान आराम और खुशी के लिये बनाये हैं। मनुष्यों को इस तरह से खुश होना चाहिये कि काँटों में भगवान् ने किस खूबी के साथ फूल लगाये हैं। ताकि फूल की रक्षा होती रहे और जो कोई उसको अज्ञानता से तोड़े उसके काँटे चुभें।

(१६४) एक रोज़ एक सेवक ने अपना स्वप्न सुनाया कि वह रात को किसी बहुत ही तंग रास्ते से चला जा रहा था जिसके दोनों तरफ धरती से बराबर ऊँची दीवार थी। वह रेल का रास्ता था पीछे फिर कर देखा कि रेल बड़े ज़ोर से सीटी देती चली आ रही है। उसको देख कर बायें हाथ की तरफ जो दीवार थी उस पर चढ़ने की कोशिश की; परन्तु हाथ पैर ऐसे फूल गये कि चढ़ा नहीं जाता था। जब रेल बहुत पास आ गई तो घबरा कर दीवार पर बाँया हाथ रख कर ऊँचा होकर फलांगने की कोशिश की। तो धड़ाम से पलंग से नीचे गिर पड़ा और दाँया घुटना टूट गया। आँख खुली तो कुछ न था। यह सुन कर श्री महाराज बोले कि गिरने का कारण ही अगर रेल थी तो झूठा था। पक्की ज़मीन पर पलंग से गिरना और घुटना टूटना प्रकट है। इसी तरह से इस संसार का कारण न होने से भी जगत और उसके दुख सुख प्रत्यक्ष प्रतीत होते हैं।

(१६५) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि दूध और पानी सहज में मिल जाते हैं परन्तु दूध को मन्थन करके मक्खन या दूध का दही जमा कर उसको मथ कर मक्खन निकाला जाये तो मक्खन या लौनी पानी में नहीं मिलता, बल्कि उसके ऊपर तैरने लगता है। इसी प्रकार लगातार अभ्यास से जब मन को संसारी विषयों से हटा कर परमात्मा में लगा दिया जाये तो फिर चाहे घर में रहो या जंगल में बसो, वह मन संसार में नहीं मिल सकता।

(१६६) एक सेवक के बारे में किसी सत्संगी ने अर्ज़ किया कि वह बहुत ही बुद्धिमान और परोपकारी है। सबको अच्छी सलाह देता है। लोग उसका बहुत सत्कार करते हैं। मगर बात ज़रा सख़्त और कड़वी कह देते हैं। श्री महाराज ने फरमाया कि चन्दन में ऐसे गुण होते हैं कि देवताओं, भक्तों, सन्तों पुजारियों और भजनानन्दी पुरुषों के माथे पर चढ़ता है और बहुत से गुण उसमें होते हुए भी घिसने में कड़ा और स्वाद में कड़वा होता है। परन्तु यह सख़्ती और कड़वापन उसके गुणों को घटा नहीं सकता। वह सच्ची बात कहते हैं और आजकल सच्ची बात बहुत कम मनुष्यों को पसन्द आती है। क्योंकि सच्चे आदमी हैं ही कम।

(१६७) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि जहाँ काम नापा जाता है वहाँ से हुनर चला जाता है। जहाँ वस्तु नापी जाती हैं वहाँ से बरकत उठ जाती है। जहाँ मनुष्यों का सौदा होता है, वहाँ से सुख उठ जाता है और दुख विराजमान होता है। जब धन जोड़ने की लगन मनुष्य को लग जाती है, तो प्रेम उससे दूर भाग जाता है। वह तड़क भड़क दिखावे को और मान बड़ाई को पसन्द करता है। शादी-विवाह प्रेम प्रीत से नहीं होते, न ही हर कन्या का बराबर का जोड़ देखा जाता है। लेन-देन के धन्धों में बूढ़ों के पाले पड़ जाती है, उम्र भर दुख पाती और पछताती है। अक्सर धर्म भी खो बैठती है। जहाँ और जब ऐसा होगा वहाँ खुशी और आनन्द न होगा। परस्पर प्रेम न होगा। जलसों में न आनन्द होगा न रौनक। पुण्य, धर्म मूर्खता समझे जायेंगे। अतिथि सत्कार व्यर्थ खर्ची कहलायेगी। हर बात चालाकी की होगी। मनुष्य सर्प रूप होकर वगैर किसी बात के दूसरों को जान से मारे वगैर चैन न लेगें।

(१६८) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि आत्मिक जीवन और आत्मिक उन्नति को मनुष्य भूल गये हैं परन्तु सांसारिक कामों में बड़ी हलचल मच रही है। मनुष्य अपने संसारी बन्धन और तकलीफों को बहुत समझने लगे हैं। संसारी उन्नति की तरफ बड़ा ध्यान है। स्वतन्त्र राज मिटा-मिटा कर प्रजा राज बनते जा रहे हैं। स्त्रियाँ पुरुषों के समान अधिकार लेने में तुली हुई हैं। मज़दूर अपनी ताकत और कीमत से वाकिफ हो कर मेहनत के तमाम रास्ते अपने हाथ में लेना चाहते हैं। अछूत और कुचली हुई कौमें अपने आराम और अधिकार का दावा कर रहे हैं। परतन्त्र कौमें स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए जान हथेली पर रखे हुए हैं। परन्तु मुल्की और सामाजिक स्वतन्त्रता मनुष्य की पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं। मनुष्य को चाहे कितना धोखे में रखा जाये वह हमेशा धोखे में नहीं रह सकता पाप कर्मों से जो मन बुद्धि और चित्त तपायमान हो रहे हैं और अन्तरात्मा की फटकार पड़ रही है, उससे भी यह जीव बचना चाहता है। सारी प्रकृति मनुष्य को जगाने में तत्पर है। आँधी के झोंके, बिजली की कड़क, भूकंप की हलचल, सूर्य की चमक, दुख की चोट मनुष्य को हिला-हिला कर जगा रही है क्योंकि माया की सजावट सुन्दरता बिना मनुष्य की जागृति के किस काम की। इसका देखने वाला कौन है। यह चन्द्रमा,

सितारे, झरने, पर्वत, बाग़ बग़ीचे सब सुनसान हैं। मनुष्य ही प्रकृति की शान और बड़ाई को देखता है। उसकी नन्ही सी आँख के बगैर आकाश की अनन्तता और प्रकृति के नये से नये नज़ारे बेकार हैं। ईश्वरी नियमों के अन्तर्गत मनुष्य की अन्तर शक्ति को जगाने के लिए दुख और मौत तक से काम लिया जाता है। कई मनुष्य यहाँ तक जागे हुए हैं कि जिस पृथ्वी पर उन्होंने जन्म लिया है उसको तोल और माप लिया है। सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रों तक के माप तोल कर लिए हैं। बिना तार के पृथ्वी के एक सिरे से दूसरे सिरे तक खबरें राग रंग तक सुना दिये हैं। यह सब काम जागे हुए मनुष्यों ने करके उस अनन्त आत्मा के गुण और शक्ति को हर मनुष्य को दिखला, जतला और सुना दिया है।

(१६९) एक रोज़ एक सत्संगी ने अर्ज़ किया कि सत्संग की बड़ाई कथा वार्त्ता में सुना करते थे; परन्तु अब मैंने अपनी आँखों से देख ली, फलाँ आदमी किस कदर झगड़ालू, धोखेबाज़ और मुकदमेबाज़ था। अपने घर में हमेशा झगड़ा रखना, कुटुम्ब में जूत पैज़ार चलवाना, मौहल्ले में सर फटवाना, उसके बायें हाथ के कर्त्तव्य थे। किसी को पुलिस में धरवा दिया, किसी पर मुकद्दमा चला दिया। रास्ता चलते-चलते झगड़ा खड़ा कर दिया। बस यही दिन रात उसका कार्यक्रम था। जब से सत्संग में आने लगा है, दो तीन वर्ष के अन्दर ही ऐसी बातें करने लगा है कि उसकी पहली बातें सोच कर अचम्भा सा होता है। उसने लोगों के वर्षों के झगड़े मिन्टों में मिटा दिये। मगर फिर भी जब कभी अपनी पुरानी गुण्डेबाज़ी में जा मिलता है तो कुछ न कुछ उपद्रव कर ही देता है। श्री महाराज ने फ़रमाया कि आरा और बसूला चीरने और फाड़ने के लिये बनाये गये हैं। स्वभाव से तो वह चीड़ फाड़ का ही काम देते हैं; परन्तु जब बुद्धिमान कारीगर के हाथ आ जायें तो लकड़ी के अलग-अलग टुकड़ों या टूटे हुए भागों को काट छील कर और खांचा दे कर मिला देते हैं और उसे एक कर देते हैं। इसी तरह सत्संग और सज्जन पुरुषों की संगत से खोटी प्रकृति वाले मनुष्य भी सुकृत और अच्छे काम करने लग जाते हैं।

(१७०) एक रोज़ यह इर्शाद हुआ कि इन्सान ऐसा सुख चाहता है जिससे बढ़ कर और कोई सुख नहीं। ऐसा प्रकाश चाहता है जो अंधेरे से परे

हो। ऐसा जीवन चाहता है जिसकी मृत्यु न हो, ऐसी स्वच्छता चाहता है, जो पाप रूपी दाग़ से दूर हो, ऐसा धन चाहता है जिसमें कोई कमी या परिवर्तन न हो। पशुओं में यह इच्छा प्रकट रूप से नहीं पाई जाती। उनकी सिर्फ शारीरिक आवश्यकता तक होती है। मनुष्य का शरीर अति लघू और कोमल है, मगर चाहता है कि मैं बड़े से बड़ा और ऊँचे से ऊँचा हो जाऊँ। पेट को तो सिर्फ खाने की इच्छा है, मगर उसकी धुन सितारों में अपनी वास्तविक खुराक तलाश कर रही है। उसका दिमाग़ सारी दुनियाँ का इतिहास लिखना चाहता है। वायु में सांस ले कर उसकी तसल्ली नहीं होती यह तो वायु मण्डल में उड़ कर सर्व व्यापक होने का इच्छुक है। एक मकान में आराम पाने से पेट नहीं भरता। दुरबीन और खुर्दबीन की सहायता से इस संसार और सितारों के फैलाव, गहराई, ऊँचाई देखने को बेचैन हो रहा है। इन बातों से साफ प्रकट है कि मनुष्य सीमा बद्ध हो कर भी सीमा से पार होना चाहता है। उसको सीमा के अन्दर शान्ति नहीं उससे परे की इच्छा है। यही इच्छा मनुष्य के धर्म की इच्छा कहलाती है। अनन्त आत्मा को पाना ही मनुष्य का धर्म है। इसी से बेहद बड़ाई, शक्ति और आनन्द प्राप्त होता है, परन्तु जब उस आत्मिक इच्छा को पशु जीवन में पूरा करना चाहता है तो उस पर बड़ा कष्ट आता है तब यह धन, जायदाद इत्यादि से बड़ाई और दूसरों को अपने अधिकार में लाने की इच्छा करता है, और इन्द्रियों की पूर्त्ति के लिए अधिक से अधिक आनन्द की तलाश करता है तो उसकी गिरावट की कोई सीमा नहीं रहती। पशु और बनस्पति से भी नीचे गिर कर दुख का शिकार होता है। पशुओं की इच्छा भी सीमित है और उनके परिश्रम की भी एक सीमा है; परन्तु मनुष्य जब पशुओं की इच्छाओं में बेहद को पाना चाहता है तो वह तरह-तरह के हीले, खुशामद, डर, और दबाव से सब चीज़ें प्राप्त करने और लोगों को अपने नीचे लाने की कोशिश करता है। क्योंकि सब लोग यही चाहते हैं इसलिए आपस में सख्त गाली गलौज शुरू हो जाती है। हर एक मनुष्य दूसरे से भयभीत दृष्टि आता है और राग और द्वेष की अग्नि में जलता है। चिन्ता और क्रोध का शिकार होता है। जीवन का यह नियम नहीं कि हर एक मनुष्य सब मनुष्यों के विरुद्ध हो और सब हर एक व्यक्ति से विरुद्धता रखें।

(१७१) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि मूर्खता को मिटाने के लिए विद्या की

आवश्यकता है और जरूरतें पूरी करने के लिए धन की आवश्यकता है, अपनी रक्षा के लिए बल की आवश्यकता है। इसलिए जहाँ तक हो सके विद्या का उपार्जन और धन का संग्रह करें, और बलवान बने, परन्तु इन तीनों में बड़ी भारी शक्ति है जैसे तलवार से किसी को मारा भी जा सकता है और अपनी रक्षा भी की जा सकती है। इसी तरह विद्या धन और बल से अच्छे और बुरे दोनों तरह के काम किये जा सकते हैं।

विद्या से बाद विवाद करना, धन से मद करना और बल से दूसरों को पीड़ित करना यह कुटिल व्यक्ति करते हैं और साधू जन इस से विपरीत विद्या से ईश्वरीय ज्ञान, धन से दान, और बल से पराई रक्षा करते हैं। इन में एक भारी अन्तर यह है कि काम में लाने से धन और बल घटते हैं, परन्तु विद्या बढ़ती है। मगर मक्कार और चालबाज मनुष्यों की विद्या दूषित हो जाती है। इस लिए जिन कर्मों से बल और धन का नाश हो उनका त्याग करे, धन और बल को संग्रह करें। बचाया हुआ धन मनुष्य को, उसकी गृहस्थी और कुटुम्ब को, तथा समय पर उसके देश को दुःख से बचाता है और सच्चा सुख पहुँचाता है। झूँठे मित्र और खुशामदी टट्टू जो दूसरों का धन लुटवाते हैं, वह डाँकुओं से भी अधिक भयदायक हैं। धन और बल की बचत का कारण साधारण जीवन है। सुस्ती, आलस्य आराम-तलबी और ऐशो इशरत की जिन्दगी इन दोनों की बैरी है। बहुत से भोजन जिनका स्वास्थ पर बुरा असर होता है इस लिए खाये जाते हैं कि वह स्वादिष्ट हैं। बहुत से कर्म जिन से स्वास्थ खराब होता है इस लिए बारम्बार किये जाते हैं कि उनमें आनन्द आता हैं। इन कर्मों में धन और बल दोनों नष्ट होते हैं। जिन देश वासियों या जातियों का साधारण जीवन है और अपने प्राकृतिक आचार से रहते हैं और पुराने चलन के पाबन्द नहीं उनकी सेहत भारत में ही देख लो। सरहद के स्त्री पुरुष, हरयाना के मनुष्य, जटवारे के लोग, मेवाती, सम्यारी, पूर्वीय उनमें से सिवाय खास खास के, सब की स्त्रियाँ घर का सब धन्धा आप करती हैं। बर्तन माँजती हैं, दूध बिलोती हैं, कूँए से पानी खीचती हैं, बुहारी देती हैं, उनके भुजदण्ड पुरुषों के समान पुष्ट

होते हैं। इसी तरह से परिश्रम से काम करने वाले मर्दों को देख लो, ऐसे सुखी और स्वस्थ मनुष्य मिलेंगे। रेशमी, बनारसी और कीमखाब बेचने वाले बजाज़, तरह तरह की मिठाई बेचने वाले हलवाई, नाना प्रकार के मेवे की दुकानें, फ़ैशन की, बिसाती और सौदागरों की दुकानें, कीमती सामान बेचने वाले, मिलटरी और सिविल दर्जी, सोडा, बर्फ़, शर्बत की दुकान, भंग, चरस, चन्डू, शराब के ठेके, मुफत-खोरे यार, सिनेमा और ठेठर, बटेर बाज और वेश्याओं के अड्डे, वकील और नीम हकीम यह सब जेबकट डाकू और स्वास्थ को बिगाड़ने वाले और सुख को मिटाने वाले हैं।

(१७२) एक रोज इर्शाद हुआ कि मनुष्य के हृदय में सब चीजों की अपेक्षा धर्म के लिए अधिक मान है। वह धर्म के लिए अपनी बुद्धि, अपना धन और प्राण तक भेट करने को तत्पर हो जाता है, परन्तु आजकल धर्म को कुछ का कुछ बना लिया है। खास-खास मनुष्यों पर, किताबों पर विश्वास लाना, जैसे वेद, कुरान, अंजील पर और खास मसलों (महापुरुष का वचन) में निश्चय रखना जैसे ईसाइयों के नियम के अनुसार खुदा ने अपने बेटे को पृथ्वी पर भेजा। मरने के पश्चात् स्वर्ग, नर्क और फिर पुनर्जन्म होता है, या पुनर्जन्म नहीं होता। खास खास रसमें अदा करना जैसे निमाज, यज्ञ, बपतस्मा यही धर्म कहलाते हैं। मनुष्य के अन्तःकरण के यह बड़े पहलू हैं। (१) ज्ञान से सब चीजों को जानता है (२) भाव से भले बुरे सम्बन्ध निश्चय करता है। (३) इच्छा से उनके साथ यथा योग्य बर्ताव करता है। सच्चा और पूरा धर्म वही है जो इन तीनों पहलुओं में पूर्णता दिखलावे और इन तीनों अवस्थाओं में उस अनन्त आत्मा का दृश्य नजर आये। द्वैत ही सारे पापों का मूल है। घृणा, द्वेष सर्वदा दूसरों के लिये होता है। अपने गन्दे जिखम और अपने मल से भी घृणा नहीं होती। द्वैतता ही हमारा अन्त बतलाती है। जब मनुष्य का हृदय प्रेम से पूर्ण हो जाता है तो उसमें घृणा और द्वेष समा ही नहीं सकते। जब सब कुछ आत्मरूप अपना आप दिखाई देने लगता है तो किससे घृणा करें और किस से द्वेष करें। जब मनुष्य अपनी जाति, देश या धर्म के लिए भी कोई ऐसा कर्म करता है जिससे दूसरों के लिए बुराई हो तो उसकी इच्छा में भी आत्मिकता नहीं प्रकट होती, बल्कि महान् पशुता दिखलाई देती

है। ब्रह्माण्डी प्रेम के अतिरिक्त धर्म कुछ अर्थ नहीं रखता। अपनी आंतरिक आँख से स्वार्थता का पर्दा हटाना पड़ जाता है तब आत्मिक ज्ञान प्रकट होता है। स्वार्थता हमें संसार के लिए और संसार को हमारे लिय बेगाना बनाती है। संसार के अर्थ हैं अनन्त आत्मा का प्रकाश, और प्रकाश हमेशा अन्धेरे में छुपा हुआ होता है। इसी तरह से स्वार्थता न होती तो ज्ञान, प्रेम और नेकी का प्रकट होना ही असम्भव था। स्वार्थता कुदरती और जरूरी है परन्तु बढ़ाने के लिए नहीं बल्कि घटाने के लिए।

(१७३) एक रोज इर्शाद हुआ कि यह मान, बड़ाई, दम्भ, स्वार्थ और अपनी जाति, अपना मान, अपना स्वार्थ और अपना नाम ही है जिसने बड़े बड़े महात्माओं, बुजुर्गों और पैगम्बरों को धोखे में डाल दिया है। यह सब भेद भाव इसी स्वार्थ, दम्भ का डाला हुआ है। समस्त संसार के धर्मों के वास्तविक नियमों में से देश काल पात्र और राजनीति की बातों को अलग करके तुलना की जाये तो करीब-करीब मिलते जुलते होगें। यदि भेद हुआ भी तो नाम मात्र रह जायेगा। यही इच्छा बड़े-बड़े राज्य और कौमों की आपस में मार काट का कारण है। अपने अधिकारों के समान दूसरों के अधिकार का भी ध्यान रखा जाय तो झगड़े-टंटे हों ही नहीं। परन्तु जाति अभिमान और स्वार्थ ऐसा होने नहीं देते। बात की बात रखने के लिए जूए में लाखों की हार हो जाती है। पतंगबाज़ी, कबूतरबाज़ी, बटेरबाज़ी, मुर्गे और भैंसे लड़ाना, यह सब मान बड़ाई के लिए होते हैं। यह ही नहीं कि यह काम किसी खास देश में होते हैं। समस्त संसार में पढ़े लिखे और सुलझे हुए मनुष्य भी ऐसा ही करते दीख पड़ते हैं। किराये की सवारी पर बैठा हुआ मनुष्य यही इच्छा करता है कि मेरी सवारी और सवारियों से आगे निकल जाये। माँगे हुए और किराये पर लिए हुए कपड़े और ज़ेवर पहन कर भी मनुष्य अकड़ कर चलता है और साथियों में बैठ कर घमण्ड करता है कि मेरे कपड़े सबसे अच्छे हैं। सिपाही का जोश और मारकाट, बदमाश की गालियाँ, क्रोधी का क्रोध, जुआरी का पासा, जानवरों की लड़ाई की पाली, बालक की ज़िद, स्त्री हठ, राजहठ, धर्म पक्षपात, शराफत का जोश, एक जाति की दूसरी जाति को मिटाने की कोशिश, एक धर्म का दूसरे धर्म को पैरों तले कुचलने का प्रण, एक राज्य का दूसरे राज्य को नष्ट भ्रष्ट करना यह

मनुष्य की इस इच्छा का परिणाम है। जो शान्ति चाहते हैं उनको चाहिए कि इस इच्छा को अपने हृदय, अपने देश, अपनी जाति, अपने धर्म और अपने घर से निकाल कर बाहर कर दें, जब तक ऐसा न होगा शान्ति असम्भव है।

(१७४) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि (१) नीच से मांगना नर्क से भी बुरा है। (२) जो धर्म और सत्य को छोड़ देता है उससे कोई पाप नहीं बचता। (३) अपना यहाँ कुछ नहीं है और न आप ही अपने हैं। (४) जब मनुष्य जीवन यात्रा के उत्तम स्थान पर हो तो पीछे फिर कर देख ले कि मृत्यु भी धीरे-धीरे चली आ रही है। (५) कुसंग ही का नाम नर्क है। (६) युवा अवस्था की बेलगामी ऋण है जिसको बुढ़ापा सूद समेत चुका देगा। (७) निठल्लेपन का गया हुआ समय फिर हाथ नहीं आ सकता। (८) समस्त कर्म ऐसे करो कि यह अपने जीवन का अन्तिम दिन है। (९) झूठी साक्षी देने वाला अपने धर्म से दूसरे की सम्पदा खरीद देता है। (१०) सुस्त और बेकार रहना जिन्दा न रहने के बराबर है। (११) बेकार का दिमाग शैतान का कारखाना है। (१२) जीवन को सुफल बनाने के लिए कर्म करते ही रहना चाहिये। (१३) बेकारों के सिवाय सब नेक हैं।

(१७५) एक रोज किसी साहब ने शिकायत की, कि आजकल मित्रता तो बिल्कुल मिट गई है। ढूढ़ने से मित्रता का पता नहीं मिलता। श्रीमहाराज ने फरमाया कि बेशक अगर आपको ऐसे मित्र की जरूरत है कि जो तुम्हारी सेवा करे और आवश्यकता के समय काम आये तो ऐसे मित्र तो बहुत कम ही हैं, परन्तु ऐसे मित्रों का घाटा नहीं जिनकी सेवा आप करो और समय पर उनके काम आओ।

(१७६) एक रोज एक साहब किसी धर्म की बुराई करने लगे। श्रीमहाराज ने फरमाया कि जब तक मनुष्य आप किसी चीज को ग्रहण नहीं करता उस समय तक ही वह उस वस्तु की बुराई करता है। मगर जब आप उसको ग्रहण कर लेता है तो तमाम दोष उसके मिट जाते हैं और गुण प्रकट होने लगते हैं। गैर जबान, गैर लिबास, गैर मजहब, गैर रस्मोरिवाज लो, जब उनमें से मनुष्य किसी को आप ग्रहण कर लेता है फिर सब दोष दूर हो

जाते हैं और गुण सामने आ जाते हैं। हजारों दलीलें उनके अच्छे होने की सूझ जाती हैं और बड़े जोर शोर से उनका वर्णन होता है।

(१७७) एक रोज किसी ने पूछा कि पंच यज्ञ क्या हैं और क्यों किये जाते हैं ? श्री महाराज ने फरमाया कि गृहस्थ में चूला, चक्की, ओखली, बुहारी, आदि कामों में कुछ न कुछ छोटे कीड़े मकोड़े मर ही जाते हैं। उस हिंसा को निवारण करने के लिए पंच यज्ञ बतलाया है। शास्त्रों में रोचक भयानक और यथार्थ तीन तरह के वचन होते हैं। कुल कर्मों की तह में वास्तविकता यह है कि स्वास्थ्य के नियम स्थिर रहें और जन सेवा इस लोक परलोक की होती रहे। जिस तरह इस लोक में रहते हैं उसी तरह और लोकों में भी हैं। उन सब का परस्पर सम्बन्ध है। (१) वेद का पढ़ना और पढ़ाना ब्रह्म यज्ञ कहलाता है। (२) तर्पण किये अन्न और जल से पितरों को तृप्त करना पित्री यज्ञ है। (३) आग में हवन करना देव यज्ञ है। (४) भूतों को बलि देना भूत यज्ञ है। (५) अभ्यागत का सत्कार करना मनुष्य यज्ञ है। इन यज्ञों के दूसरे नाम यह हैं। (१) अहूत यानि ब्रह्म यज्ञ जप करना। (२) हूत यानि देव यज्ञ हवन। (३) प्राहूत यानि भूत यज्ञ बलि देना। (४) ब्रह्महूत यानि मनुष्य यज्ञ ब्रह्मवेत्ता श्रेष्ठ ब्राह्मण की पूजा। (५) प्राश्चित यानि पितृ यज्ञ नित्य श्राद्ध।

(१७८) एक रोज इर्शाद हुआ कि ज्ञान की तीन अवस्थायें हैं स्थूल, सूक्ष्म और कारण (१) पदार्थों के वाह्य ज्ञान को इन्द्री ज्ञान कहते हैं। (२) पदार्थों के अन्दर आपस का सम्बन्ध यह अन्तःकरण से यानी बुद्धि आदि से होता है। (३) पदार्थों के अन्दर एकता जब आत्मिक शक्ति जागती है तो अन्दर के एक की रोशनी में सारी दुनियां एक जीवन दिखलाई पड़ती है। इससे पूर्ण ज्ञान का पद प्राप्त होता है। इसका फल यह होता है कि सब का दर्द अपना दर्द और सब की खुशी अपनी खुशी होती है और अपने विरोधियों के लिए भी प्रेम होता है। उस वक्त हर अवस्था में अपना आप देखता है। सब के साथ अपनी तरह प्रेम करता है। सब को अपना कर सब की भलाई करता है यानि अपने आपको सारे ब्रह्माण्ड को अपनी ही आत्मा और अपना ही प्रकाश समझता

है। ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय तीनों अपने अन्तर में देखता है। अन्दर बाहिर दोनों को अपने आश्रित पाता है। हर पदार्थ में चैतन्यता के साथ आनन्द लेता है। ज्ञान ब्रह्माण्ड को चैतन्य बतलाता है। भक्ति सारे संसार को भगवान का रूप देखती है। लेकिन खाली जानने और समझ बूझ से आत्मिक ज्ञान को पूर्ण समझ लेना भूल है। जब तक ज्ञान ब्रह्माण्डी प्रेम की सूरत नहीं प्राप्त कर लेता तब तक सच्चा ज्ञान नहीं कहलाया जा सकता। सच्चा ज्ञान मनुष्य को कर्म करने से नहीं रोकता। वह कर्म से स्वार्थता का विष निकाल देता है। जिस तरह माता के घर में प्रेम की एक बूंद उसे रात दिन कुटुम्ब की सेवा में लगाये रखती है उसी तरह जिस के घर में ब्रह्माण्डिक प्रेम प्रकट हो वह कैसे बेकार रह सकता हैं। वह संसार की अज्ञानता और कष्ट को देखकर बड़े उत्साह से कर्म करता है ज्ञान की कसौटी ब्रह्माण्डिक प्रेम है। सच्चे प्रेम की परख निस्वार्थ कर्म है। जिस प्रेम में कर्म न हो वह सच्चा प्रेम नहीं, उत्तेजना हो सकती है। आत्मिक शक्ति प्रकट होने पर अच्छाई करने के लिए पुरुषार्थ की आवश्यकता नहीं रहती वह स्वयं प्रकट होती है। जैसे सूर्य से प्रकाश और फूल से सुगन्ध। जहाँ ज्ञान, प्रेम और निस्वार्थ कर्म हों, उसमें आत्मिक उन्नति है, प्रेमी तो अपनी खातिर दूसरों को कष्ट देने की बजाय, दूसरों के लिए स्वयं कष्ट उठाता है। जब प्रेम से भरपूर हो कर घृणा, द्वेष, बैर आदि से बिल्कुल पवित्र हो जाये और सबकी भलाई में निःस्वार्थ होकर लग जाये तो समझ लो कि अन्तिम सीमा को पहुँच गया।

(१७६) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि धर्म की जड़ अन्तरीय प्रकाश पर है। किसी महात्मा या बुज़ुर्ग, या पुस्तक को हम अपनी बुद्धि से चुनते हैं। दूसरों से उनको अधिकता हम अपनी बुद्धि से ही देते हैं। धर्म के कुछ मूल भी होते हैं जैसे—

"दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान"

यह मूल या बुनियाद किसी महात्मा या पुस्तक पर निर्भर नहीं बल्कि अपने आन्तरिक प्रकाश पर है। दिमाग़ अनन्त है; परन्तु बुद्धि तत्त्व एक है जो सब दिमागों पर अपना प्रकाश दिखाती है। बुद्धि की निश्चित की हुई

सचाई सब जगह समान माननीय हैं जैसे "दो और दो चार" मगर धर्म के नियम पृथक्-पृथक् और बहुत से हैं । यह नियम ही मनुष्य जाति के पूर्ण संघठन में बाधक हो रहे हैं । धार्मिक धोखा इन्हीं नियमों के प्रकाशित करने में तत्पर है । और इन अनावश्यक नियमों को ही धर्म की मूल बतलाता है। संसार में झगड़ा बुद्धि के कारण से नहीं है बल्कि इन नियमों के कारण से है कि कौन सी पुस्तक आकाशवाणी और अनुभवी है। मनुष्य कैसे पैदा हुआ था मरने के बाद क्या होगा ? नियम के बर्तने के ढङ्ग पृथक्-पृथक् हो सकते हैं, परन्तु कानून एक ही होता है इसी तरह से धर्म एक ही है, देश, काल, पात्र, वाणी, रस्मोरिवाज के भेद से धर्म के नाम भी अलग-अलग रख लिये हैं जैसे सनातन धर्म, वैदिक धर्म, ईसाई, मुसाई, मोहमदी आदि जिससे अलग धर्म होने का धोखा होता है। शक से कभी डरना नहीं चाहिये। यह क्यों, ऐसा क्यों— जब तक इन बातों का पूरा उत्तर न मिले और मन उस उत्तर से सन्तुष्ट न हो जाये तब तक आगे चलना ठीक नहीं । श्रद्धा और विश्वास भी तब ही होगा जब मन किसी बात को गृहण कर लेगा। दो प्रकार के मनुष्यों के दिल में शक नहीं होता एक तो जिसमें निश्चय करने की बुद्धि न हो यानि निरा पशु हो। दूसरा वह मनुष्य जो सिद्ध हो गया हो और सचाई का अनुभव कर लिया हो। किसी एक पुस्तक या मनुष्य को ही पूर्ण और पाप रहित मान कर बैठ जाना भूल है। सर्वदा और सर्व देश में सचाई को ढूड़ना चाहिये । और जहाँ सचाई दीख पड़े पक्षपात छोड़ कर ग्रहण कर लेनी चाहिये। सन्त असन्त, ज्ञानी और मूर्ख में भेद गुणों के प्रकाश का है किस्म या जाति या आत्मा का नहीं; जो काम आज तक किसी ने किया है वह दूसरा भी कर सकता है बशरते कि वह ठीक प्रबन्ध पुरुषार्थ युक्ति और धैर्य से काम ले । बनावटी, मजहबी, जमायती या मुलकी नियम का पाबन्द होकर अपने जीवन के नियमों का पालन करना नहीं छोड़ना चाहिये । अपनी संस्था की आज्ञा पर दूसरों को कतल करने में अपनी बहादुरी नहीं समझनी चाहिये। किसी खास नियम और फिरके से सम्बन्ध करके अपनी वास्तविकता से बिछुड़ना नहीं चाहिये। शरीर के सम्बन्ध से अपने को सृष्टि का अङ्ग और आत्मा के सम्बन्ध से सब को अपना समझना चाहिये।

(१८०) एक रोज़ एक आर्य समाजी ने प्रश्न किया कि विधवा विवाह के बारे में आपकी क्या राय है ? श्री महाराज ने फरमाया कि ज़रूरत ईजाद की माँ है। जब किसी चीज़ की जरूरत हो तो उसमें राय का सवाल ही नहीं उठता। यदि बहुत भूखे प्यासे से कहा जाये कि भोजन मत करो या जल मत पियो तो क्या ऐसी राय से काम चल सकता है ? आजकल बहुत से साधुओं का तो यह सिद्धान्त है कि चाहे पुरुष हो चाहे स्त्री, चाहे विवाहित हों, चाहे अविवाहित जो भी हाथ लग जाये उनको सिर मुड़वाने की राय देते हैं। जिनको पहला विवाह ही पसन्द न हो उनको पुनर्विवाह की आज्ञा की क्या उम्मीद करनी चाहिये। यह बात तो किसी पण्डित, पुरोहित, नाई या विधवा आश्रम वालों से पूछिये, जिनको इससे लाभ होता है। अलबत्ता पहले विवाह के तो हम आग्रह के साथ मददगार हैं, फिर वह बोले कि शास्त्र का इसमें क्या प्रमाण है लेकिन पुराणों को मैं नहीं मानता। अलबत्ता श्रुति स्मृति में से कोई प्रमाण बतलाइये। श्री महाराज ने फिर फरमाया कि श्रुति में तो निवृति मार्ग और ईश्वर सम्बन्धी बातें हैं। पुनर्विवाह प्रवृत्ति मार्ग की चीज़ें हैं जिसमें स्मृति ही प्रमाण हो सकती है। मनुस्मृति के अ० ५ के १६२ वें श्लोक में लिखा है।

नान्योत्पन्ना प्रजाऽस्तीह न चाप्यन्यपरिग्रहे ।
न द्वितीयश्च साध्वीनां क्वचिद्भर्तोपदिश्यते ।।

इस संसार में पर पुरुष से उत्पन्न की हुई सन्तान यह दोनों ही की नहीं कहलाती, अर्थात् यह शास्त्र की मर्यादा नहीं है और साधू स्वभाव वाली स्त्रियों को किसी शास्त्र में दूसरा पति करने को कहा भी नहीं है, इसी कारण पूर्व श्लोक में पर पुरुष के संगम में निन्दा की और पतिलोक की प्राप्ति का निषेध किया है और इसी अध्याय के १५७-१५८ श्लोक का यह अर्थ है—शुद्ध कन्द, मूल और फलों को खा कर स्त्री अपने शरीर को कृश कर दे, किन्तु पति के मरे पीछे दूसरे पुरुष का नाम भी न ले, पतिव्रता स्त्रियों का जो सर्व श्रेष्ठ धर्म है, उसको चाहने वाली विधवा स्त्री मरण पर्यन्त, क्षमायुक्त, नियम पूर्वक ब्रह्मचर्य धारण करती रहे, आशय यह कि पुत्र के बिना भी पुत्र के निमित्त अन्य पुरुष से संगम न करें। इससे नियोग का भी निषेध प्रकट होता है और नवे अ० के ४८-४९ वें श्लोक का यह अर्थ है कि पिता के धन का पुत्रों में धर्म से विभाग

एक ही बार होता है, कन्या एक ही बार किसी को दी जाती है। धन का दान एक ही बार किया जाता है।

(१८१) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि अपने शरीर के सुख के निमित्त असीमित सामान एकत्र करने की चिन्ता अपूर्ण आत्मिक जीवन का चिन्ह है जो अपनी इन्द्रियों के लिये बेहद भोग चाहता है वह विषय भोग के पाप का भागी होता है। जो अपने शरीर को आराम देने की इच्छा से काम काज छोड़ बैठता है वह आराम तलबी और निठ्ठलेपन का भागी है। जो अपने लिये ही धन संचय करता है वह लोभी होता है। जो मादक द्रव्यों से शारीरिक या मानसिक सुख भोगता है वह नशेबाज़ी के पाप का भागी बनता है। ऐसा करने वाले सब प्रेम और पुरुषार्थ के जीवन से खाली रहते हैं। पापों से ही संसार में इतना दुख है। यह दुख ही एक दिन आत्म प्रकाश का कारण बन कर जीवन को सफल करेंगे। आत्मिक जीवन अपने विरुद्ध पदार्थों को आप ही पैदा करके अपने प्रकाश का सूत्र बनाता है। आराम तलबी से स्वास्थ्य बिगड़ता है और न ही भोजन में पूरा रस आता है। न और वस्तुओं में यह आनन्द प्राप्त होता है। हालाँ कि दूसरे मनुष्य इन प्रमादी जीवों के कारण से काम से पिसे जाते हैं। शारीरिक आवश्यकतायें जितनी कम हों उतना ही जीवन सुखी रहता है। जब ज़रूरतें हद से बढ़ जाती हैं तो शारीरिक और मानसिक सुख नष्ट हो जाते हैं। उचित बात यह है कि अपनी ज़रूरतों को कम करके अपनी चीज़ें दूसरों को देने का प्रयत्न किया जाये।

(१८२) एक रोज़ किसी ने पूछा कि कोई मूर्त्ति को ईश्वर मानते हैं, कोई ध्यान में ईश्वर रच लेते हैं इनमें वास्तविकता क्या है? श्री महाराज ने फ़रमाया कि मनुष्य जब अपने आपको स्थूल शरीर यानि अन्नमय कोष मान लेता है तो ईश्वर को भी स्थूल रूप ही समझता है जब कुछ जाग्रति बढ़ती है और अपने को शक्ति यानि प्राणमय कोष समझता है तो ईश्वर को भी सर्व शक्तिमान् मानता है और उसको शक्ति स्वरूप समझ कर उसका पूजन और चिन्तन करता है। जब मोह दूर होता है तो अपने को चेतन शक्ति और मनोमय कोष ख्याल करता है तो ईश्वर को अचिन्त समझता है। जब बुद्धि बढ़ती है तो अपने को बुद्धिरूप यानि विज्ञानमय कोष मानता है। उस अवस्था पर पहुँच कर ईश्वर को

भी सर्व व्यापक बुद्धि जानता है। जब सूक्ष्म बुद्धि से ऊपर उठ कर आनन्दमय कोष को प्राप्त होता है तो अपने शरीर को प्रेम और आनन्दमय चिन्तन करता है। इस अवस्था में ईश्वर भी पूर्ण आनन्द और सच्चिदानन्द अनुभव होता है। अपना जीवन तीन गुणों के कारण से तीन रूपों में दिखलाई पड़ता है। तमोगुण से मैं हूँ, रजोगुण से तू है और सतोगुण से वह है। उस समय जीव को जब आनन्द होता है और यह भी उसको अनुभव होता है कि यह गुण आनन्द सुख या चैतन्यता किसी बाहरी वस्तु से नहीं है बल्कि उसकी आत्मा का प्रतिबिम्ब है। इस कुल ब्रह्माण्डी जीवन के वृक्ष का अन्तिम फल मनुष्य है। इस पर उत्पत्ति, स्थिति और विनाश का कर्म पूरा होता है। जीव रूप से यह अन्तिम और पूर्ण सा प्रतीत होता है; परन्तु यही अनन्त व सर्व शक्तिमान है।

(१८३) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि पेड़ पौधे इस ख्याल से लगाये जाते हैं कि वह फलें-फूलें और दूसरों को सुख पहुँचायें। कुल संसार की भी इसी नियम पर उत्पत्ति हुई है कि इसमें हर जीव और हर चीज़ फले-फूले और दूसरों को सुख पहुँचाये। ऐसा जो देखता है कि शेर मृग को खाता है, बिल्ली चूहों को खाती है, यह ईश्वरीय नियम है; परन्तु उनके खाने से खाये जाने वाले जीवों का बिल्कुल नाश नहीं होता। लेकिन ईश्वरीय नियम के विरुद्ध जब मनुष्य शिकार आदि के लिये जीव हिंसा करता है या अपने खाने के लिये जीव हिंसा करता है तो इतनी अधिकता से करता है कि बहुधा ऐसे जीवों का बीज नाश कर देता है, और राज्य को उसकी रोक थाम के लिये नियम बनाने पड़ते हैं। इसी तरह अपना स्वार्थ पूरा करने के लिये मनुष्य अपने भाई बन्धु और दूसरे मनुष्यों की इतनी हानि करता है कि उनका फलना फूलना बंद ही नहीं हो जाता बल्कि जीवन तक नष्ट हो जाता है। बड़े-बड़े व्यापारी खाने पहनने के सामान अत्यन्त मँहगे कर देते हैं। राज्य बड़े-बड़े कर लगा कर धन खींच लेता है। इससे साधारण मनुष्य भूख, सर्दी, गर्मी और दुख से मर मिटते हैं। यह सब कर्म ईश्वरीय नियम के विरुद्ध हैं।

(१८४) एक रोज इर्शाद हुआ कि आत्म जीवन का आदर्श आत्म-उत्पत्ति की वृद्धि करना है। जिस बीज से यह संसार रूपी वृक्ष प्रकट हुआ, फिर उसी बीज रूप को धारण करने से मनुष्य जीवन सफल होता है। अपनी

नाशवान देही में अनन्त आत्मा का अनुभव करे और अंश के अन्दर अंशी को देखे। इसका कमाल किसी वस्तु की प्राप्ति में नहीं, बल्कि अर्थों में कमाल को पहुँचाना है। जैसे राज कुमार अपने पिता राजा की गोद में बैठा हुआ राजा के दूर देश और कोष का मालिक होता है। इसी तरह से अपने आत्म जीवन के दृश्यमान् होने पर सब ब्रह्माण्ड का स्वामी हो जाता है। अपने अहम् भाव के नाश होने से मैं 'वह' हूँ का अनुभव होता है। यह सब दृष्यमान जगत उसकी शक्ति है। पूर्ण मनुष्य पापों के ऊपर उठकर जीवन मुक्त हो जाता है, परन्तु ज्यादातर मनुष्य पशुओं की तरह भोग विलास का जीवन व्यतीत करते हैं। संसारी वस्तुयें एकत्र कर के मूर्खता से सुखी होने की आशा करते हैं। विषय भोग की अधिकता से तृष्णा और भी बढ़ती है। ज्ञानी का जीवन भोग के बजाय योग का होता है। वह अपने आप में सब कुछ वर्तमान देखता है और बाहिर कहीं अन्य चीज नहीं देखता। इसी में आनन्दित होता है। पशु जीवन में एक तरह का सकून (शान्ति) और मरदूदीयत (घिरावट) नज़र आती है। चिड़िया का बच्चा सँभलते ही अपने माता-पिता की तरह दाना चुगने लगता है और उन्हीं की तरह समय आने पर घोंसला बनाता और बच्चे पैदा करके उनकी परवरिश और खबरदारी करता है। पुश्त वा पुश्त उसके जीवन में कोई भी खास परिवर्तन या तरक्की नज़र नहीं आती। उसमें नये ताल्लुक (सम्बन्ध) पैदा करने की योग्यता ही नहीं दिखलाई देती। पशु पाप से बचे हुए और बेगुनाह हैं मनुष्य जीवन में ऐसी बात नहीं। इन्सान के अन्दर तबदीली, तरक्की और नई चीज पैदा करने की ताकत मौजूद है। उसकी बुद्धि नये से नये सम्बन्ध मालूम करती है। उसकी सोचने की ताकत नई से नई बातें निकालती है, उसके दिल में नई से नई उमंगें उठती हैं और बढ़िया से बढ़िया आदर्श उपस्थित करती हैं। यही कारण है कि पिता और पुत्र के मध्य कभी कभी हैरान करने वाला फर्क देखा जाता है। बाप स्वार्थी है तो बेटा ईसार (सहनशीलता) और कुर्बानी की मिसाल पेश करता है। इन्सान अपनी जिन्दगी में अजब तबदीलियां दिखाता है। सुबह तक रिश्वतखोर रहा, किसी बात या मिसाल से उसके दिल पर ऐसी चोट लगी कि शाम को वही व्यक्ति पश्चाताप के आँसू बहाता दिखलाई देता है और उस समय से ईमानदारी और नेकी की जिन्दगी व्यतीत करने का प्रण कर लेता है। चोर और डाकू एक

आन में बदल कर दयालू और परोपकारी सन्त बन जाता है। इस परिवर्तन का भेद मनुष्य की आत्मिक पैदायश में है। इसके लिहाज़ से उसकी ज़िन्दगी को भी तीन हिस्सों में देखा जाता है। पहली शख्सी ज़िन्दगी, जो जिस्मानी ख्वाहिशात और ज़रूरियात तक रहती है। ऐसा मनुष्य सिर्फ शरीर और धन की खातिर जीता है। अपनी ताकत, दौलत और खुशी बढ़ाने की गर्ज़ ही उसके कुल कामों की प्रेरक होती है उसका मज़हब भी खुदगर्ज़ी का होता है। वह मज़हब को भी दुनियाँ और परलोक में दौलत इज़्ज़त और खुशी हासिल करने का ज़रिया समझ कर कबूल करता है। वह जिस तरह दुनियाँ में अपनी स्वतन्त्रता चाहता है उसी तरह मरने के बाद भी मुक्ति का इच्छुक होता है। इस अवस्था पर इन्सान और हैवान में यही अन्तर होता है कि हैवानों की ज़रूरियात व ख्वाहिशात एक हद के अन्दर होती हैं मगर इसकी इच्छाओं की कोई हद नहीं होती। इसलिये वह खूंखार हैवान ही होता है। दूसरा सामाजिक जीवन की हमदर्दी हैवानी हद से बाहर निकल कर इर्द-गिर्द की ज़िन्दगी के साथ लगाव अनुभव करने लगता है। पहले अपने खानदान के साथ, फिर कौम मज़हब और देश के साथ एकता इख्त्यार करता है। फिर वह दौलत और इज़्ज़त के लिये नहीं जीता, लेकिन दूसरे देशों और जातियों पर वैश्याना ज़ुलम जारी रखता है। दुश्मनों की तबाही आत्मिक धर्म समझता है। तीसरा इसके बाद आत्मिक जीवन आरम्भ होता है। कुल ज़मीन को एकसा यानि अपना घर समझता है। और तमाम मुलकों को इसी घर के पृथक्-पृथक् कमरे अख्त्यार करता है। उसकी दृष्टि से अपने बेगाने और काले गोरे का भेद मिट जाता है। वह भगवान् को मुलकी, कौमी या मज़हबी ईश्वर नहीं समझता। उसके दिल में कुल इन्सानों को अपने देशीय या जातीय मज़हब में लाने की इच्छा नहीं रहती। वह संसार भर के बुजुर्गों को मनुष्य मात्र का बुजुर्ग समझता है और अपने देश की खास खूबियों पर फकर नहीं करता। बल्कि तमाम देशों और कौमों की सभ्यता को मनुष्य जीवन के अलग-अलग किस्म और अलग-अलग दर्जों के दृश्य समझता है। ज़ाति ज़िन्दगी में केवल शारीरिक सम्बन्ध सामाजिक जिन्दगी में मन के सम्बन्ध और आत्मिक जीवन में एक ईश्वर तक पहुँचता है। उसकी हमदर्दी छोटे-छोटे कीड़ों तक जा पहुँचती है और वह खुद धर्म हो जाता है और बाहर की इच्छा मिट जाती है।

(१८५) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि जब किसी पर बड़ा दुख पड़ता है या उसका कोई अज़ीज़ मर जाता है तो दूसरे मनुष्य उसके पास इसलिये आते हैं कि वह अकेला बैठ कर उस दुख पर सोच विचार न करता रहे, और उसको यही सलाह देते हैं कि काम काज में लग जाये। अकेले बैठे-बैठे दुख और रंज बढ़ता है। बल्कि बहुत सी जातियों में यह दस्तूर है कि किसी रिश्तेदार की मौत पर तीसरे दिन ही वह खड़े कर दिये जाते हैं या उनके उठावनी हो जाती है। ताकि वह उस वक्त से ही काम में लग जायें। इससे ज़ाहिर होता है कि दुख के दूर करने का और सच्ची ख़ुशी हांसिल करने का साधारण ढङ्ग काम में लगे रहने का है। परन्तु काम को सेवक और गुलाम की तरह से बुरे दिल से बेगार समझ कर न करें। इस तरह वह दुखदाई प्रतीत होता है। इसलिये स्वामी की हैसीयत से अपना काम समझ कर करें। जब काम में चित्त लगेगा तो चित्त के ठहरने पर आनन्द अन्तर में प्रकट होगा और निष्काम कर्म करने से वह ज्ञान की पदवी का अधिकारी होगा। सच्चे सुख का दूसरा साधन सन्तोष है। सन्तोषी सदा सुखी। दुनियाँ के भारी से भारी और ज्यादा से ज्यादा सामान भी पूरा सुख नहीं पहुँचा सकते। जब तक पदार्थों का पूरा ज्ञान नहीं होता उस वक्त तक राजा और रङ्क दोनों के बच्चे आपस में मिल कर ऐसे सुखी होते हैं कि वर्णन नहीं हो सकता। मिट्टी का घर बना लिया लकड़ी को टाँगों के नीचे दबा कर घोड़ा बना लिया। कोई खिलोना मिल गया, कोई फूल मिल गया बस वह इसी में ख़ुशी से उछल-उछल पड़ते हैं। किसी आपस की बात पर आपस में लड़ाई हो गई तो कुट्टी हो गई। जब खेलने का समय आया तो फिर मिल कर यारी हो गई। न आपस में डाह है न बोज़ (बदला लेना) है न रशक और न वैर। हमारे महा बुज़ुर्ग सनक, सनन्दन, सनातन, सन्तकुमार ने ईश्वर से लड़के ही बने रहने की प्रार्थना की थी, जवानी की उमंगें और विषयों की इच्छायें इस सच्ची ख़ुशी को कब देती हैं? और बुढ़ापे की चिन्ता, मोहमाया का जाल इस सच्ची ख़ुशी और आनन्द को मिटा देता है। ख़ुशी और आनन्द धन और सम्पदा पर निर्भर नहीं। परन्तु दिल पर है। जो कुछ भी मिल जाये उसी से जो बच्चों की तरह आनन्द पा सकता है और सादगी और सादा मिज़ाज़ी से रहता और सादा ख्याल का होता है वह सर्वदा ख़ुश रहता है।

(१८६) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि आत्मिक जीवन स्वयं सिद्ध है।

इसका प्रमाण माँगना ऐसा है जैसे कोई अपनी हस्ती का प्रमाण माँगे। इन्द्रिय, मन, बुद्धि, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, आवरण, स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर, पाँचों कोष सब इसी से जाने जाते हैं। हर एक चीज़ मुकाबले से जानी जाती हैं जैसे ज़मीन पर लोटा रखा दिखाई देता है। क्योंकि वह आस पास की चीज़ों से अलग है। आत्मा किसी से भी अलग नहीं। इसलिये उसका ज्ञान संसारी वस्तुओं की तरह नहीं हो सकता। हर एक मनुष्य में यह तीन तरह से प्रकट होता है। तामसी में अहङ्कार रूप से यानि मैं हूँ, राजसी में भक्ति रूप से यानि तू है और सात्विकी में ब्रह्म ज्ञान से यानि वही है। मनुष्य अपने आकार के लिहाज़ से ब्रह्माण्ड रूपी वृक्ष का छोटा सा फल है। परन्तु जब उसके अन्तर में आत्मा शक्ति जागती है तो यह छोटाई मिट जाती है। ज्ञानी पुरुष अपने आपको संसार में देखने के बजाय कुल ब्रह्माण्ड को अपने घट में देखता है। पशु दृष्टि अपने आपको दुनियाँ में देखती है। सारा ब्रह्माण्ड उसके लिये ग़ैर है। आत्मिक दृष्टि से सारा ब्रह्माण्ड घट में नज़र आता है और हर वस्तु को अपना ही ज़हूर और जलवा समझती है। देहाभिमानी कहता है कि मैं देह हूँ। दुनियाँ से पैदा हुआ हूँ उसी के सहारे जीवित हूँ और उसी की बदौलत बड़ा सुखी होऊँगा। आत्म ज्ञानी जानता है कि दुनियाँ मुझसे है मेरे सहारे है और मेरी बदौलत इतनी रूपवान् और रसीली है। सच्चा गवैया किसी मतलब से नहीं गाता, बल्कि राग का आनन्द जो उसके अन्दर भरा है, वह श्रवण में फैल कर कान के रास्ते अपने आप में समा जाता है। इसी तरह आत्मा से ब्रह्माण्ड रूपी वृक्ष प्रकट होकर फिर उसी आत्मा में लीन हो जाता है। जब दीपक की शक्ति अपनी ज्योति को और फूल अपनी सुगन्धि को अपने अन्दर बन्द नहीं रख सकते तो आत्मा अपने आनन्द और गुण को किस तरह अकेला और शून्य रख सकता है। बीज में विस्तार छुपा हुआ है। और इकाई प्रकट है। जब वृक्ष उगता है तो विस्तार प्रकट होता है और इकाई छुप जाती है मगर नष्ट नहीं होती। जब फल पकता है तो वृक्ष का फैलाव छुप जाता है और बीज इकाई रूप से प्रकट हो कर वृक्ष के फैलाव को अपने अन्दर छुपा लेता है। जगत् को सिद्ध करने की ज़रूरत नहीं। वह आँख से दिखलाई देता है, परन्तु उसके अन्दर जो परमात्मा छुपा है उसका पहचानना कठिन है। ज्ञान विद्या और बुद्धि का यही काम है कि जगत् और परमात्मा की एकता को

दर्शावे। बिजली, आग, धूप, प्रकाश, अंधकार सब में एक ही शक्ति काम कर रही है। वह शक्ति शब्द में कानों पर, रूप में आँखों पर, रस में जिह्वा पर, गंध में नाक पर और कठोरता में त्वचा पर प्रभाव डालती है । और शक्ति, माया, शरीर, अन्तःकरण, प्राण सब एक ही हैं। इनमें जो भेद दिखाई देता है, उसको समझने के लिये यत्न, चिन्तन और अनुभव की आवश्यकता है। उनके आपस के मेल और सम्बन्ध से ही उनका एक होना सिद्ध है। हाथ और पैर बिल्कुल अलग हैं मगर पैर में जब खुजली होती है तो हाथ अपने आप वहाँ पहुँच जाते हैं । इससे प्रकट है कि इन सब में एक ही जान है। दुनियाँ की कुल चीजों में मेल है वरना एक का दूसरे पर असर कैसे मुमकिन था। जानने वाला जीव और दृश्य जगत् भी एक हैं। अगर एक न होते तो एक दूसरे पर असर कैसे डाल सकते ? बालक को भूख लगना माँ के स्तन में दूध उतर आना, औषधियों का रोगियों पर प्रभाव, यह सब आपस के मेल के बगैर कैसे हो सकते हैं पदार्थों और उनके गुणों में मेल तो है मगर विरोधता नहीं है।

(१८७) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि लेख लिखना एक खास विद्या है जिसे साहित्य कहते हैं। अलङ्कार, रस, छंद आदि उसके अङ्ग हैं। कुछ लेख ऐसे लिखे जाते हैं जिसमें शब्दों की रचना ऐसी सफ़ाई से की जाती है कि या तो उसमें अलङ्कार रख दिखा जाता है या छंद आदि की सूरत में होता है या उसमें उपमान आदि की सूरतों में रस भर दिया जाता है, जिससे वह बोलने और सुनने में भले मालूम होते हैं । यह बात साधारण लेख में भी होती है और पुस्तक लिखने में भी। परन्तु उपमान आदि की अधिकता से और शब्दों की सुन्दरता से जो लेख रसीले बनाये जाते हैं जैसा कि हंसी, मज़ाक में ढाल-ढाल कर और उदाहरण दे-दे कर बातें कहीं जाती हैं। साधारण मनुष्यों को तो बहुत अधिक आनन्द आता है; परन्तु वह भी थोड़े समय के लिये,और बार-बार नहीं। बुद्धिमान् पुरुषों को तो शब्द विन्यास से बहुत ही कम आनन्द आता है। बहुधा तो आता ही नहीं, जैसा कि हंसी, मज़ाक में ढाल-ढाल कर और बना-बना कर बात कही जाती है ।

(१८८) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि सात्त्विकी प्रकृति के मनुष्यों का लेन-देन का व्यवहार और करीब-करीब हर मामलों का दिलों में ही फैसला हो

जाता है। "हिसाबे दोस्ता दर दिल" मित्रों का हिसाब दिल में। राजसी प्रकृति के मनुष्यों का व्यवहार बातों में तय होता है। मैंने तेरे लड़के के विवाह में इतने रुपये दिये थे, तैने इतने कम दिये; क्यों दिये—उतने ही देने पड़ेंगे। तामसी प्रकृति के मनुष्यों का व्यवहार हाथ, लात, लेतड़ा और लठ से तय होता है। ज़रा बात मुँह से निकली और दूसरे ने गाली-गलौज आरम्भ की और मार पिटाई होने लगी। ज़रा बात सुनने समझने की न अकल होती है और न फ़ुरसत। तड़ाक फड़ाक जूता उछलने लगता है।

(१८६) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि तीन चीजें मनुष्य को पकड़तीं हैं। दौलत, घर वाले और कर्म। पहली तो मरते दम तक साथ देती है। दूसरे मरघट तक जाते हैं। तीसरे मरने के बाद भी पीछा नहीं छोड़ते।

(१६०) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि अहङ्कार न करना, ऋण न लेना और द्रोह, बेईमानी न करना स्वर्ग का मार्ग है। जो बुराई करे या जो बुराई करने को कहे और जो बुराई को सुन कर खुश होवे वह सब बराबर के पापी होते हैं।

(१६१) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि मनुस्मृति के अ० ३ श्लोक १६४ में ऐसा लिखा है कि चित्र खेंचने से, व्याज के लिये धन के व्यवहार से, शूद्रों से उत्पन्न पुत्र से, गायें, घोड़ा और रथ बेचने से, राजा की नौकरी करने से कुल का नाश होता है।

(१६२) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि जब बीज वृक्ष में से हो कर फल रूप पूर्णता को प्राप्त होता है तो वह वृक्ष में लगा हुआ नहीं रह सकता, बल्कि वृक्ष से अलग हो जाता है। इसी तरह मनुष्य जब आत्म रूप को प्राप्त हो जाता है तो इस शरीर और संसार में उसकी आसक्ति नहीं रहती है और उसका चित्त बिल्कुल अलग हो जाता है।

(१६३) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि यह सकल ब्रह्माण्ड आत्मा का चमत्कार है जो अनन्त, उदय, अपार सच्चिदानन्द स्वरूप है। यही नाना रूप में प्रकट होता है। जिन कर्मों से उसमें बाधा पड़े वह पाप है। जिनसे इस कर्म में सहायता मिले वही पुण्य कर्म, भजन और तपस्या है। इस ब्रह्माण्ड का

अणु-अणु पवित्र है। इसमें अपवित्रता का लेशमात्र भी नहीं। सनातन, सत्यता और सचाई ही सकल संसार की पवित्र पोथी और ग्रन्थ हैं। सब जीवों को अपना रूप समझ कर उनकी सहायता करना धर्म है। और उस आत्मा का जो इस संसार में रमा हुआ है अनुभव कर लेना ही मुक्ति है।

(१६४) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि माता-पिता का प्रेम अपनी सन्तान के लिये प्रकट बात है। हर मनुष्य जानता है कि कितने प्रेम से यह अपनी सन्तान को रखते हैं और सन्तान की रक्षा का कितना ध्यान उनको रहता है। बच्चे को बोलने की सामर्थ नहीं होती। वह अपने रोग-शोक, दुख और बिमारी का हाल नहीं कह सकता; परन्तु माता-पिता बच्चे की हर एक हालत से उसका पता लगा लेते हैं। और बच्चे के कहे बगैर उसके दुख दर्द के दूर करने का उपाय करते हैं। बच्चों की रक्षा में अपना सुख, आनन्द, खाना, पीना, फिरना, सोना और बैठना तक भुला देते हैं। इनमें माता का प्रेम तो पिता से भी अधिक होता है। राजा को प्रजा का माता और पिता दोनों माना जाता है। इसलिये राजा को अपनी प्रजा के हर एक मनुष्य-मात्र के दुख और शोक दूर करने का उतना ही ख्याल होना चाहिये, जितना माता-पिता दोनों मिल कर अपनी सन्तान का करते हैं। बच्चे के बोले और कहे बगैर जिस तरह से माता-पिता को उसके दुख दर्द का पता चल जाता है इसी तरह से सच्चे स्नेह के कारण प्रजा के कहे बिना ही उसके दुख दर्द का पता राजा को चल जाना चाहिये। अगर नहीं चलता है तो समझ लेना चाहिये कि इस राजा के हृदय में उसकी प्रजा नहीं बसी और न ही यह अपनी प्रजा के साथ तन्मय है। जो राजा अपने को प्रजा से प्रथक समझता है उसको प्रजा के दुख का पता नहीं चलता; परन्तु जो राजा प्रजा को अपना स्वरूप समझता है उसको प्रजा के कहे बगैर उसके दुख दर्द का हाल प्रजा की हालत देख कर इसी तरह से मालूम हो जाता है जिस तरह बच्चे की हालत देख कर उसके माँ-बाप को। जिसमें इतना प्रेम प्रजा के प्रति हो वही राजा बनने योग्य है और वही राज्य का अधिकारी है। स्वार्थी राजा के राज्य में प्रथम तो प्रजा के दुख की कोई सुनाई ही नहीं होती, बहुत हाय दुहाई मचाई जाती है तो दो चार बार तो हाँ हूँ करके टाल दिया जाता है जब प्रजा बिल्कुल पंजा झाड़ कर पीछे पड़ जाती है तब कामीशन बैठती हैं कि वह प्रजा के दुख

की जाँच करे। अब देखिये भला कमीशन का क्या सिर फिरा है और उनको प्रजा से ऐसी क्या सहानुभूति है जो प्रजा के लिये भले की बात सोचे या बतलाये या निकाले। वह भी देश विदेश की सैर सपाटा करके और मौज मेला देख कर—"जिसका खाना उसी का गीत गाना" वाली मसल के मुताबिक हाँ में हाँ मिलाने वाली रिपोर्ट लिख देते हैं। अगर किसी ऐसे खास विषय की रिपोर्ट हुई जो बहुत भारी चाँदी के जूते से काम ले सकता है और कमीशन की मुट्ठी गर्म कर देता है तो उसके मुआफ़िक़ रिपोर्ट होने की कुछ-कुछ आशा हो सकती है।

(१६५) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि लड़ाई झगड़े चाहे गृहस्थी में हों चाहे कुटुम्ब में, चाहे देश भर में, चाहे दो वंशों में हों सब की जड़ ज़रूरत है। जब ज़रूरत पूरी नहीं होती तब झगड़ा खड़ा हो जाता है। यही नियम मनुष्यों में ही नहीं बल्कि पशु पक्षियों तक में काम करता है। जहाँ ज़रूरत से ज्यादा सामान हो, चाहे उसको कुदरत ने पैदा किया हो चाहे मनुष्यों ने संग्रह किया हो वहाँ झगड़ा होगा ही नहीं अगर उसका बटवारा ठीक तौर से किया जाये। अगर सामान काफी है और बटवारा ठीक नहीं तब भी लड़ाई झगड़ा ज़रूर होगा। जिस गृह में स्त्री पुरुष दो जने रहते थे उसी में उनके ५-६ लड़के और उनकी बहुएँ तथा बाल बच्चे भी रहें तो जगह की तङ्गी होने से उनसे कल-कल टाएँ-टाएँ हुए बगैर नहीं रह सकती। दुनियाँ जितनी बड़ी पहली थी उतनी ही अब भी है, मगर जन संख्या जिस देश में बहुत बढ़ जाती है और व्यक्ति जगह की तङ्गी और सामान की कमी की वजह से या तो आपस में लड़ मरते हैं या किसी दूसरे देश में जहाँ सामान की ज्यादती और ताकत की कमी दिखलाई पड़ जाये उन पर टूट पड़ते हैं। इसलिये ज्यादा औलाद पैदा करना और अपनी ज़रूरतों को बढ़ाना राजसी और तामसी कर्म माने गये हैं। आरम्भ में यह अच्छे मालूम होते हैं। फलाँ मनुष्य के आठ बेटे हैं; परन्तु अन्त में दुखदाई प्रतीत होते हैं। "बहु कुटुम्बी बहु दुखी" काफी अरसा ब्रह्मचर्य से रहना, कुछ दिन गृहस्थ के बाद बानप्रस्थ धारण करना इत्यादि पाबन्दियाँ इसलिये लगाई गई हैं कि जन संख्या सीमा के भीतर रहे। पहले जो बड़े-बड़े शहरों की आबादी थी वह अब बढ़ कर कस्बों की हो गई है।

(१६६) एक रोज़ जिक्र हो रहा था कि अछूत जातियों को दबाया जा रहा है और उनके साथ बड़ी गर्मी से बात की जाती है। उनके अधिकार उनको फ़ौरन मिलने चाहिये। भाँति-भाँति की रायें होने लगी। अन्त में यह मामला श्री महाराज के पेश हुआ और राय माँगी गई। श्री महाराज ने फ़रमाया कि ठीक बर्ताव करने में देश, काल और पात्र तीन बातों का विचार ज़रूर कर लेना चाहिये। उचित अधिकार सब को मिलने चाहिये; परन्तु किसी अधिकार का अगर बेजा इस्तेमाल होने की सम्भावना हो तो उसको धीरे-धीरे समय का लिहाज़ रख कर देना चाहिये। जब तक किसी खास मनुष्य की प्रकृत्ति तामसी मण्डल पर है उसको सात्विकी पुरुषों के अधिकार मिल जाने से उनका दुरुपयोग हो सकता है। अछूत जातियों में जब भी किसी ने तामसी या राजसी स्वभाव से उठ कर सात्विकी स्वभाव में प्रवेश किया है एक दम उसको पूर्ण अधिकार मिले हैं बल्कि यों जातियों के सिर पर उसको रख दिया गया है जैसे हरीदास जी, कबीर जी, स्वपच जी, सैन जी आदि। डर और दबाव ऐसी चीज़ है जिसके ठीक वर्तने से लाभ ही लाभ होते हैं। सन्तान पर माता-पिता का दबाव, विद्यार्थियों पर अध्यापक का दबाव, चेलों पर गुरु का दबाव, स्त्री पर पति का दबाव, प्रजा पर राजा का दबाव और दुष्टों पर कानून का दबाव न हो तो यह सब बिगड़ जायें। अब यह बात सर्व माननीय हो गई है कि कोयले वाली जमीन के अन्दर गर्मी पहुँचने से और नियत समय तक नियत दबाव पड़ने से वह अन्दर का कोयला हीरा बन जाता है। दबाव और गर्मी की कमी से हीरा नहीं बन सकता। अगर अधूरा बना भी तो उसकी कोई क़द्र और कीमत नहीं। हीरा बनने पर वह राजा और बादशाहों के सिर पर पहुँच जाता है। इसी तरह से तामस और राजस स्वभाव के मनुष्यों से दबाव बिल्कुल हटा दिया जाय और उनके साथ गर्मी का बर्ताव न हो तो वह अभिमान में आ कर कहीं के कहीं आ डूबेंगे। जिन देशों में से अब दबाव हटा लिया गया है या ढीला कर दिया गया है वहाँ के स्त्री पुरुषों के मानसी और इखलाकी (अच्छे बर्ताव) देख लीजिये। हिन्दुस्तान के आजकल की गिरी हुई हालत के मनुष्य भी उन लोगों के व्यवहार को भी कितनी घृणा की दृष्टि से देखते हैं। किसी के साथ बेजा सख्ती करना हर हालत में बुरा होता है; परन्तु उचित दबाव और तेजी को हटाना उन मनुष्यों की राह में काँटे बोना है और उनकी तरक्की को रोकना है।

(१६७) एक रोज़ एक सम्प्रदाय के मानने वाले ने कहा, कि भगवद् प्राप्ति में भक्ति ही साधन है और किसी साधन की आवश्यकता नहीं। गोप,ग्वाल और व्रज नारियों ने क्या साधन किया था उनको बिना साधन के ही भगवत्-प्राप्ति हो गई। श्री महाराज ने फरमाया कि आप ठीक कहते हैं कि सिद्ध और नियत साधन के अनुष्ठान बिना फल की प्राप्ति हो सकती है। लेकिन बिल्कुल किसी भी अगले पिछले साधन के वगैर फल का प्राप्त होना नियम विरुद्ध प्रतीत होता है। ऐसा मानने से संसार बिना साधन का हो जायेगा। श्रीमद्भागवद् ही प्रमाण है कि गोप गोपी पहले जन्म के अवतार थे और साधना के बल से भगवद् प्राप्ति हुई। भाव सहित सेवा करना भक्ति कहलाती है। और चाकरी यानि परिचर्या ही सेवा का खलासा (सार) है। भक्ति मार्ग में साधन ही को फल मानते हैं। यानि भगवद् भक्ति सदा बनी रही। इसी को पूर्ण फल कहते हैं। अवस्था का भेद है। भाव सहित सेवा साधन पंचरात्र है और फल अवस्था में वही भाव आत्मिक रह जाती है इसमें और कल्पना में सेवा में बहुत अन्तर है। नारद पंचरात्र के अनुसार महात्म्य ज्ञान भी भक्ति है। यह महात्म्य ज्ञान पहले-पहले रहता है। प्रेम की पूर्णता में यह दशा नहीं रहती। अपने से बड़े में जो स्नेह है उसको भक्ति कहते हैं। भगवान् जी को बड़ा मान कर जो प्रेम किया जाता है वह भक्ति है। बड़ाई तो भगवान् में और स्नेह भक्त में रहता है। इसी तरह प्रेम या स्नेह केवल ही रहा। सच्चिदानन्द भगवान् के प्रधान धर्म सद्, चित, आनन्द यानि सद् से क्रिया, चित से ज्ञान और आनन्द से भक्ति या प्रेम कहा गया है। इसलिये प्रेम या स्नेह ही भक्ति शब्द का अर्थ हुआ। जब श्रीकृष्ण भगवान् कोई बड़ा काम करते थे, जैसे किसी दैत्य को मार डाला या गोवर्धन उठा लिया उस वक्त थोड़ी देर के लिये गोप ग्वाल और नन्द आदि को उनकी महत्ता प्रतीत होती थी। परन्तु प्रेम की अधिकता से थोड़ी ही देर में वह हट जाती थी फिर भगवान् उनके वही सखा, और पुत्र दिखलाई देते थे। ऐसे ही पुष्टिक भक्ति भगवान् के अनुग्रह से ही प्राप्त होती है और अनुग्रह भी किसी साधन का फल ही मानना पड़ेगा वरना सब को क्यों नहीं प्राप्त होती। भगवान् किसी के वशीभूत या परतंत्र नहीं परन्तु प्रेम के वशीभूत माने गये हैं। भक्त भी परतंत्र नहीं होते अपने प्रेम से ही अपने को भगवान् का परतंत्र मानते हैं। अनुग्रह मार्ग वेद सिद्ध नहीं है लोक सिद्ध है। गूढ़ भाव से उसका प्रकाश

होता है। परन्तु फिर भी वेद की रक्षा, ब्राह्मणों के पालन व साधुओं की रक्षा के लिए कर्म, ज्ञान, भक्ति आदि साधन को आगे रख कर ही कर्म किया जाता है चाहे इनको सच्चा मान लो चाहे यह समझ लो कि उनकी आड़ रखी है।

कृष्णानुग्रह रूपाहि पुष्टिः कालादि बाधिका।
अनुग्रहो लोक सिद्धो गूढ भावानिरूपितः॥
देव गुह्यत्वसिद्धयर्थं नामध्यानार्चनादिकम्।
पुरस्कृत्य हरेर्वीर्यं नामादिषु निरूप्यते॥

(१९८) एक रोज़ किसी ने अर्ज़ किया कि यह प्राण जिसको हवा कहते हैं शरीर के भीतर से जब निकल जाती है तो उसको मरना कहते हैं। क्या किसी तरह से यह वायु फिर शरीर में नहीं डाली जा सकती ? श्री महाराज जी ने फ़रमाया कि प्राण हवा नहीं। बल्कि हवा से ज्यादा सूक्ष्म तत्त्व है जो सकल ब्रह्माण्ड में व्यापक है। यह अखिल ब्रह्माण्ड की ओत-प्रोत शक्ति है। यह अभेद व अविभाज्य है। जैसे तेल के इञ्जन में इस तरह के पुरजे लगे हैं जिन से वायु भरली है फिर वह दबती है और फटती है यानि काम करते समय जलती है फिर बदबूदार हो कर बाहिर निकलती है। इसी भाँति मनुष्य शरीर के अन्दर प्राण की चार गति होती हैं। पूरक, कुम्भक, रेचक, और फिर कुम्भक। बाहर निकलने वाली प्राण वायु अन्दर से मैली निकलती है और अन्तर में लगा हुआ यंत्र अच्छी वायु बाहर से खींचता है। मृत्यु होने पर प्राण वायु बिगड़ता नहीं और न शरीर से बिल्कुल निकलता है बल्कि मरने के बाद भी शरीर में धनजय रूप से रहता है। प्राण अन्दर खीचने वाला यंत्र जब बिगड़ जाता है तब प्राण का अन्दर जाना बन्द हो जाता है। अगर प्राण वायु बन्द हो जाय और यंत्र न बिगड़े तो फिर प्राण वायु शरीर में आने जाने लगता है। जैसे किसी मूर्च्छित मनुष्य या जल में डूबे हुए या समाधिस्थ, बर्फ़ में डूबे हुए के शरीर में प्राण फिर जाने लगते हैं। अगर मनुष्य मर भी जाये और किसी तरह से वह यंत्र खराब न हो तो उसी मनुष्य का या किसी दूसरे मनुष्य तक का प्राण भी ऐसे मरे हुए शरीर में जा सकता है। और काम कर सकता है। पर काया का प्रवेश ऐसी ही हालतों में हो सकता है। श्री शंकराचार्य जी ने एक राजा के मृतक शरीर में प्रवेश किया था। किसी

लड़ाई (१९१८) के अखबार में से किसी ने पढ़ कर सुनाया था कि दो दोस्त एक साथ लड़ाई में मारे गये। एक का शरीर छिन्न भिन्न हो गया, दूसरे का ऊपर से ठीक हालत में रहा, जिसका शरीर छिन्न भिन्न हुआ था उसके प्राण यानि जीवात्मा दूसरे के शरीर में प्रवेश कर गये। यह काया प्रवेश योगाभ्यास से हो सकता है। मन्त्र और तन्त्र विद्या से भी इसका होना लिखा है। जिन देवताओं के सुपुर्द शरीर को बनाने और चलाने का काम है वह भी जिस जीव की जरूरत इस भू लोक में समझते हैं उसको बना बनाया शरीर भी दे सकते हैं। भू लोक से ऊपर भवाः और सवाः लोक हैं। भूः लोक में रहने वाले जीवों में काम देव, रूप देव और अरूप देव यह तीन एक दूसरे से ऊँचे कोटि में हैं। कामदेव प्राणमय शरीर वाले होते हैं। रूप देव मनोमय शरीर वाले, और अरूप देव कारण देह धारी होते हैं। अरूप देव से ऊँची भी चार श्रेणियाँ हैं। उपरोक्त तीन कोटियों से विशेष सम्बन्ध न रखने वाले पर पृथ्वी, जल, तेज, वायु तत्वों पर अधिकार रखने वाले चार देवता हैं। यह पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशाओं के भी स्वामी होते हैं। इनके नाम धृतराष्ट्र, विरूपाक्ष, विरुद्धक और वैश्वण हैं। इनके आधीन गन्धर्व, कुम्भक, नाग और यक्ष हैं। जो निम्न कोटि के देवदूत हैं। इन चार स्वामी देवों के वर्ण शुभ्र नील, रक्त और पीले हैं। मनुष्यों के नियन्त्रण का कार्य इन के सुपुर्द है। पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्यों की उन्नति के सूत्र इन्हीं के हाथ में हैं। वायु का वज़न है, इसी तरह से प्राण का भी वज़न है। सात्विकी मनुष्य का प्राण शरीर बहुत सूक्ष्म और हलका होता है। तामसी मनुष्यों का भारी होता है। ज्यादा से ज्यादा वज़न प्राण शरीर का करीब एक छटाक माना गया है। प्राण और मन का आपस में घनिष्ट सम्बन्ध है। प्राण रुकने से मन रुक जाता है, और मन के ठहरने से प्राण ठहर जाते हैं। यह दोनों काम या तो वासना रोकने से हो सकते हैं। या प्राण का निरोध करने से। जैसा कि योग वाशिष्ट में लिखा है कि वासनायाम और प्राणायाम यही दो तरीके मन और प्राण को काबू करने के हैं।

(१९९) एक रोज़ तान्त्रिक मत के अनुगामी ने अर्ज़ किया कि कलियुग में वैदिक साधन, सांख्य मत के साधन और योग साधन से सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती। सिर्फ तंत्र साधन से सम्भव है। आपकी इसमें क्या राय है।

श्री महाराज ने फरमाया कि तान्त्रिक विद्या के दो दर्जे हैं। एक जाहिर या बाहिरी, जिसको भृङ्ग पूजा कहते हैं। उसमें गंध, पुष्प, फल, धूप, दीप, तुलसी बेल पत्र, नैवेद्य आदि से कारवाई होती है। इसी में समस्त पूजा विधि हिन्दुओं में ही नहीं बल्कि सब मज़हबों में जाहरी पूजा फूल, फल और खुशबूयात जला कर की जाती हैं। दूसरा तरीका आन्तरिक यानि अन्दरूनी तरीका है। उसमें षट चक्र का शोधन किया जाता है। कई तान्त्रिक शास्त्रों में छः चक्र हैं। किसी में ९ चक्र हैं उनके नाम वर्ण और शोधन की विधि वही है जो सनातन धर्म में, वेद शास्त्र और पुराणों में बतलाई हैं।

इडापिंगलयोर्मध्ये सुषुम्णायां भवेत्खलु।
षट स्थानेषु च षट शक्ति षट् पद्मं योगिनो विदुः॥
संयोगो पृष्ठे न भूमौ न रसातले।
ऐक्यं जीवात्मनो राहुर्योगं योग विशारदाः॥

इड़ा और पिंगला के मध्य में सुषुम्ण नाल की छः ग्रन्थियों के रूप में छः चक्र गुह्यस्थान में, लिङ्ग स्थान में, नाभि देश में, हृदय देश में, कण्ठ में, दोनों भ्रू के बीच में, इनके द्वारा जीवात्मा का परमात्मा के साथ संयोग करना पड़ता है। इसी को प्राकृत्ति योग कहते हैं।

ऐतेषां नव चक्राणामेकैकं ध्यायतो मुनेः।
सिध्यो मुक्ति सहिताः करस्था स्युर्दिने दिने॥
कोदण्ड द्रूप मध्यस्थं पश्यन्ति ज्ञान चक्षुषा।
कदम्ब गोलकाकारं ब्रह्मलोकं व्रजान्ति ते॥

१. मूलाधार, २. स्वाधिष्ठान, ३. मणिपूरक, ४. अनाहद, ५. विशुद्ध, ६. ललना व तालु का चक्र जिसको घटिका स्थान और दशमद्वार मार्ग कहते हैं। ७. आज्ञा चक्र, ८. ब्रह्मरन्ध्र में, ९. ब्रह्मचक्र, षोडशदल का, इस में सच्चिद्-रूपी अर्धशक्ति प्रतिष्ठित है।

मनुष्य शरीर में तीन लाख पचास हजार नाड़ियाँ हैं। उन में यह १४ प्रधान हैं। १ सुषुम्णा, २ इड़ा, ३ पिंगला, ४ गान्धारी, ५ हस्तिजिह्वा, ६ कुहू, ७ सरस्वती, ८ पूषा, ९ शंखिनी, १० पयास्वनी, ११ वारुणी, १२ अलम्बुषा, १३ विश्वोदरी १४ यशास्वनी। इनमें पहली तीन प्रधान हैं। इन तीनों में भी सुषुम्णा सर्व प्रधान है।

अब आप कहिये कि नाम, रूप, साधन, विधि आदि तान्त्रिक और वेद मार्ग के एक ही हैं फिर यह बात कैसे कही जा सकती है कि सिर्फ तान्त्रिक शास्त्र के साधन से ही सिद्धि सम्भव है। हाँ यह बात मानने योग्य है कि अपने-अपने मत को प्रधान कहने में कोई दोष नहीं है।

(२००) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि हर एक पुरुष का आदर्श मोक्ष प्राप्ति होना चाहिए। मुक्त होना, अपने स्वरूप में स्थित होना, भगवद् कृपा, शक्तिवान ब्रह्मज्ञान आदि यह सब एक ही हैं। इनकी प्राप्ति के वास्ते जो कुछ भी यत्न किये जाते हैं उनको साधना कहते हैं। साधना का स्वरूप तीन प्रकार का है। उत्साह, गुरु और काल। कर्म उपासना और ज्ञान उपासना यानि भक्ति कई प्रकार की है। (१) साधन भक्ति, कर्म योग के अन्तर्गत है। (२) साध्य भक्ति ज्ञान योग में शामिल है। (३) सिधा भक्ति जिसके अनन्य ऊर्जिता, प्रबला, एकान्तका, स्वभाविक आदि नाम भी हैं। भक्ति के कई प्रकार होने की वजह से भक्तों के अलग-अलग भाव हैं। (१) द्वैतवाद, (२) शुद्ध-अद्वैतवाद, (३) द्वैताद्वैतवाद। भगवद्गीता, मनुस्मृति, इतिहास, पुराण, वेद और भागवद में द्विनिष्ठा मुख मानी है। एक अभेद निष्ठा इसको सांख्य, सन्यास और ज्ञान योग भी कहते हैं। दूसरी भेद निष्ठा जिसको कर्म योग, भक्ति योग और योग भी कहते हैं। रामायण के उत्तर काण्ड में ज्ञान दीपक के नाम से अभेद निष्ठा और भक्ति मणि से भेद निष्ठा का वर्णन है। वेद और उपनिषदों में "अहम् ब्रह्मास्मि" आदि महावाक्य अभेद निष्ठा का द्वासुपर्णा, श्रुतियाँ, भेद निष्ठा का प्रतिपादन करती हैं। मोक्ष प्राप्ति, तत्त्व ज्ञान, अपने स्वरूप का ज्ञान, सृष्टि का ज्ञान और ब्रह्म का ज्ञान और केवल्य ज्ञान पाना है। ब्रह्म का स्वरूप अव्यक्त, इन्द्रियातीत, आदि अन्त से रहित, अज, अविनाशी, देश काल अतीत, सर्वगत, सर्वातीत माना गया है। अपना स्वरूप भी इन्हीं का ही अंश है। अन्तर यह है कि ब्रह्म अनावर्त है और जीव, स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण, आवरणों से अवर्त्त हैं। इन्हीं आवरणों की वजह से स्वरूप का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता। ब्रह्म की मौज से जिसको 'स्पन्द' कहते हैं और जो शब्द अनुमय है उससे सृष्टि हुई, इसलिए मूल श्रेष्ठ शब्द श्रेष्ठ है। पहले चैतन्य या प्राकृत्ति या कैवल्य मण्डल है, जो निर्मल चैतन्य है, उसके नीचे बाकी चार में जड़ चेतन की मिलोनी है। सृष्टि

सूक्ष्म से स्थूल होती जाती है। केवल्य मण्डल के नीचे महाकारण जड़ आत्मा है जिसको मूल प्रकृति कहते हैं। इसके नीचे कारण और उसके नीचे सूक्ष्म, और उसके नीचे स्थूल आवरण है। यह ही चार आवरण जीव को घेरे हुए हैं। जीव अपने शरीर के जिस आवरण को पार कर लेता है वह सृष्टि के भी उसी आवरण से पार हो जाता है। जीव और ब्रह्म में एकता के और भी लक्षण हैं। (१) जीव के मन की शान्ति और साम्य अवस्था का पारब्रह्म की साम्य अवस्था से सम्बन्ध है। (२) जीव की विचार शक्ति और ब्रह्म के चिद अंश यानि चैतन्य शक्ति में एकता है। (३) मन की सम्बन्ध शक्ति और ब्रह्म के आनन्द अंश का घनिष्ठ सम्बन्ध अनुभव होता है। (४) मन की कर्तित्व शक्ति (मन की इच्छा और प्रेरणा) और ब्रह्म की बल शक्ति में संमानता है। (५) शरीर की क्रिया शक्ति और ब्रह्म में भी रहने वाली क्रिया शक्ति भी एक ही है। मन की शक्तियाँ सत, चित और आनन्द शक्तियों से पृथक् नहीं है। कारण के गुण कार्य में अवश्य होते हैं। चित शक्ति विश्व को प्रकाशित करती है। विचार शक्ति कर्त्तव्य पथ को निश्चय करती है। गोया मन और बुद्धि में विचार शक्ति एक सीढ़ी है। विचार शक्ति का उपयोग भौतिक विद्या की प्राप्ति के लिए भी किया जा सकता है; परन्तु ईश्वरीय नियमों का अनादर करने से कल्याण नहीं हो सकता। विषय भोग की वासनायें बढ़ती हैं जिनसे मन सदा अशान्त रहता है और स्वार्थ वश संसार को हानि पहुँचती है। जो इष्ट जितना मुक्त और सुखदाई होता है वह उतना ही अधिक प्रिय होता है। स्त्री, पुत्र, धन, मान आदि से हमको आनन्द मिलता है। इसलिए वह प्रिय होते हैं। लेकिन यह इन्द्रिय और मन जनित आनन्द नीचे दर्जे के होते हैं। संचित कर्मों में प्रबल वासना से प्रालब्ध बनती है। और प्रालब्ध से संस्कार बनते हैं और मनुष्य संसार में जन्म लेता है। शुभाशुभ संस्कारों से अच्छे बुरे कर्मों में अनुराग होता है और धर्म या अधर्म में प्रवृत्त हो कर सुखी या दुखी होता है। इस पृथ्वी पर अनादि काल से चार खान और चौरासी लाख योनि उनकी जीवन रक्षा, आनन्द प्राप्ति, मनुष्य वृद्धि, सामाजिक क्रान्ति, देश काल परिवर्तन, स्वार्थ वश दूसरों के जीवन और सम्पत्ति का नाश यह कर्म सदा से होते चले आ रहे हैं; परन्तु इन सब हालतों में भी ब्रह्म तत्व सदा सम अवस्था में बना रहता है। सब भौतिक पदार्थों के बनने बिगड़ने पर भी मूल अपादान कारण के स्वरूप में

कोई परिवर्तन नहीं होता। इन सब चल पदार्थों का जो स्थिर आधार है वह सदा सम अवस्था में रहता है इसलिए सत्य है। समस्त जड़ चेतन सृष्टि को प्रकाशित करता है इसलिए चेतन कहलाता है। इससे सब ब्रह्माण्ड के जीवों को आनन्द प्राप्त होता है इसलिए वह आनन्द स्वरूप है और इसलिये ही परमानन्द उस सच्चिदानन्द की प्राप्ति से प्राप्त होता है। इसकी प्राप्ति के बहुत साधन हैं। साधना का अर्थ किसी विषय में एक निष्ठ भाव से संयुक्त करना है। परन्तु हम तो उसको साधना मानेंगे जिससे भगवत प्राप्ति होती है। साधना में मन ध्यानस्थ होना चाहिये। ध्यान कहाँ, किसका और किस तरह से करना चाहिये इसका गुरु से उपदेश लेना चाहिये। सुन कर या किताबों में देख कर करने से कल्याणकारी नहीं होता। ध्यान में रूप, ज्योति और शब्द का अनुभव करते हैं। जिसको जिस वस्तु या मूर्ति में निष्ठा या प्रेम होता है उसके लिये उसकी कल्पना के अनुसार रूप की सृष्टि होती है; लेकिन नाम और रूप को आगे चल कर त्यागना ही पड़ता है। ज्योति और शब्द ही धुर तक जाते हैं। साधना दो तरह की होती है। (१) बहिरंग जैसे नहाना, तिलक छापना, माला आदि से जप, सेवा, शुश्रूषा, पिता-माता के प्रति प्रेम, ईश्वर की आज्ञा समझ कर कर्त्तव्य का धर्म और नीति के साथ पालन। गुरु सेवा, भगवत् पूजा, पंच यज्ञ, हवन, हठ योग आदि कर्म सब बहिरंग साधन में आ जाते हैं। अन्तरंग साधन— उसमें (१) अभ्यास (२) विचार (३) ध्यान (४) समाधि या लय आ जाते हैं जिनको फकीर लोग ज़िक्र, फ़िक्र, मुराकबा और फना कहते हैं। अचिन्त्य ब्रह्म की उपासना, चराचर जगत को ब्रह्मस्वरूप देखना, संकल्प ब्रह्म की उपासना, ज्योति ब्रह्म और शब्द ब्रह्म की उपासना सब वही कहलाते हैं। इन्द्रिय और अन्तःकरण से जो कुछ देखा, सुना जाता है या अनुभव किया जाता है इन सबको नाशवान, क्षण भंगुर, अनित्य और स्वप्नवत समझ कर इसका परित्याग करना और इससे रहित हो जाए और जिस बुद्धि द्वारा उनका अभाव किया जाता है उस व्रत का त्याग कर दृष्टा का जो केवल चिन्ह स्वरूप है उसमें स्थित होना ही ब्रह्म की उपासना है जैसे घड़ा टूटने और घर फूटने से घट आकाश और मठ आकाश महाकाश ही रह जाते हैं। इसी प्रकार जीवात्मा सच्चिदानन्द परमात्मा के साथ एक भाव हो जाता है। जैसे लहरें, भँवर और बुद्‌बुदे पानी में पैदा होते हैं उसी में रहते और उसी में समा जाते हैं। इसी तरह से यह चराचर

जड़ चेतन जगत परमात्मा से ही उत्पन्न होकर उसी में स्थित और उसी में लीन हो जाता है। इसलिए वास्तव में परमात्मा स्वरूप ही है। यह भेद और अभेद दोनों ही सृष्टि दृष्टियों से किया जा सकता है। अपने को परमात्मा का सेवक मानना भेद उपासना है। सारे संसार और अपने को भी उसी का स्वरूप मानना अभेद उपासना है। ब्रह्म ही जीवात्मा स्वरूप से भासता है। अन्तः करण में स्थित आत्मा ही ब्रह्म रूप है। यही तत्त्व सृष्टि के बाहर भीतर सर्वत्र स्थित है। परन्तु इस विचार शक्ति से शास्त्र जन्य ज्ञान प्राप्त कर के स्पन्द शक्ति द्वारा उसका अनुभव कर लेना चाहिये। इसमें महात्माओं ने शब्द साधन या सुरत शब्द योग की बड़ी महिमा की है। शब्द का स्वभाव है कि वह उद्गम् स्थान की तरफ खींचता है। इसलिए उसके आश्रय से स्थूल सूक्ष्म, कारण और महाकारण चारों आवरण पार कर के चैतन्य मण्डल तक जा सकता है। यह शब्द वर्णात्मक नहीं है बल्कि धुनात्मक प्रकृति अर्थात सुरत ब्रह्म स्वरूप के अत्यन्त समीप होने से प्रभु के स्वरूप का साक्षात्कार करा सकती है। यही परमयोग, परम ज्ञान और परम भक्ति और प्रत्यक्ष ज्ञान के साधन हैं। इसी सिलसिले से जीवन मुक्ति और विदेह-मुक्ति प्राप्त होती है।

(२०१) एक दिन इर्शाद हुआ कि आज कल अगर किसी को बाबा जी, बाई जी या साधू जी कहा जाये या लिखा जाये तो वे अपने को अपमानित समझते हैं। वे स्वामी जी, महात्मा जी, सन्त जी, परम सन्त जी कहलाना चाहते हैं, और इस तरह से उन्हें कहा जाये तो जामा में फूले नहीं समाते बल्कि अपने शिष्यों से तो इस बात की आशा रखते हैं कि उनको भगवान् ही कहा जाये और भगवान् ही माना जाये, बल्कि गुरू का दर्जा भगवान् से कुछ बढ़ा हुआ माना जाये तो उनकी आत्मा को बड़ी शान्ति होती है।

"गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूं पाँय।
बलिहारी गुरु आपने जिन गोविन्द दियो बताय" ॥

बात तो बिल्कुल ठीक है शास्त्र का वचन भी प्रमाण है अब कोई त्रुटि बाकी नहीं रही, केवल इतनी बात है कि अगर ऐसे परम सन्तों के कर्म धर्मों का निर्णय किया जाये तो उनका वचन यह होगा कि इस कलियुग में प्राणायाम

आदि योग की क्रिया तो हो ही नहीं सकती। या तो "अहम् ब्रह्म" या किसी पुस्तक से कथा बाँच कर सुना देनी, या इधर-उधर से काट छाँट कर कुछ वचन याद कर लेने और उनकी सहायता से भाषण देने में और बोलने में ऐसे निपुण हो जाते हैं कि अच्छे-अच्छे योगाभ्यासी और भक्तों के कान काटते हैं और मुँह से बात तक नहीं निकालने देते और भले से भलों का मुँह बंद कर देते हैं; परन्तु ऐसे मनुष्य न तो परम सन्त न महात्मा न स्वामी ही होते हैं उनको तो उपदेशक ही कह सकते हैं।

(२०२) एक दिन सेठ हंसराज जी ने बहुत प्रार्थना की कि श्री महाराज जी कोई स्थान ज़रूर स्थापित होना चाहिए ताकि कम से कम आने जाने वालों के लिए ठहरने का ठिकाना हो जाये। श्री महाराज ने फ़रमाया कि यह बातें प्रवृत्ति की बुनियाद हैं। पहले-पहले किसी ऐसे हीले बहाने से काम जारी होता है और बढ़ते बढ़ते मुआमला हाथी, घोड़े, ऊँट, नौबत नकारे तक पहुँच जाता है। इसलिए हम तो इसकी कोई आवश्यकता नहीं समझते। सेठ साहब ने प्रार्थना की कि इस में आपको करना ही क्या है। हम लोग सब प्रबन्ध कर लेंगे। तब प्रश्न उठा कि ज़मीन श्री महाराज के नाम खरीदी जावे इस पर श्री महाराज ने बिल्कुल इन्कार कर दिया और फ़रमाया कि यह कदापि नहीं हो सकता। जब उनकी राय मागी गई तो फ़रमाया कि अगर ख़रीदना ही है तो कृष्ण द्वारा के नाम से खरीद लो। सेठ हंसराज जी और भक्त अमीर चंद जी उसके प्रबन्धक नियत हों। ऐसा ही किया गया और एक टुकड़ा ज़मीन जिसमें एक पक्का कुआ भी शामिल है मौजा (गाँव) नगला पदी आगरा में खरीदी गई। उस ज़मीन में कुये के पास एक धूनी बनाई बाद में धूनी के ऊपर कुछ इमारत बनगई और उस ज़मीन के पश्चिम दक्षिण के कौने में कृष्ण द्वारा मंदिर बना।

(२०३) एक दिन इर्शाद हुआ कि प्रत्येक मनुष्य चार कारण से काम करता है। १. खिलक़त (प्रकृति) २, सोहबत ३. आदत ४. जरूरत। सब से पहली बात खिलकत है जिसको मनुष्य की प्रकृति और स्वभाव भी कहा जाता है। और प्रारब्ध भी कह सकते हैं यानी जिन कामों को करने को मनुष्य ने जन्म लिया

है उन कामों को करने पर मनुष्य मज़बूर है और ज़रूरी तौर पर वह उसको करने पड़ेंगे। इसमें सोहबत आदत और ज़रूरत को बिल्कुल दख़ल नहीं। हाँ सोहबत का इतना प्रभाव ज़रूर होता है कि वह काम खूबसूरती और सरलता से हो जाये, जैसे सुई का काँटा। फिर भी ख़िलक़त इन्सान को घुमा फिरा कर इस बात पर ला डालती है—

"आकबत गुरग (भेड़िया) जादा गुरग शवद, गरचे बाआदमी बज़ुर्ग शवद"

अगर भेड़िये का बच्चा मनुष्यों में पल कर बड़ा हो जाये तो अन्त में भेड़िये का भेड़िया ही रहेगा।

दूसरी बात सोहबत है, जिसमें सत्संग या कुसंग की भलाई बुराई बताई गई है। अकसर महात्माओं ने बहुत खराब कर्मों के भोग ऐसी आसानी से भुगतवा दिये कि काम का काम हो गया और बात की बात बनी रह गई। इसकी हज़ारों मिसालें हैं। इसी तरह कुसंगत से ख़राबी हो जाती है, जैसा कि कहा है—

पिसरे नूह बाबदां बिनिशस्त, खानदाने नाबबतश गुम शुद।

जब नूह का बेटा कुसङ्गत में बैठा तो उनकी ख़ानदानी पैग़म्बरी समाप्त हो गई।

तीसरी बात यह है कि ख़िलक़त और सोहबत के मिलाप से आदत बन जाती है और उसके असर में आकर हर इन्सान व जानदार काम करता है। बन्दर तक शराब और तम्बाकू पीने लगते हैं पूजन और भजन भी करने लगते हैं।

चौथी बात ज़रूरत है। इससे विवश हो कर भी काम करने पड़ते हैं। मामूली नहीं बल्कि नये-नये काम भी जैसे कहावत् है—"ज़रूरत ईज़ाद की माँ है।"

(२०४) एक दिन इर्शाद हुआ कि एक राजा अपने मन्त्री को साथ ले कर बीर यात्रा को निकला। चार लड़कियों को खेलते, बातें करते देख कर, खड़ा हो गया और उनकी बातें सुनने लगा। लड़कियाँ कह रही थीं कि दुनियाँ

में सब से ज्यादा स्वाद किस चीज़ में है। एक लड़की बोली कि सब से ज़्यादा स्वाद माँस में है। दूसरी ने कहा कि शराब सब से ज़्यादा मज़ेदार होती है। तीसरी कहने लगी कि विषय भोग में सब से ज़्यादा स्वाद है। चौथी उठ कर बोली कि जितना स्वाद झूँठ बोलने में है किसी में भी नहीं है। राजा ने मन्त्री से कहा कि प्रातः इन चारों लड़कियों को दरबार में उपस्थित करना। आज्ञानुसार दूसरे दिन मंत्री ने लड़कियों को दरबार में उपस्थित किया। राजा साहब ने उनसे कहा कि कल जो तुम बातें कर रही थीं उनको हमने सुन लिया है। अब तुम अपने-अपने दावे के सबूत में विचार पेश करो। पहली लड़की बोली कि राजा साहब हर जीव को अपनी जान प्यारी है। प्रत्येक मनुष्य इस बात को जानता है कि किसी जीव को सताना अच्छा नहीं। फिर भी पशु पक्षियों के मारने पर उतर आता है। माँस को इन्सान जिस आनन्द से खाता है उसको मांस खाने वाले ही जानते हैं। हड्डियों को ठोक-ठोक कर उसका मगज़ तक चट कर जाते हैं।

"खुद को सोख़्त, ग़ैर को लज्ज़त, यह मज़ा हम क़बाब में देखा"

स्वयं तो जलता है दूसरों के लिये स्वादिष्ट है, यह मज़ा तो माँस के क़बाब में है।

खाने के बाद फैंकी हुई हड्डी को चील, कौवे उठा कर ले जाते हैं और जहाँ तक हो सके वह भी उसको नोच-नोच कर खाते हैं। उनसे छूटने पर कुत्ता भी उसको यहाँ तक चबाता है कि उसके दाँतों से खून निकल आता है।

"उसतुखां बेमग़ज़ की लज़्ज़त सगां से पूछिये"

बेमग़ज़ की हड्डी का स्वाद कुत्तों से पूछिये। जब हड्डी कुत्ते के मुँह से निकलती है तो चींटियाँ चिपट जाती हैं और माँस को ज़रा भी लगा नहीं रहने देतीं। अगर माँस में कुछ मज़ा न होता तो इन्सान, हैवान, परिन्दे और कीड़े उसकी ऐसी चाहना क्यों करते ?

दूसरी लड़की बोली कि महाराज हमारे घर के सामने कलारी है। जवान, बूढ़ा, पढ़ा हुआ और अनपढ़, हर मज़हब के आदमी वहाँ जाते नज़र आते हैं। पीकर निकलते हैं तो कोई मोरी में पड़ा नज़र आता है

तो कोई जूतियाँ खाता है। "कौड़ियाँ दे के जूतियाँ खाना, यह मज़ा हमने शराब में देखा" इसको पीकर ग़म ऐसा ग़लत हो जाता है कि इन्सान अभिमानी बन जाता है उस वक्त सात विलायतों की बादशाहत तुच्छ नज़र आती है। दूसरे दिन फिर जो आता है तो यह कहता आता है कि आज ज़रा कल से कड़ी देना। इसके नशे से रियासतें, बड़ी-बड़ी सल्तनतें तबाह हो गईं। एक बार मुँह से लग जाये तो फिर छूटना कैसा। "छुटती नहीं है मुँह से यह काफ़िर लगी हुई" पण्डित, मौलवी हज़ार उपदेश सुनाते हैं मगर उसके पीने वाले यही कहते जाते हैं कि—"लुतफ़े मय तुझसे क्या कहूँ ज़ाइद हाय कम्बख़त तूने पी ही नहीं"। शराब से जो आनन्द आता है मौलवी साहब तुम से क्या कहें। अरे बदनसीब तू ने कभी पी ही नहीं।

तीसरी लड़की बोली कि राजा साहब मेरी पहली सहेली ने आपको जिस मज़े का हाल सुनाया वह मरे हुए माँस का था। और दूसरी ने जिस शराब का हाल वर्णन किया वह तो सड़ा हुआ ख़मीर था। मैं आपको उस मज़े और नशे का हाल सुनाती हूँ जो किसी की सुन्दरता को देखने और मस्त आँखों के मिलने से पैदा होता है या जीवित माँस मिलता है यह ऐसा नशा है कि जिसके सर पर भूत बन कर चढ़ता है, उसको दीन और दुनियाँ सब भुला देता है। इसके नशे में मनुष्य अपना धन, बड़ाई, मान और स्वास्थ्य सब अर्पण कर देता है। शराब का नशा दो चार घण्टे में उतर जाता है, मगर विषय भोग की तृष्णा और आग कभी नहीं बुझती।

मपिन्दार ईंके महरत अज़ दिले आशिक़ रवद हरगिज़।
चूं मीरद मुबतला मीरद, चूं खेज़द मुबतला खेज़द॥

यह ख्याल मत करे कि प्रेमी के दिल से प्रेम चला जाता है कदापि नहीं। उसकी मृत्यु भी इसी विचार में होती है और उसका जप भी इसी विचार में होता है—

अहि विष तो काटे चढ़े, यह चितवत चढ़ जाय।
ज्ञान ध्यान और धर्म को, जड़ मूल से खाय॥

लड़की बोली कि मेरी भावज के जब लड़का पैदा हुआ तो जनाई का

कष्ट देख कर मेरे रौंगटे खड़े हो गये। उसके मरने में कोई कसर न थी लेकिन जनाई से निवृत्त होने के बाद उसको सन्तोष कहाँ था। फिर उसी काम में लग गई।

हाले आमिल हम चू हामिले ज़न,तोबहा भी कुनद बज़ाई दन।
चं ू फ़ारिग़ शवद बज़ाईदन, तीज़ राज़ी शवद बग़ाईदन॥

रिशवत खोरों का हाल भी गर्भवती स्त्री के समान है जो कि जनाई के समय कान पकड़ती है और जब छुटकारा पाती है तो वही "ढाक के तीन पात"।

चौथी लड़की बोली कि महाराज साहब मेरी तीन सहेलियों के वर्णन से यह तो साफ़ प्रकट हो गया कि जिस आनन्द का उन्होंने ज़िक्र किया और जिसका यह पक्ष लेने वाली हैं उससे यह वाक़िफ़ नहीं। यह केवल सुनी सुनाई या देखी दिखाई बात करती हैं उनमें जो बुराई है उसका इनको अनुभव ही नहीं। इसलिये उनकी तारीफ़ फ़िज़ूल और उनकी बात झूँठी हैं। पर फिर भी अपने दावे के सबूत में वह बेजा दलील और अति झूँठ बोलतीं हैं। पूरियों के गवाह तो आपने सुने ही होंगे कि एक समय खाना खिला दीजिये और जो चाहे सो कहलवा लीजिये। इन लड़कियों ने तो उनको भी मात कर दिया अगर झूँठ बोलने में कुछ मज़ा न होता तो माँस, शराब, विषय भोग के मज़े को छोड़ कर उनकी झूठी तारीफ़ में न लग जातीं। कलियुग में धर्म के तीन चरण मिट कर सिर्फ सत्य रूपी एक ही चरण रह गया है। इस युग के स्वामी सत्य नारायण हैं। मुर्दे के ले जाते वक्त सनातन धर्मी कहते हैं—"राम राम सत्य है सत्य बोलो गत्त है"। लेकिन बड़े अफ़सोस की बात है कि जिस सत्य के बोलने में कुछ खर्च नहीं होता और सुगति मिलती है, वह भी नहीं बोला जाता बल्कि झूठा भोजन, झूँठा भजन, झूँठा लेना, झूँठा देना, झूँठा धन, झूँठा रुपया, झूँठी चाँदी, झूँठा सोना, काग़ज का रुपया, हीरे जवाहरात तक झूँठे, झूँठे नाविल, झूँठे इतिहास, झूँठे नाटक, झूँठे सिनेमा, झूँठी खबर, झूँठी गप्पें, झूँठे अफ़वाह उड़ाने में बड़ा आनन्द आता है। बहुत से लेखकों ने झूँठे लेख, किस्से, कहानी और नाटक लिखे हैं। उनकी इतनी बड़ी इज़्ज़त है जो कि किसी धर्मात्मा साधु की भी न होगी। झूँठों की यादगारें बनाई गई हैं। लेन देन झूँठा सौ

दें, दो सौ लिखायें। लेने वाले मजबूर हो कर ऐसों ही के पास जाते हैं। कार, व्यापार, सट्टा सब झूँठा।

गलत है दावये रफ़्क़त, सरासर आशिक़ी झूँठी।
सबूते इकदिली झूँठा, दलीले दोस्ती झूँठी॥
अज़ जां की है तक़रीरे, ख़ुलूसे बातनी झूँठी।
गरज़ झूँठी है दुनियाँ, और झूँठी है बहुत झूँठी॥

सब जानते हैं कि मदारी का खेल झूँठा है फिर भी अपना धन खर्च करके ऐसे एकचित्त हो कर देखते हैं कि बहुतों की तो जेब कट जातीं हैं और जेब कटे धन से मदारी को भी हिस्सा देते हैं। महात्मा लोग भी उपदेश करने को मन गढ़न्त किस्से कहानियाँ और दृष्टान्त रच लेते हैं। हितोपदेश, बाल उपदेश, अनुवार सहेली, गुलेसंतान बोसंतान तक में बहुत सी कहानियाँ बिल्कुल झूँठी हैं। यहाँ तक कि आजकल तो सफ़ेद बालों को काले बनाना, आँख भी झूँठी लगा कर और झूँठे दाँत दिखा कर काम निकाला जाता है। सम्भव है कि झूँठ और ज़्यादा बढ़ जाने पर और भी इन्द्रियों के कर्म और भोग झूँठे ही रच लिये जायें। इसलिये ग़ौर करने से पता चलेगा कि जितना मज़ा झूँठ में है और किसी में नहीं है।

(२०५) एक रोज़ सतसङ्ग हो रहा था कि एक बड़ा बिच्छू निकल आया। एक साहब बोले कि इसको मारो। कतल अलमूज़ी क़िब्ल अज़ ईज़ा। कष्ट पहुँचने से पहले कष्ट पहुँचाने वाले को मार देना चाहिये। दूसरे बोले कि अजी जाने दो क्यों हत्या करते हो? तीसरे साहब ने यह शेर पढ़ा—

अगर ज़े को फ़िरो रेज़द, आसीया संगे,
ना आरे फसत कि अज़राये संग, बर खेज़द॥

अगर पहाड़ पर से चक्की के बराबर पत्थर गिरें तो वह फ़क़ीर नहीं है जो उस रास्ता से हट जाये। यह सुन कर श्री महाराज ने फ़रमाया।

अगर ज़े को फ़िरो—रेज़द आसीया संगे,
ऊ आक़िल अस्त के अज़ राहे संग बर खेज़द॥

अर्थ—अगर पहाड़ से चक्की के बराबर पत्थर गिरे तो वह अकलमन्द है जो उस रास्ते से परे हट जायें।

(२०६) एक व्यक्ति ने अर्ज़ किया कि जब राजा बलि ने बावन भगवान् को ज़मीन दान देने का वायदा कर लिया तो गुरू शुक्राचार्य ने राजा बलि को दान देने से मना किया। राजा बलि ने जवाब दिया कि मैं वचन वद्ध हो चुका हूँ, अब उससे कैसे फिरूँ। तो शुक्राचार्य ने फ़रमाया कि शास्त्र में लिखा है कि (१) स्त्रियों के साथ बात-चीत करने में जो वायदा किया जाये, मसलन औरत कहे कि हमको इतने-इतने ज़ेवर बनवा दो तो उसको नाखुश करने के बजाय कहे कि हाँ बनवा देंगे, लेकिन उसको पूरा न करने से, (२) बराबर के दोस्तों में हंसी मज़ाक में कोई वायदा करके, (३) शादी विवाह में देने का वायदा करके, (४) जहाँ रोज़गार बिगड़ने का अन्देशा हो वहाँ वायदा करके, (५) जहाँ अपने प्राण की रक्षा होती हो वहाँ वायदा करके, (६) जहाँ ब्राह्मण और गऊ की जान बचती हो वहाँ वायदा करके और वचन दे कर उसको पूरा न करने से निन्दा नहीं होती क्या यह उपदेश ठीक था? श्री महाराज ने फ़रमाया कि शुक्राचार्य जी असुरों के गुरू हैं इसलिये असुरों के लिये यह उपदेश ठीक हो सकता है, और चाहे राजनीति के लिहाज़ से भी ठीक हो मगर प्राचीन समय में राजा हरीश्चन्द्र इत्यादि ने अपने भारी नुकसान को जान कर, राजा शिवी ने अपनी प्राण हानि समझ कर और महात्मा दधीचि ने अपनी जान का ख्याल न करके भी जो वचन दिया उसका पालन ही किया। राजा बलि ने भी गुरू की आज्ञा न मान कर वचन को पूरा कर ही दिया। विचार से देखा जाय तो इनमें से किसी की हानि नहीं हुई बल्कि वे उच्चकोटि के महात्मा माने जाते हैं।

(२०७) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि गीता के पाँचवें अध्याय के श्लोक २७ और २८ में लिखा है कि जिज्ञासु बाहर के विषयों का चिंतन न करे बल्कि उन्हें बाहर ही त्याग दे और नेत्रों की दृष्टि को भृकुटि के बीच में स्थित करके तथा नासिका में विचरने वाले प्राण और अपान वायु को सम करके, इन्द्रिय, मन और बुद्धि को जिसने जीता है ऐसा मोक्ष परायण, इच्छा, भय और क्रोध से रहित सदा मुक्त ही है, इसको भृकुटि या त्रिकुटि, ध्यान या सुरति साधना, सुन्न ध्यान सहज अवस्था कहते हैं।

गीता के छटे अध्याय के मन्त्र ७ से १२ तक में साधक के लक्षण और

आसन की विधि बतलाई और मन्त्र १३ में लिखा है कि ग्रीवा को समान और अचल धारण करके दृढ़ हो कर अपने नासिका के अग्रभाग को देख कर अन्य दिशाओं को न देखता हुआ शान्त अन्तःकरण से मेरे परायण हुआ स्थित होवे यह नासाग्र ध्यान कहलाता है इससे केवल कुम्भक हो जाता है इसको शुग़ल ताउसी भी कहते हैं।

गीता के आठवें अध्याय के मंत्र १२ व १३ में लिखा है कि सब इन्द्रियों के द्वारों को रोक कर मन को हृदय में स्थिर करके, प्राण को मस्तक में स्थापित करके, योग में स्थित हो कर, ॐ एक अक्षर रूप ब्रह्म का उच्चारण करे—

गीता के चौथे अध्याय के मंत्र २९ और ३० में प्राणायाम की विधि बतलाई है और अध्याय ९ के मंत्र १४ में कीर्तन का उपदेश है और अध्याय १२ के मंत्र ६ से १३ तक ध्यान योग बतलाया है ।

योग वशिष्ठ के पाँचवें प्रकरण के, सर्ग ४९ में भी चित्त को रोक कर आत्म चिंतन में लीन करने की विधि लिखी है—

आँख कान मुख मूँद के, नाम निरन्जन ले ।
भीतर के पट तब खुले, जब बाहर के पट दे ॥
हृदय नाभि और त्रिकुटि, तीन ध्यान स्थान ।
सुरति, एकता नाभि में, हृदय तेज प्रधान ॥
सुरति लीन हो त्रिकुटि, ब्रह्म रन्ध्र में ज्ञान ।
तीन ध्यान की एकता, परम शान्त उर आन ॥
सब संवत मन से रहे, तज विचार और ज्ञान।
निर्भय पद की अवस्था, कैसे करूँ बखान ॥
निर्भय पद की अवस्था, जियो प्रकाशे भान ।
रहे देह में विदेह हो, अविनाशी निर्वान ॥
ज्यों का त्यों पहचान कर, दूजे छूटे कान ।
आप सम्भाल कमान ले, खेंचे प्राण अपान ॥

आँख बन्द करने से मुराद सहज समाधि है, कान बन्द करने से अनहद शब्द सुना जाता है। इसको सुन्न समाधि भी कहते हैं । मुँह बन्द करने से मुराद ॐ का उच्चारण और प्रणव का जाप है। इसके अलग-अलग तरीक़े हैं। पहला प्राणायाम में रेचक, पूरक, कुम्भक के साथ ॐ का उच्चारण करते हैं

जैसा "अ-ऊ-म्" आठवें अध्याय में लिखा है। द्वितीय मुँह बन्द करके नाक से श्वांस ली जाती है और श्वांस के अन्दर जाने और बाहर आने पर ध्यान रखा जाता है यही अजपा जाप है। इन बातों पर विचार करने से मालूम होगा कि इन तीनों तरीकों में शरीर यानि इन्द्रियों को ठहराकर और मन को बाहिर के ख्यालातों से हटा कर ध्यान करने को कहा है। छटे अध्याय में नाक के अगले हिस्से पर पाँचवें अध्याय में भवों के मध्य में और आठवें अध्याय में ब्रह्मरुन्ध्र के मुक़ाम पर ध्यान करने की हिदायत की है। पहले नाक के अगले हिस्से पर ध्यान लगाया जाता है। जब ध्यान ठहरने लगता है तो खुद बखुद ऊपर को चढ़ता है उस वक्त भवों के मध्य में ठहरता है, फिर ब्रह्मरुन्ध्र में, इसका सार यह है कि ध्यान की दुरुस्ती यानि वह ठीक होना चाहिये। ध्यान शरीर के किसी हिस्से में ठहराया जाये। जिसका ध्यान जिस्म के हिस्से में न ठहरे तो बाहिर किसी मूर्त्ति या किसी और चीज़ या निशान पर ठहराये। मन चंचल है और हर वक्त हरकत करना उसका स्वभाव है। एक स्थान पर यह ठहरना नहीं चाहता, इधर-उधर भटकता और भागता है। चंचल स्वभाव वाले को चंचल चीज़ों से मेल और प्रेम होता है। स्थिर स्वभाव वाले को स्थिर स्वभाव वालों से मेल होता है।

कुनद हम जिन्स बहम जिन्स प्रवाज़।
कबूतर बा कबूतर, बाज़ बा बाज़॥

पंछी अपने ही मेल वालों से मिल कर उड़ते हैं। जैसे कबूतर, कबूतर के साथ, बाज़ बाज़ के साथ।

दूसरे लोहे को लोहा ही काटता है। इन नियमों से अचल स्थानों में मन को ठहराने में दिक्कत होती है। इसलिये महात्मा लोगों ने अजपा जाप का तरीक़ा निकाला है। इसमें मन का ध्यान श्वांसों पर रखा जाता है। मन भी चलायमान चीज़ है और श्वांस भी चलायमान है और इन दोनों का सम्बन्ध भी आपस में गहरा है। एक के निश्चत होने से दूसरा खुद बखुद ठहर जाता है। इस अभ्यास में "एक पन्थ दो काज" की मिसाल होती है। श्वांस के साथ-साथ ऊपर नीचे जाते रहने से मन को भी ऐसी घबराहट नहीं होती, जैसे कि प्राणायाम में श्वांसों को होती है। श्वांस की चाल कुदरती है इसलिये

उस पर ध्यान देना यानि अजपा जाप को भी एक कुदरत का काम समझना चाहिये। श्वांस के अन्दर जाने और बाहर निकलने से एक आवाज़ पैदा होती है उसको गौर से सुनने वालों ने "सोहम्" की आवाज़ कहा है। अजपा में इस आवाज़ को चीनना ही मुख्य है, यानि इस आवाज़को जानना ही सार है। इसका तरीक़ा यह है कि जिज्ञासु मुँह को बन्द करके श्वांस नाक से ले और दिल से विचारों को दूर करके श्वांस के जाने आने पर ध्यान दे, जिस वक्त श्वांस अन्दर की तरफ़ खेंचने से "सो" की आवाज़ और अन्दर से बाहर की तरफ़ आने से "हम्" की आवाज़ पैदा होती हुई विचार करने पर प्रतीत होगी। इस अमल को जहाँ तक हो सके और जिस क़दर हो सके धीरे-धीरे बढ़ाया जाय। इसको अजपा जाप या मंत्र योग भी कहते हैं। हर घट में जो जाप यानि नाद की ध्वनि हो रही है उस तक पहुँच जाने से आख़िरी मुक़ाम प्राप्त हो जायेगा। यही मतलब कुल अभ्यासों का है सब का आखिरी मुकाम एक ही है। अभ्यास करते-करते सब बातें जो शास्त्र में लिखी हैं अपने आप मालूम होने लगती हैं। मिसाल के तौर पर यह जिस्म नहीं है, यह संसार नहीं है। इनके बाद जो असली चीज़ है उसका अनुभव हो जाता है। बग़ैर अभ्यास के चाहे जितनी बार मुँह से कहो या दिल से ख्याल करो कि जिस्म नहीं है मगर वह लोप नहीं हो सकता मौजूद ही रहता है। यानि अस्लियत का अनुभव बग़ैर अभ्यास के नहीं हो सकता और बग़ैर अस्लियत के अनुभव किये चाहे जितनी किताबें इन्सान पढ़े और चाहे जिस पदवी पर पहुँचे, उसका भ्रम दूर नहीं होता।

पाँचों तनमात्रा में आँख और कान बड़े प्रबल हैं और इन्द्रियों से जब विषय का मेल होता है तब विषय का ज्ञान होता है। आँख और कान दूर और पास दोनों से अपना काम करते हैं इसलिये इन दोनों को ठहराने के लिये यतन आवश्यक है, किसी बाहरी वस्तु या अन्तरी चक्र और स्थान पर ध्यान लगाने से आँख का काम रुक जाता है और कान का काम रोकने के लिये शब्द का सुनना सोहम् की धुन या अनहद शब्द में ध्यान लगाना, आशय यह है कि जैसे भी हो सके दसों इन्द्रियों और चारों अन्तःकरण को एक वस्तु या स्थान पर टिकाना है।

अजपा के सिद्ध होने के लिये ऐसा लिखा है—"आठ मास मुख से जपे,

सोलह मास कंठ से और बत्तीस मास हृदय से जपे तो उसका हृदय निर्मल हो जावे, अगर पाँच वर्ष जपे तो रोम-रोम से मालिक का नाम निकलने लगे। मुख, कंठ और हृदय आदि से जाप करने से आशय परा, पश्यन्ति, मध्यमा और बेखरी वाणी से जाप करने से है।

इन अभ्यासों की विधि पर विचार करने से प्रतीत होगा कि मंशा और मतलब सब का एक ही है। कीर्तन, भजन, प्राणायाम, अजपा, ॐ का जाप, नाद का श्रवन चाहे जोनसा भी एक तरीक़ा ले लो और दृढ़ता से उसका अभ्यास करो, बेड़ा पार हो जावेगा कभी इसमें, कभी उसमें, मन नहीं भटकाना चाहिये।

"एक ही साधे सब सधैं, सब साधे सब जायें"

(२०८) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि एक बेलिखा पढ़ा शौकीन आदमी किसी वृद्ध रईस के पास नौकर था जो चश्मा लगा कर ही लिखने पढ़ने का काम कर सकते थे। जब उनको किताब वग़ैरा पढ़ने की ज़रूरत होती तो नौकर से कहते कि पढ़ने का चश्मा दे, तो नौकर चश्मा उठा कर दे देता और वह उसको लगा कर पढ़ने लगते। नौकर ने सोचा कि यह चश्मा बड़ी अच्छी चीज़ है, इसको लगा कर इन्सान पढ़ सकता है, इसलिये एक चश्मा खरीद लेना चाहिये, हम भी लगा कर पढ़ लिया करेंगे। वह चश्मे वाले की दुकान पर गया और उससे कहा कि हमें पढ़ने का चश्मा दे दो। दुकानदार ने कुर्सी पर बैठाया और जाँच के काँच आँख पर लगा दिये और खरीदार के हाथ में किताब दे कर कहा कि पढ़िये। खरीददार ने जबाव दिया कि पढ़ा नहीं जाता। दुकान-दार ने नज़दीक और दूर की नज़र के सब चश्मे एक-एक करके लगाये मगर जब भी पूछता तब ही खरीददार यही जबाव देता कि पढ़ा नहीं जाता। उसको शक हुआ कि कहीं यह अनपढ़ तो नहीं है। उसने खरीददार से पूछा कि कौन सी जबान पढ़े हैं। खरीददान ने उत्तर दिया कि हम पढ़े होते तो चश्मा खरीदने क्यों आते। इसी तरह से आजकल के साधुओं के खाने-पीने, पहरने और रहने सहने के ठाठ देख कर लोगों का मन भी वैसे ही रहने-सहने के वास्ते चलता है और समझते हैं कि सिर्फ गेरुआ वस्त्र पहरने या भेष धारण करने से आराम के कुल सामान एकत्र हो जाते हैं। इसी धुन में वह मूड़ मुड़वा लेते हैं, उनको

यह पता नहीं कि यह कुल सामान पूर्व-ले कर्मों का फल होता है और सिर्फ सर मुड़वाने से ही हाथ नहीं आता।

(२०६) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि चार जगह मन की परीक्षा करनी चाहिये। १-नेक कर्म में अहङ्कार और दिखावा न हो। २-बोलने में लालच न हो। ३-दान में अहसान न जतलावे। ४-और जो कुछ बचाया है उसमें कंजूसी न हो।

(२१०) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि (१) लायक वही मनुष्य है जो परमात्मा से डरता है और किसी से किसी बात की आशा नहीं रखता। (२) रईस वही है जो सब को सम-दृष्टि से देखे। (३) धनाढ्य पुरुष के लिए सब से अच्छी बात अतिथि सत्कार और मोहताजों को खिलाना है।

(२११) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि योग के अङ्गों में सब से पहला अङ्ग संयम है। इसमें यह बतलाया गया है कि शरीर की खान-पान की क्रिया किस तरह से करनी चाहिए और मानसिक व्यवहार में किस तरह विचरना चाहिये। खान पान में सूक्ष्म और जल्दी हज़म होने वाली चीज़ युक्ति पूर्वक हों। इतना ठूंस कर न खाये कि गले तक भर जाय और आलकस में पड़ जाये।

अन्दरून अज़ तवाम् ख़ाली दार, ता बिरंद नूरे मारफत बीनी॥

अगर तू परमात्मा का प्रकाश देखना चाहता है तो भर पेट भोजन मत कर।

न इतना कम खाये कि भूख से चित्त व्याकुल हो जाये। खाने के बाद फौरन ही सोना ठीक नहीं। खाना खाने के बाद कम से कम चार घन्टा पीछे सोना चाहिये। वजह यह है कि खूब पेट भर कर खाने से हता नाड़ि में बोझ हो जाता है, इससे प्राण की नाड़ी रुक कर चलती है। सोते में पहले घोर निद्रा उसके बाद स्वप्न दिखलाई देते हैं। खाने के तीन चार घन्टे पश्चात् खाया हुआ खाना चौथे ख़ाने हज़म में पहुँचता है और वह हाज़मे का स्थान वीर्य स्थान के निकट है। इसलिए उसकी गर्मी से वीर्य तप्त होकर स्वप्न दोष हो जाता है। पेड़ू के करीब बहुत गर्म कपड़ा पहनना, बहुत गर्म खाना खाना

तेज़ सिरका, राई, चाय, लाल मिर्च, खटाई और कई क़िस्म की गर्म तासीर वाली चीज़ें वीर्य को बिगाड़ती हैं। "ताता, तीता आमता तीनों धातु विनाश"। इस तरह से वीर्य के गिर जाने से अभ्यासी के दिल में क्षीणता पैदा हो जाती है, दिन में सोना तो हर हाल में मना है। रात में भी सोने के वक्त से तीन चार घन्टे पहले खाना खा लेना अच्छा होता है। रात का भोजन ज़रा कम हो तो ठीक बात है। गृहस्थाश्रम के स्त्री पुरुष के धर्म में भी संयम की ज़रूरत सिर्फ वीर्य रक्षा के लिए है और वीर्य की रक्षा की ज़रूरत यूँ है कि जिस तरह चालीस बूंद रक्त से वीर्य की एक बूंद बनती है उसी तरह बहुत से वीर्य से बहुत थोड़ा ओज बनता है। जीव मात्र में जो तेज और खूबसूरती नज़र आती है वह भी ओज ही की शोभा है। अन्तर में जो प्रकाश नज़र आता है वह भी ओज ही का असर है। योग अभ्यास करने से उस के प्रकाश में मल, विक्षेप, आवरण आदि दूर हो जाते हैं और आत्म-दर्शन होता है। आत्मा तो सदा स्वयं प्रकाश रूप एक रस है। योग करने से रस में कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ करता। जिस मनुष्य का वीर्य क्षीण हो उसका ओज भी कम बनता है और उसकी शोभा भी कम होती है। ओज बिल्कुल कम हो जाने से ज़िन्दा आदमी की चेष्टा भी मुर्दे की सी हो जाती है।

साईं जग में योग करि युक्ति न जाने कोय, जब नारी गवने चली चढ़ी पालकी रोय।
चढ़ी पालकी रोय जाने नहीं कोई जी की, मन हर्षित ह्वै चली पूजि हैं आसा ही की।
कहि गिरधर कविराय अरे जनि होऊ अनारी, मुँह से कहे बनाय पेट में बिनवै नारी॥

योग अभ्यासी को मल मूत्र के त्याग में भी कष्ट का सामना नहीं होता। अगर कब्ज़ ज़्यादा हो तो बांये नथने को रोक कर चंद बार दाहने सुर से श्वांस ले तो मल त्याग होने में आसानी होगी। इसी तरह पेशाब की रुकावट दूर करने के लिए दाहने सुर को बंद करके चंद बार बांये सुर से श्वांस ले और निकाले। शरीर में सर्दी का वेग हो तो बांये सुर को बंद कर दाहने से श्वांस लेने और निकालने से सर्दी दूर हो जाती है। अगर गर्मी मालूम हो तो दाहने सुर को बंद करके बायें सुर से श्वांस लेने और निकालने से तरी मालूम होती है। मंदाग्नि में भी दाहिना सुर चलाने से फायदा होता है ख़ास ख़ास कुम्भक करने से भी गर्मी सर्दी का असर दूर किया जा सकता। पेड़ू पर बाँये हाथ से हलके-हलके मलने और गर्मी पहुँचाने से पाखाना आने में आसानी होती है।

(२१२) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि कँवारी जवान लड़की के मन में किसी खास बात की इच्छा हुआ करती है, परन्तु उसका अनुभव नहीं होता। जब पहली बार योग्य पुरुष से उसका विवाह संयोग होता है तो अरसा से जिस आनन्द की लहरें मन में उठा करती थीं उसका अनुभव हो जाता है और उसे निश्चय हो जाता है कि उसकी इच्छा पूर्ण हो कर सन्तान रूप फल भी प्राप्त हो जाता है। पुरुष अयोग्य हो तो उस इच्छा की पूर्त्ति नहीं होती। न तो उस आनन्द का पूरी तरह से अनुभव होता है, न फल रूप सन्तान होती है। इसी तरह से जिज्ञासू भी आत्म आनन्द के प्राप्ति की इच्छा ले कर जब किसी पूर्ण गुरु से मिलता है तो पहली मुलाकात और नज़र ही में उसके दिल में एक खास किस्म की शान्ति पैदा हो जाती है। बल्कि उनके उपदेश और उसके अभ्यास से दो चार दिन में ही जिस पद तक उसकी पहुँच इस जन्म में होने वाली होती है उसका अनुभव उसको एक बार ज़रूर हो जाता है चाहे क्षण भर के लिए ही हो। इससे यह लाभ होता है कि फिर उम्र भर वह जिज्ञासू गुमराह नहीं होता और न ढोंगियों और नाक़ारा साधुओं के जाल में फँस सकता है। क्यों कि उनकी संगत से उसके दिल पर ज़रा भी आनन्द का अनुभव नहीं होता बल्कि उल्टी घृणा इसी तरह हो जाती है जैसे स्त्री को अयोग्य पुरुष की संगत से होती है बहुत से जिज्ञासू इस अनुभव को अपनी करनी का फल समझ कर बड़े मान से यह कहते हैं कि हम ने यह देखा, और वह देखा। हम को थोड़े ही अभ्यास से यह प्राप्ति हो गई मगर वास्तव में यह उनकी करनी का फल नहीं होता सिर्फ गुरु की कृपा होती है। थोड़े समय के बाद जब वह हालत दूर हो जाती है तो जिज्ञासू व्याकुल हो जाता है। इस दृश्य से उसको यह समझना चाहिये कि जो पद उसको गुरु ने अब दरसाया है वह उसको इस जीवन में पुरुषार्थ से हासिल करना है। अगर वह अभ्यास में लगा रहे और गुरु की कृपा साथ हो तो इस जीवन में जल्दी या देर से वह पद उसको प्राप्त हो जाता है। इसके प्रतिकूल अधूरे और ढोंगिये गुरुओं ने भगवान् की तलाश करने वालों को फाँसने के लिये मकड़ी की तरह जाल फैलाया हुआ है। सच्चे जिज्ञासू भी सत्य की तलाश में योग्य और अयोग्य के सामने प्रेम से सर झुकाते हैं। न तो विचारों की कोई दिव्य दृष्टि है जिससे अन्धेरे और उजाले में फ़र्क मालूम कर सकें और

न ही मारफ़त यानि ज्ञान है जिससे सच्चे और झूँठे का निर्णय कर सकें और न ही इतनी शक्ति और अनुभव है जिसकी मदद से समय के ऊँच-नीच की ख़बर हो, न कोई मेहरबान है कि जिसकी हिम्मत व सहायता से अपने अन्दर असर मालूम हो सके और उन ख़राब करने वालों के असर से निकल जायें। जो योगी ख़ुद अपनी पूर्णता को प्रकट करते हैं उनको अनुभव से झूँठा पहचान सकें। अगर वे उनकी ज़ाहिरी हालत बिल्कुल शास्त्रानुसार बना भी लें और चेले को भी नमाज़-रोज़ा, पाठ-पूजन, सन्ध्या-गायत्री में लगा भी दें तो भी उनकी संगत से सेर अल अल्लाह यानि प्रकृति पुरुष व सेर फ़िल्लाह यानि एक परमात्मा व सेरमय अल्लाह यानि तत् त्वंअसि व सेर ब अल्लाह यानि ब्रह्ममय पद कभी प्राप्त नहीं हो सकता, बल्कि परिणाम यह होता है कि बहुत काल तक बेकार की तलाश में समय व्यतीत कर दो सूरतों में से एक हालत उस जिज्ञासू की हो जायेगी। (१) या तो अपने निश्चय में अपने आपको भी शेख़ यानि गुरु समझने लगेगा, क्योंकि उसका गुरु भी उसको कह देगा कि बस अब तुम गुरु की तरह उपदेश करने के योग्य हो गये हो, हमारी आज्ञा है कि तुम उपदेश करो और चेले बनाओ। बाज़े मूर्ख तो अपने से पहले अवतार और औलीयाओं से भी अपने आपको अच्छा समझने लगते हैं और कहते हैं कि राम, कृष्ण तो नीचे के लोकों के हैं हम उनसे ऊँचे पद तक पहुँच गये हैं। ऐसे बुरे विचारों में डूब कर वह ज़बरदस्ती हठ से लोगों को अपना शिष्य बनाते हैं। इससे बड़ी भूल यह होती है कि उनकी इच्छा और ढूँढ़ने की तीव्र इच्छा मिट जाती है। बस समझ लो कि वह डूब गया और गुमराह हो गया। बल्कि यह भ्रम उसके दिल में उठता है कि हमारे गुरु के समान कोई विद्वान नहीं, अगर उनके पास और कोई शक्ति होती तो हमको बता देते। (२) दूसरी हालत यह होती है कि जिज्ञासू गुरु की कृपा को न पाकर गुरु के कर्त्तव्य से इन्कार करके साधू महात्माओं का विरोधी बन जायेगा और निन्दा करके कहेगा कि उनकी युक्तियों में कुछ नहीं धरा है सब ढोंगिये हैं। पहले जैसे महात्मा अब हैं ही नहीं। तलाश करने पर भी जब उनको कुछ नहीं मिला तो अत्यन्त निराशा से पक्का निश्चय हो जाता है कि अगले महात्माओं के हालात भी सिर्फ़ बातें ही बातें हैं। अगर कुछ असलियत होती तो हमारे गुरु और हम में ज़रूर कुछ होना चाहिये था। यह भी बड़ी गुमराही है। इसलिये जिज्ञासू को वाजिब है कि

शुरू काम में बहुत एहतियात करें। जिज्ञासुओं को परमात्मा ऐसे फन्दों से छुटायें।

पोशीदा मुएका अन्द ईं खांमें बन्द।
नारफता रहे सदको सफा गाये बन्द॥
बिगरिफ़्ता जोतालेमाते अल्फ लामें चन्द।
बदना कुनिन्दाये निको नामे चन्द॥

यह कुछ कच्चे गुदड़ियों में छुपे हैं सचाई के मार्ग पर चंद क़दम भी नहीं चले हैं, इन्होंने वर्णमाला के कुछ अक्षर पकड़े हैं और सचाई के मार्ग पर चलने वालों को बदनाम करते हैं।

(२१३) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि माता, पिता, साधू, महात्मा, गुरु, नबी, वली, रसूल, अवतार, देवी देवता यहाँ तक कि खुदा व परमात्मा सब की भक्ति में कुछ न कुछ परिश्रम करना पड़ता है मगर फल और परिणाम उसका इतना लाभदायक होता है कि भक्त का उत्साह बढ़ता जाता है, वह उकताता नहीं। मुरादें हासिल होती हैं, इच्छायें पूर्ण होती हैं, उम्मीदें बर आती हैं, पुण्य के फल का चसका, पाप से बचने की खुशी से जिज्ञासु का साहस बढ़ता जाता है। इसके प्रतिकूल उसकी ज़ात यानि आत्मा के पुजारी की हालत प्रवृत्ति की नज़र से बड़ी भयंकर मालूम पड़ती है। वैराग्य कहिये या संसार से घृणा कहिये ऐसी कि—वह सोचता है—

रहिये अब ऐसी जगह चल कर जहाँ कोई न हो।
हम सुख़न कोई न हो और हम ज़बाँ कोई न हो॥
बे दरो दीवार का एक घर बनाना चाहिये,
कोई हमसाया न हो और पासबाँ कोई न हो।
पड़ें गर बीमार तो कोई न हो तीमार दार,
और अगर मर जाइये तो नूहे ख़ुआँ (रोने वाला) कोई न हो
पशु पक्षी नर नारि सङ्ग नहीं लीजिये।
दूजे ही को साथ सभी तज दीजिये॥

लिबास का यह हाल कि—

"सात गाँठ कोपीन के लगीं, साध न माने सङ्क।
राम अमल जाको चढ़यो, गिने इन्द्र को रङ्क॥

इच्छा पूर्त्ति का यह हाल है—

नामुरादी रा कुनी गर दोशये।
फ़ारिग़ आई अज़ ग़म ओं अन्देशये॥

अगर तुम निषकामता पर दृढ़ विश्वास कर लो तो चिन्ता और भय से छूट जाओगे। आशा ऐसी रखें कि उसकी पूर्ति होने की कभी आशा ही न हो।

दरगुज़र अज़ गुफ्त गू ऐ नामुराद ।
बे मुरादी न मुरादा ऐ मुराद ॥

ऐ बदनसीब तू वृथा बातें छोड़ दे । नामुरादों के लिये नामुरादी ही मुराद है। इच्छा से रहित पूर्णों के चित्त में इच्छा उत्पन्न न होवे यह ही उनकी इच्छा होती है। कामयाबी के लिये यह बात समझनी चाहिये।

राहरा ईंजा दरे नाकामीस्त ।
कामे नेक मरद दर बदनामीस्त ॥

इस जगह जिज्ञासू को कामयाबी नहीं है और नेक आदमी का काम निन्दा और बदनामी गिना जाता है और आखीर में क्या हासिल होता है।

अवल ता आखिर हर मुन्तही और आखिरे माजेबे तमना तही ।

औरों के काम की जहाँ हद होती है वहाँ से हमारा काम आरम्भ होता है और हमारे काम का अन्त इच्छा, तृष्णा और वासना का अन्त है मगर परमात्मा ने ऐसे हौंसले वाले भी दुनियाँ में पैदा किये हैं कि इस तलवार की धार पर चलते हुए भी उनका क़दम आगे ही बढ़ता है।

"जेबे तमन्ना तही" का मज़ा वही जानते हैं। बुराई-भलाई उनकी ऊँच दृष्टि में बच्चों का सा खेल नज़र आता है । निन्दा स्तुति समान हैं, पाप-पुण्य, नर्क-स्वर्ग का नाम सुन कर दिल ही दिल में मुस्कराते हैं।

(२१४) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि उत्पत्ति के लिये सब से पहले बीज की ज़रूरत पड़ती है लेकिन बीज को लेने से पहले यह देखना ज़रूरी है कि यह सड़ा, गला, घुना, छोटा तो नहीं है। अगर ऐसा हो तो उगेगा ही नहीं फल देने का तो ज़िकर ही क्या है। इसलिये बीज में शक्ति का होना आवश्यक है। जब बीज बो दिया तो उसको विरोधी असुरों से बचाने के लिये रक्षा की ज़रूरत है जिस तरह से गायें, भैंसें आदि पशुओं को खूँटे से बाँध देने से वह एक जगह बँधे हुए सुरक्षित होते हैं इसी तरह बोये हुए बीज की रक्षा करने से और एक जगह स्थापित कर देने से वह सुरक्षित हो जाता है। इसी नियमानुसार

व्यापार आदि के लिये पहले धन की आवश्यकता है, परन्तु यह देख लेना चाहिये कि धन शक्ति वाला है। शक्ति वाला धन वह कहलाता है जो न्याय और सचाई से पैदा किया गया हो और ऐसे धन से ही कारोबार में वृद्धि होती है और फिर आये हुए धन को ताले ताली में सुरक्षित करना पड़ता है। इसी तरह से शास्त्र रूपी खेती और वाणिज्य व्यापार से फ़ायदा उठाने के लिये भी इन्हीं तीन चीज़ों की ज़रूरत पड़ती है। मुमकिन है कि किस्सा, कहानी, नाविल और मामूली किताबों में इस बात का लिहाज़ न हो परन्तु हर एक महाशास्त्र में पहले परमात्मा का नाम, फिर मंगल वाक्य, फिर विषय, प्रयोजन, सम्बन्ध यह पाँच बातें अनुबन्ध चतुष्टय कहलाती हैं। इसके बाद बीज, शक्ति और कीलक स्थान-स्थान पर होते हैं। जिज्ञासू को चाहिए कि शास्त्र पढ़ने से पहले इनका पता चला ले या विद्वान् गुरु से पूछ ले। इसके उपरान्त शास्त्र को पढ़ने से पूरा लाभ होता है। जिस तरह हर एक शास्त्र को पढ़ने से पहले उसके विषय, प्रयोजन, और सम्बन्ध को देख लेना ज़रूरी है और श्रीमद्भागवत् गीता में हाज़िर-ग़ायब और मुतकल्लिम, यानि मैं, तूं और वह का जान लेना ज़रूरी है। इसी तरह बीज, शक्ति और कीलक का मालूम करना आवश्यक है। उदाहरण के तौर पर ही श्रीमद्भगवत् गीता को लो और इन चीज़ों को तलाश करो तो मालूम होगा कि तमाम गीता के उपदेश का बीज मन्त्र दूसरे अध्याय के ११वें श्लोक के पहले पद में है —

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञा वादांश्च भाषसे।

यानि तू भूल में फंसा है और भूल को सत्य समझ रहा है।

गीता रूप खेत में जो कुछ पैदा होगा इसी बीज से होगा और इस बीज की जान या शक्ति गीता के अठारहवें अध्याय के ६६वें श्लोक के पहले हिस्से में है।

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणां व्रज '

तू कर्त्तापन के अहंकार को त्याग दे यह समझ के जो कुछ हो रहा है मुझ से हो रहा है।

इसी शक्ति के आधार पर बीज फले फूलेगा और इसी श्लोक का

अख़िरी हिस्सा कीलक है। यानि ख़िलाफ़ असर करने वाले मन्त्रों से रक्षा और दूसरे मन्त्रों के बुरे असर को भी दूर कर देगा। और तरह तरह की निष्ठायें जो हमारे मन पर क़ाबू पा चुकी हैं वे इसी मन्त्र से दूर होंगी।

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो, मोक्षयिष्यामि मा शुचः।

जब तू ऐसा समझ लेगा कि सब कुछ मुझ से हो रहा है तो फिर पाप पुण्य से तेरा निस्तार हो ही जावेगा।

जो कुछ किया सो तें किया मैं किया कुछ नाहिं।
तुझ बिन मैंने क्या किया तू भी था मुझ माहिं॥

(२१५) एक रोज़ एक आदमी ने पूछा कि राज में परिवर्तन के पूर्व क्या लक्षण होते हैं? श्री महाराज ने फ़रमाया कि हर काम के लिए पृथक २ आचार्य होते हैं। हमारे सुपुर्द ईश्वर ने जीव उन्नति सम्बन्धी काम किया है। इसलिए हमको उसी के बारे में बातें मालूम हैं। आप का सवाल राजनीति के बारे में है, इसके बारे में हम को पूरी वाक़फ़ीयत नहीं। सवाली ने अर्ज़ किया कि धर्म स्मृतियों में सभी धर्म बतलाये हैं। महात्माओं को सब के बारे में भ्रम निवारण करना चाहिए। मैं राज बदलने की तरकीब तो नहीं पूछता मैं तो पूर्व के लक्षण पूछता हूँ ताकि हर मनुष्य को लक्षण देख कर पता चल जाये और जो राज-काज करने वाले अधिकारी हैं उनको विदित हो जाये, और ऐसे लक्षण प्रकट होने पर वह अपनी स्थिति को सम्भालना चाहें तो सम्भाल लें। आपका फ़रमाना तो सब के लिए उपदेश की शक्ल में होता है, इस विषय में भी उपदेश करना पाप तो नहीं है। श्री महाराज ने फ़रमाया कि जिन उच्च बातों से राज मिलता है उनके विरोधी बातों से राज में परिवर्तन होता है। "तप से मिले राज राजा को, तप से साधू कलाधारी" दूसरे अक्षरों में राज बड़ी तपस्या और उत्तम कर्मों का फल है। जिस मनुष्य या जाति के लोगों का व्यवहार धर्ममय और नीति के अनुसार होता है, और हर काम सच्चाई और नेक नियती से करते हैं उनमें सुमति होती है। जिस तरह अलग अलग सींकें बुहारी में बँधने से घर का कूड़ा-करकट साफ़ हो जाता है, इसी तरह उस जाति के लोग संगठन करने से सब बुराईयाँ अपने अन्दर से निकाल देते हैं।

फिर जहाँ "सुमति तहाँ सम्पति नाना" का फल प्रकट होजाता है। धन का मोह बरसता है, धरती सोना उगलती है। सब का आपस में विश्वास होता है, उस जाति के लोग समय और वचन के बड़े पाबन्द होते हैं। हर काम ठीक समय पर करते हैं। जिस समय मिलने का वचन दें उस वक्त मिलते हैं और जिस बात का वचन दें उसको ज़रूर पूरा करते हैं एक दूसरे की सहायता करते हैं। स्त्रियाँ पतिव्रता और सती हों, पुरुष सदा चारी और ब्रह्मचारी, परमात्मा पर विश्वास, आप भी धर्म के पाबन्द हों और प्रजा को भी पाबन्द बनायें। सब पर दया करें और सब का भला चाहें। अहिंसा उनका परम धर्म होता है। पक्षपात से दूर होते हैं। शरीफ़ों और आला मनुष्यों की इज़्ज़त करते हैं। और ऐसे ही आदमियों को राज काज में नियत करते हैं जिससे प्रजा पालन और शरफ़ापरवरी होती है। ऐसी नीति पर चलने वाली क़ौम और मनुष्य को राज प्राप्त होता है और रण में जीत होती है। गीता जी के दसवें अ० के ३८ वें मन्त्र में लिखा है कि जीतने की इच्छा करने वालों की नीति "मैं हूँ" और इसी अ० के ३६ वें श्लोक में लिखा है कि जीतने वालों की विजय "मैं हूँ" गोया नीति और धर्म पर चलने से ही विजय होती है। और यही भगवान् का स्वरूप है, "जहाँ धर्म तहाँ आप" बृहदारण्यक उपनिषद् के चौथे ब्राह्मण में लिखा है कि परमात्मा सब चीजों के बनाने के बाद भी पूरी ताकत वाला नहीं हुआ तब उसने एक बड़ी लाभदायक सृष्टि पैदा की जो धर्म है। इससे बढ़ कर कोई चीज़ नहीं। साम, दाम, दण्ड व भेद नृप अरकुम्भेनाथ कहें वेदा। इन्साफ ऐसा होता है कि मुई, अर्थी और मुद्दालये। (प्रत्यर्थी) दोनों के सर फैसले के सामने झुक जाये और किसी पक्ष को शिकायत करने का मौका और गुञ्जाइश न रहे। पहले बल, दूसरे बुद्धि, तीसरे तेज, चौथे पदार्थ का आना, पाँचवें पदार्थ का मिलना यह बातें विचार और पुरुषार्थ से होती हैं। योग-वशिष्ठ के मुमुक्षू प्रकरण के तेरहवें सर्ग में लिखा है कि बड़े साम्राज्य (१) धर्म (२) न्याय (३) सदाचार (४) और बढ़े बल से क़ायम रहते हैं। इन्साफ ऐसा करे कि मुक़दमेबाज़ी और झगड़ा उठे ही नहीं। जिस पराये देश को राजा ले उस देश में जैसा आचार—व्यवहार और कुल मर्यादा हो उसे उसी रीति से पालन करे। और उनके धार्मिक कामों में बाधा न डाले। नं० १—स्वामी, यानि उत्साह युक्त राजा, २—मन्त्री, ३—प्रजा, ४—किला व हिफ़ाजत का सामान, ५—कोष या खज़ाना, ६—दण्ड यानि

चतुरंगी सैना, ७–मित्र, यह राज के सात मूल कारण हैं । इसी लिए राजा सप्ताड़ी कहलाता है । अच्छे राज्य के लक्षण रामायण के उत्तर काण्ड में यह लिखे हैं । नं० (१) कोई किसी से वैर नहीं करता और आपस में प्रति करते हैं । (२) वेद शास्त्र में कहे हुए अपने अपने वर्णाश्रम के धर्म पर सब प्रजा चलती है । (३) इनको भय, शोक और रोग नहीं होते । (४) देहिक यानि आध्यात्मिक जैसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर और बुखार आदि और दैविक, जैसे पाला, ओला, वर्षा न होना या अति वर्षा का होना और भौतिक, जैसे राजा, चोर, सांप से दुख पहुँचना, ऐसे तीनों ताप नहीं होते । (५) परमात्मा की भक्ति । (६) अकाल मृत्यु नहीं होती (७) सब के शरीर सुन्दर और निरोग होते हैं, दुख दारिद्र नहीं होता । न कोई बुद्धि हीन और कुलक्षण होता है । (८) मनुष्य कर्त्तव्यी होते हैं । दम्भी, पाखण्डी नहीं होते, बल्कि पण्डित और विद्वान होते हैं । कोई कहते हैं कि बल ही धर्म है । Might is Right कोई कहते हैं कि धर्म ही बल है । (Right is might) लेकिन शास्त्र और पुराने इतिहास से ऐसा साबित होता है कि मुल्क और पदार्थ के लेने में बल, Might और पुरुषार्थ की ज़रूरत है । लेकिन सिर्फ बल से ही पदार्थ स्थिर नहीं रह सकता, उसका स्थिर रहना धर्म से ही है । जो निरे बल से राज को कायम रखना चाहते हैं वह उसे खो बैठते हैं । रावण और मेघनाथ के पास कैसी युद्ध क्रिया जानने वाली फौज और कैसे कैसे अस्त्र-शस्त्र और हवाई जहाज़ थे और श्री राम जी के पास खाली हाथ वाले रीछ, बन्दर थे । सवारी को रथ तक न था, पैदल लड़ते थे, मगर रावण और उसकी सब सैना को मार-मार कर बिछा दिया, और

इक लाख पूत, सवा लाख नाती ।
तिस के घर में दिया न बाती ॥

वाली मसल स्थापित कर दी । इसी तरह महाभारत में भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य और करण जैसे महायोद्धा और अनेक प्रकार के शस्त्रधारी थे । सैना भी ज़्यादा थी, मगर सब ठिकाने लग गई । अधर्मी को उसका पाप ही निगल जाता है, उसके साथियों की भी धज्जियाँ उड़ जाती हैं । आखीर को धर्म की ही जीत होती है ।

धर्मेन्य हन्यते व्याधिधर्मेन्य हन्यते ग्रहः । धर्मेन्य हन्यते शत्रु, यतो धर्मस् ! ततो जयः ॥
जो दृढ़ राखे धर्म को, ते राखे कर्तार ।

राजा अपनी प्रजा को बेटा-बेटी की तरह पाले । उनके सुख में सुख और दुख में दुख माने । अहिंसा व्रत का पालन करे । प्रजा को राजा पर ऐसा विश्वास होना चाहिये कि किसी काम में दखल नहीं दे । राजा के अधिकार में ऐसे रहे जैसे बच्चा मां-बाप की गोद में । याग्वल्क्य स्मृति में आचार्य नाम के पहले अध्याय में लिखा है कि जो राजा अपनी प्रजा से अन्याय करके धन बटोरता है वह थोड़े काल ही में अपने बन्धुओं सहित निर्धन हो कर नष्ट हो जाता है । प्रजा की पीड़ा व सन्ताप से पैदा हुई आग राजा का धन, शोभा, कुल और प्राण जलाये बग़ैर ठंडी नहीं होती । राजा के खोटे सलाहकार और दुष्ट कर्मचारी भी राजा के साथ ही नष्ट हो जाते हैं । वह चाव से फ़ौज में भरती हो कर या सहायक बन कर नाश होने को राजा के पास इस तरह आते हैं जैसे रावण और दुर्योधन के पास उनके साथी और रिश्तेदार बन-बन कर मरने को आ गये थे, और गीता के ११ वें अध्याय के श्लोक २८ व २९ का भाव पूरा हो जाता है, जैसे बहुत जल से भरी हुई नदी समुद्र की ओर ज़ोर से दौड़ती है, वैसे ही मनुष्यों के समूह भी मौत के प्रज्जवलित मुँह में प्रवेश करते हैं जैसे पतंगा मोह के वश हो कर जलती हुई आग में ज़ोर से घुसता है, वैसे ही दुष्ट लोग भी मौत के मुँह में ज़ोर से दौड़-दौड़ कर जाते हैं । यह जो मशहूर कर रखा है कि रण में मरने वाले शहीद समझे जाते हैं और मर कर स्वर्ग में जाते है, यह तो इन्सानों की जान लेने और अपना मतलब निकालने के लिये लोगों को भपाड़े पर धर रखा है । जो लोग धर्म, गऊ, ब्राह्मण, मित्र, शरणागत और प्रजा की पालना और रक्षा के लिये युद्ध करते हैं और युद्ध में मरते हैं, वही स्वर्ग पाते हैं । बाकी जो भोग के लिये युद्ध करके मरते हैं वह निश्चय नर्क को जाते हैं । हज़ार वर्ष के बीच के इतिहास से इस तरह की कई मिसालें बतलाई जा सकती हैं,मगर इनका ज़िक्र करना ज़रूरी नहीं । फ़िज़ूल किसी मज़हब या क़ौम का दिल दुखाने से क्या लाभ जो होना था सो हो ही गया । (१) राजा का उत्साह नष्ट हो जाता है । (२) मन्त्री उल्टी सलाह देते हैं । "चढ़ जा बेटा सूली पै, भली करेंगे राम ।" (३) प्रजा बदल जाती है और राज के जूये से स्वतन्त्र होना चाहती है और नहीं तो आपस में लड़ाई भिड़ाई करते हैं । कुमति फैल कर, जैसे

कहा है—"जहाँ कुमति तहाँ विपत्ति निधाना" प्रकार होती है। ज़मीन में रखे हुए खज़ाने लोप हो जाते हैं। बुहारी का बन्धन टूटने से जिस तरह सींकें अलग अलग हो कर सफ़ाई का काम नहीं कर सकतीं बल्कि यूँ ही तितर बितर हो जाती हैं इसी तरह अलग-अलग धर्म, मत और फ़िरके के लोग बल्कि बाप, बेटा और भाई-भाई भी अलग ख़्याल पैदा करके विग्रह खड़ी कर लेते हैं और मामूली-मामूली बातों पर आपस में कटने मरने लग जाते हैं। राजा भी उनको रोकता नहीं बल्कि उल्टी सहायता देता है, कभी किसी का साथी बन जाता है कभी दूसरे का साथी बन कर उनको लड़ाता है और ज़बरदस्त फ़िरके की सहायता से लाभ उठाता है।

सत्त गयो चढ़ स्वर्ग को, धर्म गयो धसक धरण में।
पीत हेत गये छुट, वैर गयो बरण-बरण में॥
घर-घर है रह्यो गैर, दुखित भये नर अरु नारि।
राजा करे न न्याय, प्रजा की है रही खुवारि॥

अविश्वास बहुत बढ़ जाता है न राजा को प्रजा पर विश्वास और न प्रजा को राजा पर। एक दूसरे के काम को बड़ी शंका से देखते हैं। प्रजा स्वतन्त्र होना चाहे तो उसको अपना जीवन धर्ममय बनाना चाहिये। बिना धर्म पर चले उनका सब मनोरथ निश्फल होगा। (४) खज़ाना निपट जाता है खर्च बढ़ कर आमदनी में पूरा नहीं पड़ता, नये-नये टेक्स लगाये जाते हैं। "नृप पाप परायण धर्म नहीं। करु दण्ड विदण्ड प्रजा नित हीं।" (५) फौज बदल जाती है। (६) जो पहले मित्र थे वह दुश्मनी करने लगते हैं। जो शत्रु थे वह झूँठे मित्र बन कर आ मिलते हैं और झूँठा विश्वास दिलाते हैं और अन्दर ही अन्दर छुरियाँ चलाते हैं। (७) जब राजा अपने लिये हुऐ देश के आचार व्यवहार और कुल मर्यादा को नष्ट और प्रजा को भ्रष्ट कर देता है तो उस पाप से उसकी बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाती है।

जेहि विधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं वेद प्रतिकूला॥
भुज बल विश्व वश्यकरि राखे कोऊ न स्वतन्त्र।
मण्डलीक मणि रावण राज करै निज मन्त्र॥

उस क़ौम और राजा का आचार भी भ्रष्ट होने लगता है दुराचारिता फैल जाती है। स्त्री-पुरुष व्यभिचारी हो जाते हैं। यहाँ तक कि राजा भी नीच

स्त्रियों, वैश्याओं और बहन बेटियों पर नीयत बिगाड़ लेते हैं और उनको स्त्री की तरह ग्रहण कर लेते हैं, इनसे जो सन्तान होती है उसके कर्म, धर्म भी भ्रष्ट होते हैं। इसी को गीता में वर्णशङ्कर कहा है । ऐसी कुसङ्गत से राज-काज में नीच लोगों का अधिकार हो जाता है जो घूंस और जालसाज़ी से धन बटोरते हैं राज-काज में राजा अपने भाई-बन्धु और सम्बन्धियों को रख लेता है जो मन-मानी करते हैं। न उनकी फ़रियाद किसी से की जा सकती है न उनकी शिकायत। ऐसा ही हाल रावण के राज में था जिसका वर्णन रामायण के बाल काण्ड में है। १८ अवगुण पैदा हो जाते हैं यानि मद्यपान, हिंसा, विहार, स्त्रीरति रहना, अन्याय, दुर्वचन बोलना, वाचालता, बिना अपराध बध करना, प्रजा से शत्रुता, खेलकूद इत्यादि । याज्ञवल्क्य स्मृत्ति में तो ऐसी जातियों का नाम लिख दिया गया है कि राजा को चाहिये कि उनसे अपनी प्रजा की रक्षा करे। चोर, छलिया, डाकूं, पर स्त्री गामी जिनसे प्रजा की रक्षा होनी चाहिये, खुलमखुला द्वन्द मचाते हैं—

बाढ़े बहु खल चोर जुवारी। जहं लम्पट पर धन पर नारी॥
मानहिं मात पिता, नहीं देवा। साधुन सूँ करवावैं सेवा॥
जिनके यह आचरण भवानी। ते जानों निश्चर सम प्राणी॥

जैसे ठग और पिन्डारों के हालात सुने जाते हैं, राज में कोई सुनवाही नहीं होती, बदमाशों को सज़ा नहीं मिलती, कार व्यवहार अच्छा माल हासिल करने और सस्ता बेचने के लिये नहीं होता, बल्कि जूये और सट्टा की तरह दुकान में धरे-धरे ही निरख़ बढ़ते जाते हैं। राजा के निश्चय किये हुए निरख़ पर कोई चीज़ नहीं मिल सकती, जुर्म बढ़ते जाते हैं। टके सेर भाजी, टके सेर खाजा, ही नहीं बल्कि लोहा, साग, मिठाई वग़ैरा बहुत चीज़ों का एक भाव, कोयला और अनाज भी एक भाव। यहाँ तक सोना और चाँदी भी एक भाव बिकते हैं, चाहे वह खरे न हो कर बिल्कुल बनावटी हों । तेल और घी एक भाव, चना चिरोंजी हो गये और मऊआ हो गये दाख। गुड़ और मिश्री एक भाव हो जाता है हाकिम जिसका काम इन्साफ करना है वह हालात की तरफ़ ध्यान ही नहीं देते । प्रजा की फ़रियाद सुनने की उनको फ़ुरसत ही नहीं कोई अर्ज़ी पेश करें तो उसको पढ़ने का उनके पास समय ही नहीं। भला बिना सुने न्याय कैसे हो सकता है। कचहरियों में मेला सा होता है। अदालतें मज़लूमों और मुक़दमे बाज़ों से

खचाखच भरी रहती हैं, एक अदालत मुद्दई के हक़ में उससे बड़ी अदालत मुद्दालय के हक़ में, तीसरी बड़ी अदालत फिर मुद्दई के हक़ में फ़ैसला देती है और सब से बड़ी अदालत में फिर मुद्दालय जीतता है इस तरह इन्साफ़ का खून होता है। कर्मचारी बुरा भला सब कर देते हैं, हाकिम बे अख़्त्यारी से तकते रह जाते हैं। कोई फ़रियाद करे तो बेकस ग़रीब की तरह जवाब देते हैं कि हम क्या करें, फ़लाँ मातहत ने मामला बिगाड़ दिया है। यूं कहना चाहिये कि बुरा करने का सब को अधिकार होता है, भला करने का किसी को नहीं। खुशामदी लोग और धन से प्यार करने वाली जातियाँ अधिकार पा कर राजा को कारीगरी, कृषिकर्म दस्तकारी और व्यापार के कुल कामों की तरफ़ उसका ध्यान दिलवा कर धन जमा करने के यत्नों में लगाते हैं और इन कामों पर राजा का कब्ज़ा (Monopoly) हो जाने से प्रजा बेकार और धन हीन हो कर महा दुखी होती है। राज्य के कर्म और राजा के ऐश के समान और राज-काज के खर्च आमदनी से बहुत ज़्यादा बढ़ जाते हैं। उनको पूरा करने के लिये प्रजा पर कर (टेक्स) लगा कर तमाम धन इस तरह से खेंच लिया जाता है जैसे जौंक ख़ून पी लेती है। साहूकार बहुत ही ज़्यादा सूद पर कर्ज़ा लेने वालों को कर्ज़ देते हैं। बल्कि सिर्फ़ सूद खाने की इच्छा से कर्ज़ दे कर प्रजा को फाँसते और तबाह करते हैं, दो तरह का काल पड़ता है, बबाई बिमारियों से भी मनुष्य मरते हैं। जमीन में पैदावार नहीं होती, पानी या तो बहुत ज़्यादा पड़ने या बहुत ही कम पड़ने से अकाल पड़ता है। जीव अहिंसा इतनी बढ़ जाती है कि पशु घास की तरह काटे जाते हैं बहुत से अकाल के दुख और चारे की कमी से भी मर जाते हैं।

बरनी न जाये अनीत, घोर निशाचर जो करें।
हिंसा पर अति प्रीति, तिनके पापन कौन मिति ॥

सब जीवों को मरने का दुख समान होता है, परन्तु हिंसा के वश हो कर युद्ध क्षेत्र में लाखों मनुष्यों का खून कराते हुए भी किसी को ख़्याल नहीं होता कि हम परमात्मा के जीवों के साथ क्या कर रहे हैं, और बात की बात के वास्ते क्या खून और अनर्थ हो रहा है, बल्कि चारों तरफ़ से यहीं आवाज़ उठती है कि हाँ चलने दो। अभिमान इस कदर हो जाता है कि घमण्ड के

मारे अपने आपको सब से बली समझने लगते हैं और दूसरों को तिनके के बराबर। जैसे रावण और उसके कर्मचारी, राजा रामचन्द्र जी और उनकी फौज को तुच्छ समझते थे। इस कुबुद्धि में फस कर अपनी वृद्धि और उन्नति के यत्नों को भी छोड़ बैठते हैं शत्रु इसका लाभ उठा कर खूब मार कुटाई करता है। जब सर पर आती है तब होश आता है। राजा और राज्य के अधिकारी समय और वचन के पाबन्द नहीं होते। कह कर पलट जायें, जो वचन दें उसको पूरा न करें। राज-काज हो चाहे दुनियाँ दारी के काम, खाने, पीने, सोने, भजन, पूजन सब कामों के लिये जो निश्चित समय चले आते हैं उनकी पाबन्दी नहीं रहती, बल्कि वक्त ही घट बढ़ जाता है इससे पता लग जाता है कि उसका वक्त बिगड़ गया और मुँह भी बिगड़ गया, बात भी बिगड़ गई और परमात्मा को तो बिल्कुल भूल जाते हैं, ईश्वर चीज़ ही क्या है? धार्मिक कामों में रुकावट पैदा करते हैं। रावण ने अपने पतन से पहले जो कुछ किया था उसका वर्णन रामायण के बालकाण्ड में है।

"द्विज भोजन मख होम सराधा। सब कर जाइ कहहू तुम बाधा॥"

पक्षपात बढ़ जाता है और अपने पराये का भाव पैदा होता है। जब ऐसी घटनायें ज़ाहिर हों तो समझ लेना चाहिये कि विनाश काल आ गया फिर "विनाश काले विपरीत बुद्धि", जो कोई मन्त्री या धर्मात्मा मनुष्य राजा को अच्छी सलाह दे तो या तो बन्दीगृह में भेजा जाये या निरादर के साथ राजसभा से इस तरह से निकाला जाये जैसे रावण ने मालवन्त नाम बूढ़े मन्त्री को निकाला था, और कोई बार-बार नेक सलाह दे तो विभीषण की तरह मार और लातें खा कर निकाला जाये। ऐसी अवस्था में चुप ही भली।

गरचे दानी कि नशुबन्द मगो, हरच दानी तो अज़ नसीहतओं पन्द।
ज़ूद बाशद कि ख़ैरा सर बीनी, बदो पाये ओफ़तादा अन्दर बन्द॥

तू जो कुछ नसीहत के तौर पर जानता है उसे मत कहो अगर कोई सुनने वाला नहीं है, क्योंकि जल्द ही तू किसी की बात न मानने वाले घमन्डी को दोनों पाँव बंधा हुआ बन्दी ख़ाने में देखेगा। राजा देश के असली आचार व्यवहार और कुल की मर्यादा या तो बिल्कुल बदल देता है या वह भ्रष्ट हो

जाती है पहनाव भोजन और जीवन के सब तरीक़े बदल जाते हैं। साम, दाम, दण्ड, भेद राजा को त्याग जाते हैं।

धर्म हीन प्रभु पद विमुख, काल विबस दस शीश।
आये गुण तज रावणहिं, सुनेहु कौशला धीश॥

चूँ मुख़ बित शुद ऐतिदाले मिज़ाज।
न हजीयत असर कुनद न ईलाज॥

जब बीमार की प्रकृति बदल जाती है तो न दवा से अच्छा होता है न चीरा फाड़ी से। इसी तरह से जब राज्य की गति बिल्कुल पलट जाये तो उसका अन्त देख कर महात्मा भी उसको ऐसा ही उपदेश करते हैं, जिससे उसका जल्दी फ़ैसला हो जाये। जैसे नारद जी ने कंस को सलाह दी कि वसुदेव जी को क़ैद कर दो, जितने बच्चे ब्रज में पैदा हुए हैं सब को मरवा दो।

जैसी हो होतव्यता, तैसी मिली सहाय।
आप न आवे ताह पै, ताहिं तहाँ लै जाय॥

तमोगुणी राजा स्त्री और भूमि के लिये लड़ते हैं, जैसे अलाउद्दीन का चित्तोड़ पर हमला करना। रजोगुणी राजा धन और भूमि के लिये लड़ते हैं और सतोगुणी राजा धरती पर धर्म स्थापन करने को लड़ते हैं। जब भले आदमी और साधुओं को महाकष्ट दिया जाता है तो उनकी आरत वाणी ब्रह्माण्ड में हलचल पैदा कर देती है।

बितर्स अज़ आहे मज़लूमां, कि हंगामे दुआ कर-दन्द।
अंजाबत अज़ दरे हक़, बहरे इसतक़बाल मीआयन्द॥

सताये हुए लोगों की आहों से डर, क्योंकि जब वह भगवान् के आगे प्रार्थना करते हैं तो सच्चे घर से मंज़ूरी उनके स्वागत के लिये आती है। तब क़ुदरत की तरफ़ से राज्य परिवर्त्तन का सामान पैदा हो जाता है। या तो वह खुद किसी से लड़ाई कर बैठता है या किसी लड़ाई में शामिल हो जाता है या कोई उपद्रव खड़ा हो जाता है या ज्वालामुखी पहाड़ या समुद्र की बढ़ी हुई लहरें सब को ठिकाने लगा देती हैं या उसी देश में कोई शक्तिशाली पुरुष पैदा हो कर काम करता है, जिसका ज़िक्र गीता के अ० ४ के श्लोक ८ में किया गया गया है। यानि साधू महात्माओं की रक्षा, दुष्टों का नाश और जो धर्म आगे जारी होने वाला है उसकी स्थापना होती है।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे ॥

हिन्दू इतिहासों में रामायण और महाभारत दो ऐसे ग्रन्थ हैं जिनसे राज्य स्थापन होने और राज्य जाने के लक्षणों का अच्छी तरह पता चल सकता है। भरत जी पर किस कदर ज़ोर डाला गया, मगर उन्होंने बड़े भाई का हक समझ कर राज्य लेने से इन्कार कर दिया और महाभारत में छोटे भाई दुर्योधन को कितना समझाया गया कि राज्य बड़े भाई युधिष्ठिर का है, सब नहीं कुछ तो दे दो, मगर उसने सुई की नोंक के बराबर धरती देना भी स्वीकार नहीं किया। इस परिवर्तन का परिणाम चाहे कितना भी अच्छा हो मगर परिवर्तन की क्रिया और उसका कर्म बड़ा भयङ्कर होता है। अच्छे लोग तो मौज़ूदा दुख को सहन करना मंज़ूर करते हैं और यही प्रार्थना करते हैं कि परिवर्तन का घोर उपद्रव उनको न देखना पड़े। अर्जुन जैसा महावीर जिसको राज्य मिलने की आशा थी वह भी परिवर्तन के परिणाम पर विचार करके घबरा उठा और सब को छोड़ कर शान्ति का इच्छुक हुआ। मगर परिवर्तन क़ुदरत का कर्म है, कोई चीज़ हमेशा एक हालत में नहीं रहती, इसलिये महात्मा लोग उसको अमिट समझ कर कोई महत्त्व नहीं देते।

होनहार होके रहे, लिखे छटी के अंक।
राई घटे न तिल बढ़े, रहरे जीव निशंक ॥

गीता के दूसरे अध्याय के ११ वें श्लोक में—

गतासून गतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिता।
तुलसी मन मैदान में, तान पिछौरा सोय।
अनहोनी होनी नहीं, और होनी होय सो होय ॥

और बात भी यही है चाहे कैसा बड़ा उपद्रव हो और मुल्क के मुल्क तबाह हो जायें, जिसकी दहशत से संसार भर के रोंगटे खड़े हो जायें, मगर उस आत्म रूपी सत्ता में सैनायें के तमाशे से ज़्यादा कोई बात नहीं। वह हर हाल में ज्यों कि त्यों है उदाहरण के तौर पर समुद्र को ही ले लो। इसमें चाहे जैसे ज्वार भाटे उठें और करोड़ों जल जन्तु लड़ कर मर जायें, परन्तु वह तो अपने आप में स्थित है। इसलिये भारी से भारी परिवर्तन भी महात्माओं की उच्च

दृष्टि में कुछ भी न होने के बराबर है। चाहे अमन हो चाहे जङ्ग हो उनको उसमें बोलने की ज़रूरत नहीं—

यह भी देखा वह भी देख, इन नयनों का यही विशेख।

इसलिये ख़ामोशी बेहतर है, दोनों हालत देखिये, मुँह से न कुछ फ़रमाइये—श्री अष्टावक्र जी की गीता अ० १८ वें श्लोक ११ इस तरह पर है।

स्वराज्ये भैक्षवृत्तौ च लाभालाभे जने बने।
निर्विकल्पस्वभावस्य न विशेषोऽस्तियोगिनः॥

स्वराज्य और भीख माँगने में, नफा और नुक़सान में, भीड़-भाड़ में और जंगल में निर्विकल्प स्वभाव के नज़दीक कुछ फ़रक नहीं।

(२१६) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि धर्म निवृत्ति और आत्म उन्नति के लिये है; परन्तु आजकल तो पोलीटिकल (Political) और प्रवृत्ति का वसीला बन गया है। हर फिरक़ा अपने मज़हब को इसलिये बढ़ाता है कि संसार के ज़्यादा से ज़्यादा लाभ प्राप्त किये जा सकें। समय के चक्र से मज़हब के पेशवाओं के विचार भी ऐसे बदल गये हैं कि वह भी कुछ न कुछ ज़ाहिरी अदल-बदल अपने चलाये हुए मत या पन्थ में ऐसी कर देते हैं कि वर्तमान फिरक़ों से उनका फिरक़ा अलग-अलग मालूम हो ताकि उनका नाम चले, परन्तु ऐसा उसी मुल्क और हालत में होता है जिसकी अधोगति होने वाली हो। जिनके दिन अच्छे होते हैं वह लोग चाहे जौनसा मजहब अख़्त्यार कर लें परन्तु चार बातें यानि भोजन, वस्त्र, भाषा, त्योहार जिनसे मेल-मिलाप बना रहता है नहीं बदलते। देखो ईरान में सब ने इस्लाम अख़्त्यार कर लिया, मगर यह चार बातें नहीं बदलीं। अपने मुल्क की ही पोशाक, खुराक और ज़बान फ़ारसी ही रखी, और नौ रोज़ ही उनका सब से बड़ा त्योहार है। मसल मशहूर है कि "जैसा देश वैसा भेष" (१) लिबास या वस्त्र हर जगह का उस मुल्क की जल वायु के लिहाज़ से मुकर्रिर कर दिया गया है। सेहत और तन्दुरुस्ती के लिहाज़ से उस मुल्क के वास्ते सब से अच्छा उसी को समझ कर सब देशवासियों को वही लिबास अख़्त्यार करना चाहिये। प्रथक्-प्रथक् लिबास से जो भेद प्रतीत होता है वह देखते ही मिट जायेगा। (२) भोजन भी परमात्मा की देन है, जिस मुल्क के वास्ते जो खुराक मुनासिब है कुदरत ने उसी को उस मुल्क में बहुत पैदा

किया है और उस मुल्क के पुराने बाशिन्दों ने अपने अनुभव और बेहतरी के ख़्याल से जिसको जारी कर दिया है उसके इस्तेमाल से स्वास्थ्य बढ़ता और ठीक रहता है। जब खुराक एक सी हो गई तो घृणा भी दूर हुई समझनी चाहिये। (३) ज़बान हर मुल्क के मनुष्यों का एक खास उच्चारण होता है। बहुत से अक्षर हर मुल्क में ऐसे होते हैं जिनका उच्चारण वहाँ के पैदायशी बाशिन्दे ही ठीक तरह से कर सकते हैं। इसलिये हर बाशिन्दे को जिसको दीर्घकाल तक या हमेशा के लिये वहाँ रहना हो उसको वही ज़बान ग्रहण कर लेनी चाहिये। और उसी को रिवाज देना मुनासिब है। दूसरे मुल्क की ज़बान वहाँ जारी करना ठीक नहीं। जब बोली-चाली एक हो गई तो फिर भेद प्रतीत न हो सकेगा। (४) त्योहार कई तरह के देखने में आते हैं। (१) वह जिनका सम्बन्ध मज़हब की किसी रस्म रिवाज से है। पर इन सब में बुज़र्गों की नकल ज़्यादा-तर है। मसलन रक्षाबन्धन और कुर्बानी, (बलिदान)। (२) अपने क़ौम के नेताओं की यादगार या उनकी खुशी और ग़मी में मनाये जाते हैं जैसे दशहरा, जयन्ती, मुहर्रम, क्रिसमस और ईस्टर। (३) वह जिनका सम्बन्ध मौसम से है जैसे बसन्त, दिवाली, संक्रान्त, लोढ़ी, नौ रोज़। (४) वह जो स्वास्थ्य के नियमों पर बने हैं जैसे रमज़ान, कार्तिक स्नान, माघ स्नान,सावन के महीने के व्रत इनमें से आखरी दो, जिनका रिश्ता मौसम और सेहत से है, वह तो जिस मुल्क में मनुष्य हो उस मुल्क के जल-वायु के लिहाज़ से जिस ज़माने में जहाँ वह मनाये जाते हैं मनाने चाहिये। पहले दो ऐसे हैं जिनको चाहें अलेहदा-अलेहदा मनायें चाहें मुख़्तलिफ़ मज़हब के मिलते-जुलते त्योहारों को मनाने के लिये सर्व सम्मति से एक दिन मुकर्रिर कर दें। जैसे दुर्गा और काली पूजन का बलिदान या तो ईद अलज़्हा पर हो या ईद दुर्गा और काली पूजन के दिन मनाई जाये। शबे मैराज, दिवाली को हो या दिवाली शबे मैराज को हो। सिमैयों वाली ईदउलफ़ितर या तो सलूनों पर मनाई जाय या सलूनों ईद के दिन हो। बड़ा दिन भी ऐसे ही मौके पर हो या जन्माष्टमी यह दोनों मिल कर मनाये जायें। शुभरात, मुहर्रम, ईस्टर और कनागत एक साथ हो सकते हैं। तीनों ही मृतक सम्बन्धी संस्कार कर्म हैं। हिन्दुओं में ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र चार वर्ण हैं और इनमें से हर एक का अलेहदा-अलेहदा त्योहार हैं। रक्षाबन्धन ब्राह्मणों का, दशहरा क्षत्रियों का, दिवाली वैश्यों की और होली शूद्रों की। लेकिन सर्व सम्मति से ऐसा समझौता

हो गया है कि हर एक त्यौहार को चारों वर्ण मिलजुल कर मनाते हैं। यह सम्भव है कि उसके मनाने में किसी-किसी वर्ण के उत्साह और तरीक़े में कमी बेशी हो। मगर किसी एक को दूसरे वर्ण के त्यौहार से विरोध नहीं। इसी तरह से भेद-भाव को दूर किया जा सकता है। एक और भी बात बड़ी ज़रूरी यह है कि जब किसी फ़िरके की संख्या बढ़ जाये तो अपने में जज़्ब करने के लिये उसको भी एक अलैहदा वर्ण दे देना चाहिये। वर्ण के माने हैं सराहना या रङ्गना। यानि उनकी निन्दा न करे बल्कि उनको सराहे और तारीफ़ करे। रङ्गने से मुराद यह है कि अपने रङ्ग में रङ्ग दे। वेद में लिखा है कि पहले तीन वर्ण थे। ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य। गोया जो विजयी कौम आई उसमें धर्म के पेश्वा यानि अगूआ ब्राह्मण थे, फ़ौजी अफ़सर क्षत्री थे, वणिज्य व्यौपारी वैश्य थे। इन तीनों का दर्जा बराबर का था, कोई किसी की सेवा नहीं कर सकते थे, इस लिए सेवा कर्म के लिए उसी देश की पराजय जातियों या दूसरे मुल्क की दलित जातियों के लोगों को बुला कर नियत किये। जब उनकी संख्या ज़्यादा हो गई और आपस की शादी विवाह से उनके सम्बन्ध घनिष्ट हो गये और उनका ज़ोर बढ़ गया तो उनको भी एक वर्ण यानि शूद्र वर्ण देना पड़ा। यानि प्रजा अधिकार Rights and Privileges of a citizen इसी तरह से जब कभी कोई फ़िरका ज़ोरदार हो जाय और कष्ट देने लगे तो उस दुख से बचने के लिए अलावा पौशाक खुराक ज़बान और त्यौहार की एकता के एक यह भी ख़ास उपाय है कि उसको एलैहदा वर्ण दे दिया जाय।

तन मिले और मन मिले, मिले भजन की रीत।
उनके खान और पहन की, तुलसी एक ही रीत॥

जब पोशाक खुराक और त्यौहार मिल गये तो भेद-भाव कहाँ रहा। शादी व्यवहार भी आपस में होने लगेंगे और कुछ समय के बाद भजन-पूजन के सम्बन्ध में भी इतनी पक्षपात न रहेगी। ऐसे हो जावेंगे जैसे शैवी और वैष्णव हो गये हैं। अकबर बादशाह ने हिन्दुओं से शादी व्यवहार का ढंग इसी नियम पर डाला था। अगरचे उसमें राजनीतिक चाल राजपूतों को झुकाने और क़ाबू में लाने की शामिल थी। अकबर जानता था कि जब तक यहाँ के आदमियों की मिल कर एक क़ौम नहीं बनेगी राज दंड नहीं रह सकता। जो हिन्दु

स्त्रियाँ उसके और उसके लड़के जहाँगीर के घर में आईं उनके रहन-सहन और संग साथ से इन दोनों बादशाहों के धार्मिक विचारों पर भी बड़ा प्रभाव पड़ा और पक्षपात घट गया था। कुछ अरसा अगर ऐसा ही होता चला आता तो कुल हिन्दुस्तान एक कौम बन जाता। मगर उनके बाद के बादशाहों ने उस नियम को बदल दिया जिसका परिणाम सामने आ गया। हिन्दुस्तानी में मेल-जोल के उच्च आदर्श की मिसाल दूध पानी और फ़ारसी में शीरो शक्कर से दी जाती है। इस पर विचार करने से मालूम होगा कि चाहे कितना भी पानी दूध में मिला दो, दूध सबको अपना रूप दे देता है, और पानी दूध को बढ़ा देता है। शीर और शक्कर के मिलने से शीर में शक्कर की मिठास हो जाती है और शक्कर शीर का रूप हो जाती है। नतीजा यह निकलता है कि मेल होने में पहले शकल व सूरत में एकता होनी चाहिए फिर उसके गुणों में किसी क़ौम को मेल करना हो तो उनको पहले शकल और लिबास में एकता कर लेनी चाहिए, ताके शकल देख कर ही यह पता न लग सके कि यह और है और यह और है। मज़हबी पेशवाओं के अलावा बाज राजाओं की भी ऐसी कूट नीति होती है जो देश में विरोध और अश्रद्धा फैला देती है। ऐसी बातों को भी दूर करना चाहिए वरना सच्चा मेल-जोल कभी न होगा और वह कारण कांटे की तरह हमेशा खटकते रहेगें। राजा या बादशाह के पास जो धन होता है वह सब क़ौम की सम्पत्ति है क्योंकि वह कुल प्रजा से कर और टैक्स की शक्ल में लिया जाता है। उससे ऐसे ही काम होने चाहिये जो कुल प्रजा के लाभ के लिए हों। इसके बजाय अगर राजा किसी ख़ास मज़हब या अपने धर्म की रयायत करके या उसके चलाने और बढ़ने के लिए सुविधा दे, या सिर्फ़ उनके वास्ते ही पूजन के स्थान यानि धर्म स्थान बनाये, या किसी दूसरे धर्म की पूजा पाठ करने वाले जगहों को तोड़े-फोड़े या अपने मज़हब वालों को दे दे तो ऐसी बातों की यादगार हमेशा दिल में खटकती रहेगी और सच्चा मेल कभी नहीं होने देगी। इसलिए हर नेक राजा का धर्म है कि ऐसे कुल कामों से घृणा करें, बल्कि जो बातें ऐसी मौजूद हों उनको दूर करे अलबता जो इमारतें किसी ख़ास आदमी ने अपने निजी पैदा किये धन से अपने मज़हब वालों की पूजा-पाठ और फ़ायदे के लिए बनवाई हों, वह तो उस आदमी या उस मज़हब वालों की धार्मिक सम्पदा रह सकती है। जो इमारतें राज कोष से बनाई गई हैं उन सब

को जनता की इमारतें करार देकर सबके फायदे के काम वाली बना देनी चाहिये। अगर किसी इमारत को तोड़-फोड़ कर या अदल-बदल कर दूसरे मज़हबी काम में लाया जा रहा हो तो उसको उलट कर फिर वापिस दे देना या दिला देना चाहिए और उसको असली हालत पर लाना चाहिए या बिल्कुल गिरा देना चाहिये ताकि उसकी यादगार ही न रहे और मज़लूम मज़हब यानि जिस धर्म पर ज़ुल्म किया गया हो उस पर हमेशा रहने वाला क्लेश न बना रहे। ख़ास आदमी, ख़ास ख़ानदान और ख़ास मज़हब के साथ रयायत करना भी मेल में बाधा डालता है। इस लिए जो लोग या क़ौमें आपस से मेल-जोल रखना चाहती हैं उनको चाहिए कि अगर किसी राजनीतिक इरादे से कोई ख़ास अधिकार या रियायत उनके वास्ते रखी गई है तो उनको लेने से इन्कार कर दें। वरना हम जोली लोगों के दिल में यह बात अवश्य खटकेगी। राज्य की किसी ख़ास सेवा के बदले में अगर कोई रयायत दी गई हो तो वह दूसरी बात है। जो राज्य सेवा करेगा वह मेवा पायेगा। पक्षपात चाहे मज़हब को लेकर या क़ौम को मान कर हो मेल-जोल का बाधिक है। अपने धर्म अपनी क़ौम और अपने देश की उन्नति भी झगड़े की जड़ होती है। ऐसे विचार और कर्म क्रिया से दूसरों को हानि पहुँचने का खटका रहता है।

(२१६) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि जो मनुष्य न जानने वाली बात के बारे में किसी से पूछने में शर्म करता है या ऐसा काम करने के लिए सलाह लेने से नफ़रत करता है वह अपनी कम अकली और मूर्खता पर बेवक़ूफ़ी की एक और तह चढ़ाता है। और जो बिला लिहाज़ छोटे बड़े के न जानने वाली बात के बारे में पूछ कर हालात मालूम कर लेता है या ऐसे कामों में मशवरा लेता है वह अपनी कम अकली और बेवक़ूफ़ी को अकल से बदल लेता है।

(२१७) एक रोज़ हिन्दू मुसलमानों के मेल का प्रश्न किसी मनुष्य ने कर दिया। श्री महाराज ने फ़रमाया कि मेल-जोल क़ायम रखने या पैदा करने और बढ़ाने के लिए बहुत सी बातों पर विचार की ज़रूरत है। कम से कम १० बातों पर ज़रूर विचार करना चाहिए—(१) शारीरिक (Physical) इसमें ज़बान यानि भाषा भी शामिल है। (२) मानसिक (Mental) (३) सदाचार (Moral) (४) आत्मिक (Spiritual) (५) व्यापारिक या वाणिज्य सम्बन्धी

(Commercial) (६) धार्मिक (Religious) (७) राजनैतिक (Political) (८) प्राकृतिक (Natural) (६) सामाजिक (Social) (१०) आर्थिक (Economical) जिस्म तो देखने में सबका एक सा और गिनती में अंग भी बराबर होते हैं। इसमें भाषाका मेल यानि ज़बान एकसी होतो बोलने और लिखने में आसानी होती है। कोई अंग्रेजी बोल रहा हो तो सुन कर यही मालूम होता है कि यह अंग्रेज़ है हिन्दुस्थानी नहीं (१) भाषा एक होने से सब फर्क़ मिट जाता है। और मेल होता है (२) मानसिक यानि मन का मेल। चंद बातें ऐसी हैं जिनमें अन्तर होने से दिल फटा फटा रहता है। चाहे इन्सान एक घर में रहे चाहे साथ साथ रहे। मुसलमान कुर्बानी कर रहे हैं, हिन्दू का दिल नफरत कर रहा है। शक्ति पूजन वाले सान्ट कर रहे हैं, वैष्णव उससे घृणा करते हैं। हिन्दू होली मना रहे हैं तो मुसलमान उनका मज़ाक उड़ा रहे हैं। ऐसा ढंग अख़्त्यार करना चाहिये जिससे दिल मिला रहे। (३) इखलाकी यानि सदाचार का ठीक रखना। किसी की बहन बेटी और बहू को बुरी नज़र से न देखना, या जूआ चोरी कराना या नशा लाने वाली चीजें सेवन कर के बदमस्त हो जाना। या ऐसे व्यवहार करना जिससे दूसरों को घृणा हो जाये। कात सदाचार के तौर पर जिन कामों के करने से घृणा होती हैं। ऐसी बातें त्याग देने से ही मेल होता है। (४) आत्मिक या रूहानी सादी साहब ने कहा है।

बनी आदम आज़ायें यक दिगरन्द।
कि दर आफरीनश ज़े यक जो हर अंद॥

मनुष्य मात्र एक दूसरे के अंगों के समान हैं क्योंकि उनकी पैदायश एक ही तत्त्व से हैं। गोया एक आत्मा ही सबकी असल है और उससे सब की उतपत्ती है। ऐसा समझने और जानने से फर्क दूर हो कर मेल होता है। (५) व्यापारिक यानि वाणिज्य व्यापार सम्बन्धी, विलायत का माल मत खरीदो हिन्दुओं की बनाई हुई मिठाई मत इस्तैमाल करो। मुसलमान से सौदा मत लो। इन सब बातों को छोड़ देने से मेल होता है। इङ्गलिशतान के सामान पर कस्टम का महसूल नहीं लगेगा और जापान के माल पर कस्टम लगेगा। जो चीज़ कारामद और सस्ती हो उसको ख्वाह किसी ने बनाया हो, लेने और

खरीदने में मज़हबी या क़ौम का भेद नहीं करना चाहिये। (६) धार्मिक यानि मज़हब या पंथ सम्बन्धी, मुसलमान निमाज़ पढ़ते हैं, अज़ांन (बाँग) देते हैं, उसको बुरा समझना। हिन्दू संख बजाते हैं, पूजा सन्ध्या करते हैं इसका विरोध करना। ईसाई घंटा बजाते हैं उसको रोकना, किसी पंथ को बुरा समझना और उसकी तालीम व उपदेश का ठट्ठा उड़ाना। उसके तावरुकात (पवित्र चीज़ों) का अपमान करना, यह सब चीज़ें झगड़े का सबब होते हैं। ऐसा न करने से कोई आपदा नहीं होती (७) राजनैतिक, राज प्रबन्ध ऐसे ढंग से चलाना जिस से किसी फिरका को नुकसान पहुँचे और किसीके नौनिध और बारह सिद्ध हों। एक फ़िरके की भलाई हो और दूसरे की जड़ कटे यह चाल ठीक नहीं (८) स्वभाविक किसी का स्वभाव तामसी है, किसी का राजसी तो किसी का सात्विकी। जिसको ईश्वर ने जैसा बना दिया है वैसा ही वर्तता है। तामसी स्वभाव से सात्विकी को घृणा होना पैदायशी बात है और मिट नहीं सकती। ऐसा समझ कर उसको सहन करने में ही कल्याण होता है। एक बाप के बच्चों में और कटुम्ब के मनुष्यों में भी किसी का स्वभाव गर्म और किसी का नर्म होता है। नर्म स्वभाव वाले को गर्म स्वभाव वालों की बात सहन करना उचित है (९) सामाजिक या जन संग्रह, जैसे पड़ौसी का हक दूर के भाई से ज़्यादा होता है। दुख दर्द में जितना पड़ौसी काम आ सकता है उतना दूर का सम्बन्धी नहीं। आग बुझाने, चोर को भगाने में पड़ौसी ही काम आता है (सगे हज़ूर बह अज बरादरे दूर) पास का कुत्ता दूरके भाई से अच्छा होता है। व्यवहार में शामिल रहने से बहुत से काम सिद्ध हो जाते हैं और कारोबार और लेन देन के कामों में भी मदद मिल सकती है। बस समाजिक एकता और मेल जोल बहुत ज़रूरी चीज़ हैं और उसके निभाने में बहुत लाभ है। (१०) आर्थिक सामाजिक मेल जोल से बहुत सा आर्थिक लाभ होता है। अपना अर्थ सिद्ध करने के लिये दूसरे फिर्के और क़ौम के लोगों से भी सहायता लेनी पड़ती है। अगर वह सहायता न मिले तो हानि उठानी पड़ती है। मिल कर व्यापार करना, मुक़दमाबाज़ी और लड़ाई झगड़े से बचे रहने से धन की बचत होती है। गर्ज़ इन बातों में भेद भाव रहने से हर्ज होता है, और मेल मिलाप रखने से बहुत लाभ होते हैं। इसलिए मेंल जोल करने, उसको बढ़ाने और क़ायम रखने के लिय कम से कम इन बातों का ज़रूर ध्यान रखना चाहिए।

(२१८) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि जिज्ञासु को सब से पहले विवेक की ज़रूरत है। इससे उसको यह पता चलता है कि कौन सी चीज़ ग्रहण करने योग्य और कौनसी त्यागने योग्य है। जैसे षट सम्पत इत्यादि ग्रहण कर के उस में यत्न करे और जिस से मुक्ति साधन में बाधा पड़े उसको त्याग दे। इसी को वैराग्य कहते हैं। इस त्याग के मुआमले में बड़ा मतभेद है। घर, स्त्री, पुत्र धन के त्याग पर बड़ा ज़ोर दिया जाता है। और आम तौर से इनको बन्धन रूप समझ कर छोड़ छाड़ कर साधु बन जाते हैं। परन्तु देखने में यही आता है कि फिर किसी न किसी रूप में इन्हीं को ग्रहण करना पड़ता है।

स्त्री त्यागी चेली बनाई, पुत्र त्यागे चेले किये, घर छोड़ा मठ और आश्रम खड़े किये, शहर छोड़ा जंगल बसाया। नौकरी और कारोबार छोड़ा और चन्दा जमा करने लगे। इससे मांगा और उससे बटोरा। शरीर की क्रिया चलाने को तो कुछ न कुछ सामान इकट्ठा करना ही पड़ेगा। पचास बर्तन न सही करपात्र कमण्डुल ही सही। फिर इसको भी त्याग दो और नागे बाबा बन जाओ तब भी शरीर की क्रिया को तो त्याग नहीं सकते। दर-असल मुक्ति मार्ग में बाधा डालने वाली चीज़ों में पहली बात कामना या शौक़ है। दूसरी चीज़ व्यवहार, मुलाकात या मेल जोल है। तीसरी चीज़ मोह है (१) कामना में यह दुख है कि किसी का अच्छा घर, सामान या स्त्री पुत्र देखा और दिल में कामना हुई कि यह सामान हमारे पास भी हो। और फिर उसकी प्राप्ति के लिए यत्न दुख दाई होता है। तकललुफ भी एक उसकी शाखा है। (२) व्यवहार या मुलाकात कोई मनुष्य हमारे घर कुछ धन या सामान व्यवहार में दे गये या मुलाकात करने आये अगर हमको व्यवहार रखना है तो हमको भी धन और सामान देने और मुलाकात करने को समय निकालना और प्रबन्ध करना ज़रूरी है। इसमें कितना समय अकारथ जाता है और कितनी परेशानी होती है। (३) तीसरी बात मोह है जिन लोगों के साथ हम रहते सहते हैं उनसे प्रेम प्यार हो ही जाता है। पशु तक पालो तो उससे भी लगाव हो जाता है। जैसे जड़ भरत जी को हुआ था। जब ऐसे बड़े महात्मा पर भी जादू चल गया तो साधारण मनुष्यों का बचाव कैसा। इसलिए ऐसे सम्बन्ध से दूर रहना ही मुनासिब है। ऐसी हालत पैदा करनी चाहिए जिससे इन तीन अवस्थाओं से

बचाव हो सके। और इस आशा को लेकर प्रयत्न करने का नाम भी राग है। अंग्रेजी में इनको, Fancy फैंसी Society सोसायटी और Affection एफैक्शन कहा जा सकता है।

(२१६) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि सतयुग में भगवान की माया की प्रेरणा से सब प्राणी धर्मात्मा होते हैं :—

कृत युग धर्म होंहिं सब केरे। हृदय राम माया के प्रेरे॥
शुद्ध सत्व समता विज्ञाना। कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना॥

जब सब काम धर्ममय हों तो क़ायदा क़ानून बनाने, उनको चलाने और चलाने वालों की ज़रूरत ही क्या? कोई किसी की स्त्री, धन, घर, खेत की इच्छा ही नहीं करता, बल्कि बड़ी-बड़ी उम्र बिल्कुल सादगी की हालत में पूरी कर देते हैं। मकान तक नहीं बनाते, पेड़ों की साया में, पहाड़ों की गुफाओं में, या मामूली सी झोंपड़ी या छान-छप्परों में आयु बिता देते हैं। शादी विवाह की रस्म न थी। बरायेनाम किसी को राजा या सरदार बनाना भी चाहो तो कोई बनना पसन्द नहीं करता। बड़ी ख़ुशामद से राज-पदवी को कोई ले ले तो जानो उसने बड़ा अहसान प्रजा पर किया। जब ऐसी हालत हो तो लड़ाई-झगड़ा और युद्ध की नौबत ही क्या हो सकती है। सतयुग के अन्तिम भाग में कुछ रजोगुण बर्तने लगता है जो त्रेता में काफी बढ़ जाता है और लड़ाई-झगड़े शुरू हो जाते हैं। परन्तु ज़्यादातर लड़ाई की वजह किसी राजा या उसकी प्रजा को धर्म पर चलाने के लिये होती हैं न कि उनका देश छीनने को। "यथा राजा तथा प्रजा" के आधार पर दोनों राजे धर्म का निर्णय करने को आपस में लड़ कर फ़ैसला कर लेते हैं। ख़्याल ऐसा होता है कि जो धर्मात्मा है परमात्मा उसकी मदद करेगा और वही विजयी होगा। अधर्मी हारेगा या मारा जावेगा। ऐसे युद्ध में प्रजा को भाग लेना नहीं पड़ता और न ही उन तक आँच आती है, बल्कि सेनाओं के लड़ने की भी नौबत नहीं आती।

द्वापर में रजोगुण बहुत ज़्यादा और उसमें थोड़ा-सा तमोगुण भी शामिल हो जाता है। लड़ाई-झगड़े बढ़ जाते हैं। राजा लोग चाहना करके राज छीनते हैं और राज्य को बढ़ाने की कोशिश करते हैं। उनके सहायक और कर्मचारी

भी इस धाँधली से लाभ उठाना चाहते हैं। इसलिए इस कर्म का फल उनको भी भोगना पड़ता है। लड़ाई में राजा और फ़ौज दोनों शामिल होते हैं। भाई, भाइयों में लड़ाई शुरू हो जाती है। मगर फिर भी किसी असूल यानि क़ायदे को तय करने के लिए होती है। व्यवहार में मिलना-जुलना बन्द नहीं होता, हर्ष और भय का समय होता है। लड़ते भी जाते हैं मगर खाना-पीना, सोना-बैठना, खेल-कूद, सैर वगैरा इनमें मेल होता है, जैसा महाभारत में हुआ।

कलियुग में तमोगुण बहुत बढ़ जाता है और रजोगुण के आ मिलने से ऐसी आपा-धापी फैलती है कि भाई-भाई में, मां-बेटी में, बाप-बेटे में, सब जगह झगड़ा आरम्भ हो जाता है और इतना ज़्यादा कि ज़रा-सी बात हुई तो एक दूसरे से मिलना और बोलना तक बन्द कर देते हैं। राजा, प्रजा और कर्मचारी सब में खिंचावट पैदा हो जाती है। एक राजा दूसरे के राज्य को छीनने के लिए हर वक्त ताक़ में रहता है। सिपाही, प्यादे यहाँ तक कि प्रजा भी इसमें सम्मति दे देती है। बहुधा तो राजा को उसकी प्रजा ही राज्य से अलग कर देती है और कहती है कि राजा की आवश्यकता ही क्या है, हम स्वयं प्रबन्ध कर लेंगे। इसी कारण राज्य के कर्मचारी और प्रजा को ही युद्ध में काफ़ी हिस्सा लेना पड़ता है। राजा तो बैठे हुए युद्ध का तमाशा देखते हैं, मरने-कटने से इनका कोई सम्बन्ध नहीं। देख लो इस महायुद्ध में फ़ौज और प्रजा ही मरी, राजा तो एक भी नहीं मरा। फ़ौज और प्रजा की ही पूरी तबाही होती है। बल्कि फ़ौज की कम और प्रजा की ज़्यादा है। फ़ौज के लिए रसद, मदद, भोजन-वस्त्र सब का प्रबन्ध लड़ाई के समय में ज़्यादा होता है। इसलिए फ़ौज को मौत के घाट उतरने का ही दुःख भोगना पड़ता है। मगर प्रजा का बुरा हाल होता है। लड़ाई के खर्च के लिए रुपये की वसूली कर और टैक्स रूप में देना और जो सम्बन्धी फ़ौज में शामिल हो कर कट-मरे उनका रोना। अगर दुश्मन मुल्क पर चढ़ आया तो प्रजा की तबाही, घर-बार लुट-खुस गया, सम्बन्धी मारे गये, घर तबाह हो गया, पैसा चला गया। दाने दाने का मोहताज और दरबदर मारे मारे फिरना पड़ता है। राजा को मौत का सामना नहीं करना पड़ता, वह प्रजा ही का भोजन करते हैं।

द्विज श्रुति वंचक भूप प्रजासन। कोऊ नहिं मानु निगम अनुशासन॥

(२२०) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि दुनियाँ में दो ऐब सबसे बड़े हैं। एक

बुढ़ापा दूसरी ग़रीबी। हर एक काम में कोई न कोई ऐब निकलता है। अकेले बुढ़ापे में ही सौ ऐब होते हैं, "पीरी और सद ऐब"। इसी तरह ग़रीबी का हाल है। ग़रीबी का कोई मेल नहीं। अमीर आदमी का शराब पीना शौक़ में दाखिल है और अय्याशी दिल बहलाने का सामान। जुआ वक्त काटने के लिये और गाली देना हित की बात है। उनका पाद भी मलहार है, जो धनवान है वही कुलवान हैं—उनके घर की स्त्रियाँ सब की माता हैं। ग़रीब विचारे की जोरू सब की भाबी है और दिल्लगी का वसीला है। शराफ़त ऐसी चीज़ है कि दौलत से ख़रीदी नहीं जा सकती और ग़रीबी से घट नहीं सकती।

शरीफ़ अगर मुतज़ईफ़ शवद ख्याल मबनद।
किपायेगा बलन्दश नईफ़ ख़ा हद शुद॥

शरीफ़ अगर ग़रीब भी हो जाये तो यह ख्याल न करे कि उसकी शराफ़त की बड़ाई भी कम हो जायेगी।

(२२१) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि दुनियाँ में सब से भारी चीज़ पाप है। उसके बोझ से नाव भी डूब जाती है, पानी में ही नहीं बल्कि पट पर में भी पापी धरती में धसा चला जाता है। जैसे "कारूँ"। पृथ्वी जो तमाम विश्वमात्र यानि धातु, बनस्पती, पशु, पच्ची, मनुष्य, स्थावर और जंगम को धारण किये हुए है, वह भी उसके बोझ से अकुला जाती है और त्राहि-त्राहि पुकार उठती है। धर्म ग्रन्थों में बहुत से इतिहास हैं जिनमें राजा और प्रजा के पाप के बोझे से दुखी हो कर पृथ्वी ने परमात्मा से फ़रियाद की कि पाप को मिटा कर उसके बोझे को जल्दी हटाया जाय। पृथ्वी की पुकार सुन कर ऐसे पापियों का मटियामेट कर दिया गया। इसी तरह धर्म से हलका होता है, धर्म से डूबती हुई नाव भी तर जाती है और इसका बोझा किसी को प्रतीत नहीं होता।

(२२२) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि बहुत से महात्माओं की बानी है कि "सन्त की महिमा कोई न जाने" यह है भी ठीक। फिर जगह बजगह उनकी महिमा का वर्णन होता ही है। परन्तु आजकल के साधुओं की महिमा से उनको मिलाया जाये तो पूर्व पश्चिम का अन्तर दीख पड़ता है। साधुओं का जीवन विचार, वैराग्य, त्याग और तितिक्षा मानी गई है, परन्तु आजकल का दृश्य कुछ निराला ही है। अकसर घर में ग़रीबी होने से या लड़ाई होने से या स्त्री और

दूसरे रिश्तेदारों की बेरुखी से या मेहनत से जी घबरा कर और भी बहुत से कारणों से परेशान हो कर साधू बन जाते हैं। पहले तीन आश्रमों को पूरी तरह पालन करने से जो अनुभव हासिल होना चाहिये वह नहीं होता और जो रजोगुण और तमोगुण घट कर सतोगुण बढ़ना चाहिये, वह हालत नसीब नहीं होती। गर्ज़ रजोगुण की झोली ले कर और तमोगुण का पोटला बाँध कर ही साधू हो कर निकल भागते हैं मगर कर्मों के भोग उनका पीछा कहाँ छोड़ते हैं। यहाँ एक दो औलाद त्यागी वहाँ हज़ार दो हज़ार चेले बना लिये। एक स्त्री त्यागी पचासों चेली इकट्ठी कर लीं। एक झोंपड़ी या छोटा सा मकान वह भी जो पितृक सम्पत्ति में मिला हो तो छोड़ा होगा, वरना "घर न घेरा और जोरू न जाता, और अल्लामियाँ से नाता।" ऐसे साधू हो कर जो आश्रम और स्थान बनाये जाते हैं तो कहना ही क्या है बीघा धरती में चारों तरफ मकान ही मकान बनवा लें तब तो वह "रामदास की कुटिया" कहलाती है। मकान तो उसका नाम नहीं हो सकता। शायद साधू को कभी मकान बनवाने का ख्याल उठ आवे तो न मालूम कितनी जगह में बनेगा।

> बहुधाम संवारहिं योगयती, विषया हरि लीन गई विरती।
> तपस्वी धनवन्त दरिद्र गृही, कलि कौतुक तात न जात कही॥

कितने भी चेले हो जायें मगर यह कभी नहीं होगा कि अब नहीं और कितनी भी धन दौलत जमा हो जाये मगर मुँह से यह न निकलेगा कि बस। आम व्यवहार से तो कभी मन भरता ही नहीं बल्कि राज दरबार में भी टाँग फैलाना बड़ा कर्त्तव्य समझते हैं। कुर्सी नशीनी हासिल हो जाये, दरबारी बन जायें। ज़िला सभा या राज सभा के मैम्बर बन जायें। खान-पान का तो पूछना ही क्या है, महिमन स्तोत्र के ३७ वें मंत्र में लिखा है कि—"अघोरान्नापरो मंत्रो" यानि अघोर मंत्र से बढ़ कर और कोई मंत्र नहीं है। वही अघोरी बन जाते हैं। सर्वब्रह्म में फिर खाद्य अखाद्य का ज़िक्र ही क्या है? जब किसी गृहस्थी को उपदेश करते हैं तो यह मालूम होता है कि साधू के मुँह से फूल झड़ते हैं। बच्चा यह संसार असार है। स्त्री, दौलत, बाल-बच्चों और घर-बार में मन नहीं फँसाना चाहिये उनका त्याग ही सुखदाई है, उपदेश समाप्त होते ही रुपयों का सवाल है। "यह बात वह बात टका धर मेरे हाथ" रुपया पैसा का सम्भालना

तो कोई मुश्किल बात नहीं। कोई घर देने को रजामन्द हो जाये तो फ़ौरन अपने नाम रजिस्ट्री करा लें। अगर स्त्री और बच्चे अर्पण करे तो दोनों का सिर मूड़ कर एक को बाई और दूसरे को चेला बनाने के लिए हर दम ताक लगाये बैठे रहते हैं। बस मिलना शर्त है, गर्ज "चौबे जी छब्बे होने गये और दुबे रह गये" बल्कि दुबे भी नहीं रहते। दुनियाँ में औरों के लिये बुरी मिसाल क़ायम की और अपना परलोक बिगाड़ बैठे।

निकले थे हम वतन से योगी के भेष में।
अब इश्क़ खेंच लाया है तेरे ही देश में॥
तेरे दर पर हैं धूनी रमाये बैठे,
भेष देख मत भूलिए, मन सों करिये कूत।
अरे चलन अवधूत के, लगे चलन अवधूर्त॥

(२२३) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि ब्रह्म, ईश्वर और जीव को समझाने के लिए शास्त्रों में तरह-तरह के दृष्टान्त दिये हैं। मौजूदा ज़माने में बिजली का दृष्टान्त भी उनको समझाने के लिए दिया जा सकता है। बिजली का लैम्प या बल्ब जीव कहा जा सकता है जो जलाने से इस देह रूप घर को रोशन कर सकता है और बुझने से अन्धेरा भी हो जाता है। इसकी रोशनी उस बल्ब के अन्दर घिरी हुई है। परन्तु बल्ब के बुझ जाने से उसके अन्दर जो बिजली थी उसका नाश नहीं होता। बल्कि वह अपने भण्डार बिजली घर में समा जाती है, और ज़रूरत के लिहाज़ से फिर बल्ब में काम करती है। हर एक बल्ब के अन्दर अलग काम होता है। एक बल्ब की बिजली दूसरे बल्ब में काम नहीं करती। इसी तरह जीव हर एक चोले और शरीर में बिजली की तरह अलग-अलग प्रतीत होता है। मगर अपने भण्डार यानि ईश्वर से अलग नहीं। बिजली घर में जो बिजली है वह भी किसी बाहर के भण्डार यानि इन्जन वग़ैरा के द्वारा बिजली घर में पैदा होकर तमाम शहर में उजाला करने और फिर अन्धेरा करने का काम करती है। इसी तरह ईश्वर सब संसार और उसके जीवों को उत्पन्न, पालन और विनाश करता है; परन्तु न वह जीव से अलग है और न जीव उससे अलग हैं। जिस तरह बिजली घर की बिजली बल्ब की बिजली से अलग नहीं होती, चाहे बल्ब बुझे हुए हों या जलते हों। ब्रह्म शक्ति का वह

भण्डार है जिसके आधीन संसार के कर्म फलों की प्रेरणा से ईश्वर काम करता है। जिस तरह से ज़रूरत के लिहाज़ से आकाशी बिजली से बिजली घर में बिजली बन जाती है परन्तु आकाशी बिजली प्रवृत्ति के कामों में अकर्त्ता है। इसी तहर ब्रह्म सब कार्यों में अकर्त्ता है।

(२२४) एक रोज़ इर्शाद हुआ कि क्या गृहस्थी और क्या साधु-महात्मा इस माया से सब घबराते, दूर भागते और उसकी निन्दा करते हैं, परन्तु विचार से देखा जाये तो माया की तरफ़ से ऐसा ख्याल बाँध लेना बे इन्साफ़ी है। इस संसार में जन्म लेने से मरण पर्यन्त और मरने के बाद भी जहाँ तक हो सकता है माया हर जीव को और खास तौर पर इन्सान को उसके सर्व श्रेष्ठ होंने के कारण हर तरह से आराम ही आराम पहुँचाना चाहती है। पहले माता बन कर फिर बहन बन कर, भौजाई बन कर, स्त्री बन कर, दादी नानी बन कर, बेटी बन कर, वैश्या बन कर, शरीर में इन्द्रिय और अन्तःकरण बन कर, तत्त्व बन कर, गुण बन कर, धन, दौलत बन कर, और संसार की हर तरह की रचना बन कर और आखिर में मौत बन कर उसके बाद स्वर्ग और उपस्वर्ग बन कर ग़र्ज़ उसका ध्यान तो हमेशा हर जीव को चाहे वह स्थावर हो या जंगम सुख ही सुख पहुँचाने का है। परन्तु सुख वही पहुँचा सकती है जो उसके अन्दर और सामर्थ्य में है। इसलिये कोई वज़ह माया को बुरा कहने और बुरा समझने की नहीं दीख पड़ती। फिर उसको जब परमात्मा की माया माना जाय और हम उस परमात्मा के भक्त बनना और कहलाना चाहें तो भी अपने भगवान् की माया को बुरा समझना प्रेम पंथ के विपरीत होगा। अलबत्ता जो सुख उससे परे है और जिसका भान सच्चिदानन्द में ही हो सकता है वह अगर माया में न हो सके तो उसमें उसका क्या खोट है। जिसको उस सुख की इच्छा हो तो माया से आगे और गुणों से भी आगे यानि गुणातीत हो कर उसकी तलाश करे और उसमें स्थित हो।